भारत का आर्थिक भूगोल

(उत्तर प्रदेश की हाई स्कूल परीक्षा के अर्थशास्त्र
विषय के लिये)

लेखक

दयाशंकर दुबे, एम० ए०, एल-एल० बी०

अर्थशास्त्र प्राध्यापक; प्रयाग विश्वविद्यालय

तथा

शंकरसहाय सक्सेना, एम० ए०, एम० काम०

प्रिंसिपल महाराणा कालेज, उदयपुर
तथा
डीन, कामर्स फैकल्टी, राजपूताना विश्वविद्यालय

प्रकाशक

नेशनल प्रेस

इलाहाबाद

सोलहवाँ संस्करण] १९५६ [मूल्य २।)

भूमिका

"भारत का आर्थिक भूगोल" पुस्तक के सोलहवें संस्करण को लेकर उपस्थित होते हुए हमें विशेष हर्ष होता है। पुस्तक उत्तर प्रदेश कि हाई स्कूल की परीक्षा में "व्यापारिक भूगोल" प्रश्नपत्र के पाठ्यक्रम को ध्यान में रखकर लिखी गई थी। पुस्तक का प्रचार इस बात का द्योतक है कि पुस्तक परीक्षार्थियों के लिये उपयोगी सिद्ध हुई है। यह पुस्तक उत्तर प्रदेश के अतिरिक्त अन्य राज्यों में भी पाठ्य-पुस्तक नियत कर दी गई है। अतएव इस संस्करण में पुस्तक का संशोधन इस प्रकार किया गया है जिससे यह सभी परीक्षार्थियों के लिये विशेष उपयोगी हो।

प्रस्तुत संस्करण में बहुत सुधार किया गया है। स्वतन्त्र होने के उपरान्त देश में बहुत सी बहुमुखी सिंचाई तथा जल-विद्युत् उत्पन्न करने की योजनायें कार्यान्वित की जा रही हैं तथा नवीन धंधे स्थापित किए जा रहे हैं। उनका विवरण भी पुस्तक में यथास्थान दे दिया गया है। इसके अतिरिक्त पुस्तक में अनेक उपयोगी मानचित्र भी बढ़ा दिये गये हैं। पुस्तक में नवीनतम आँकड़े दिये गये हैं। प्रथम पंचवर्षीय योजना समाप्ति होने वाली है और दूसरी पंचवर्षीय योजना कार्यान्वित की जानेवाली है। अतः उनके आँकड़ों को भी यथास्थान दे दिया गया है।

यद्यपि पुस्तक मूलतः हाई स्कूल के परीक्षार्थियों के लिये लिखी गई है, किन्तु यह साधारण पाठकों के लिये भी उपयोगी सिद्ध हो, इस बात का विशेष ध्यान रक्खा गया है। आशा है कि पाठकों को यह पुस्तक भारत के आर्थिक भूगोल की उचित जानकारी कराने में सफल होगी।

विषय-सूची

पहला अध्याय

विषय-प्रवेश

दूसरा अध्याय

भारत की प्रकृति

तीसरा अध्याय

सिंचाई

चौथा अध्याय

मुख्य सफलें

पाँचवाँ अध्याय

पशु, जन्तु और उनसे उत्पन्न होने वाली वस्तुयें

छठा अध्याय

भारत के खनिज पदार्थ

सातवाँ अध्याय

वन-प्रदेश

आठवाँ अध्याय

शक्ति के साधन

नवाँ अध्याय

उद्योग-धंधों का स्थानीकरण

दसवाँ अध्याय

भारत के उद्योग-धंधे

ग्यारहवाँ अध्याय

भारत की जन-संख्या

बारहवाँ अध्याय

व्यापार के मुख्य साधन

तेरहवाँ अध्याय

प्रदेशीय और अंतर्प्रदेशीय व्यापार

चौदहवाँ अध्याय

भारत का विदेशी व्यापार

पन्द्रहवाँ अध्याय

भारतीय शहर और बन्दरगाह

भारत का आर्थिक भूगोल

(ECONOMIC GEOGRAPHY OF INDIA)

पहला अध्याय

विषय प्रवेश

आर्थिक भूगोल की परिभाषा

आर्थिक भूगोल के अंतर्गत हम यह अध्ययन करते हैं कि भौगोलिक परिस्थिति का मनुष्य की आर्थिक क्रियाओं अर्थात् खेती, उद्योग धंधे, व्यापार, गमनागमन के साधन इत्यादि पर क्या प्रभाव पड़ता है। परन्तु भौगोलिक परिस्थिति का क्या अर्थ है ? किसी भी प्रदेश की जलवायु, धरातल की बनावट, खनिज तथा वनस्पति और एक प्रदेश का दूसरे प्रदेश से भौगोलिक सम्बन्ध, ये सभी बातें भौगोलिक परिस्थिति के अंतर्गत आ जाती हैं। भौगोलिक परिस्थिति का मनुष्य-जीवन पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। मानवीय भूगोल (Human-Geography) के विद्वानों का तो यहाँ तक कहना है कि मनुष्य जिस प्रकार की भौगोलिक परिस्थिति में रहता है, उसका जीवन उसी के अनुरूप बन जाता है। भूगोल के एक प्रसिद्ध विद्वान् ने कहा है "मनुष्य अपनी भौगोलिक परिस्थिति की उपज है।" यह कथन बिल्कुल ठीक हैं। आगे के पृष्ठों में हम संक्षेप में यह बतलाने का प्रयत्न करेंगे कि भौगोलिक परिस्थिति मनुष्य के रहन-सहन, आर्थिक उन्नति, स्वभाव तथा मानसिक और शारीरिक अवस्था पर कितना प्रभाव डालती है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि आर्थिक भूगोल के अन्तर्गत उन सब भौगोलिक परिस्थितियों का विवरण होना आवश्यक है, जो वस्तुओं की उत्पत्ति, यातायात और क्रय-विक्रय पर प्रभाव डालती हैं।

आर्थिक भूगोल का क्षेत्र

मनुष्य अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए प्रकृति पर निर्भर रहता है। वह प्रकृति की सहायता से अनेक वस्तुओं को उत्पन्न करता है। उदाहरण के लिए भूमि, वर्षा, धूप, और वायु की मदद से किसान बहुत प्रकार की फसलें उत्पन्न करता है, जो मनुष्य के भोजन का काम देती हैं और उद्योग-धन्धों के लिए कच्चे माल को उत्पन्न करती हैं। जंगलों में प्रकृति बहुत प्रकार की लकड़ी तथा अन्य वन-सम्पत्ति उत्पन्न करती है, जिसके द्वारा मनुष्य तरह-तरह की वस्तुएँ तैयार करता है। इसी प्रकार प्रकृति ने पृथ्वी के गर्भ में बहुत प्रकार के खनिज पदार्थ भर दिए हैं, जिनके द्वारा मनुष्य बहुत तरह की वस्तुओं का निर्माण करता है। इसी प्रकार प्रकृति ने समुद्रों में मछलियों का अटूट भंडार भर रक्खा है, जिनका मनुष्य भोजन के लिए तथा अन्य वस्तुओं का निर्माण करने के लिए उपयोग करता है। यही नहीं, पशु-पक्षी और कीड़े भी प्रकृति पर ही निर्भर हैं, जिनसे मनुष्य की शक्ति, खाद्य पदार्थ, वस्त्र इत्यादि मिलते हैं। कहने का तात्पर्य यह कि खेती, पशु-पालन, पक्षी-पालन, रेशम इत्यादि के कीड़ों का पालन, खनिज पदार्थ, तथा मछलियाँ प्रकृति पर निर्भर हैं।

यही नहीं, गमनागमन और परिवहन के साधन भी धरातल की बनावट और जलवायु पर निर्भर रहते हैं। भौगोलिक परिस्थिति अर्थात् धरातल की बनावट और जलवायु ही मनुष्य की कार्य-क्षमता को निर्धारित करती है। शक्ति के साधनों (कोयला, बिजली की शक्ति, गैस तथा पानी की शक्ति) सभी जलवायु तथा धरातल की बनावट पर निर्भर हैं।

संक्षेप में हम देखें तो औद्योगिक कच्चा माल हमें खेती, पशु-पक्षी-पालन, वन-सम्पत्ति, मछलियों, तथा खनिज पदार्थों से मिलता है। यह भौगोलिक परिस्थिति अर्थात् धरातल की बनावट और जलवायु पर निर्भर है। शक्ति के साधन अर्थात् भाप, बिजली, गैस इत्यादि भी भौगोलिक परिस्थिति पर निर्भर हैं। यातायात के साधन और मनुष्यों की कार्य-क्षमता भी भौगोलिक परिस्थिति पर निर्भर रहती है। इन्हीं बातों पर उद्योग-धन्धों की उन्नति निर्भर है और

उद्योग-धन्धों तथा यातायात के साधनों पर व्यापार निर्भर है। अतएव यह स्पष्ट हो गया कि भौगोलिक परिस्थिति किसी देश की आर्थिक उन्नति का मुख्य कारण है। अस्तु, आर्थिक भूगोल के विद्यार्थी को इन सभी बातों का अध्ययन करना आवश्यक है। इन बातों के अतिरिक्त आर्थिक भूगोल के विद्यार्थी को अन्य समस्याओं का भी अध्ययन करना होगा, जैसे-उजाड़ देश को आबाद करने के कारण, एक देश से दूसरे देश में मनुष्यों के प्रवास होने के कारण, तथा भिन्न-भिन्न जातियों के मिलने से जो आर्थिक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं, उनका भी हमें अध्ययन करना होगा।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि आर्थिक भूगोल देश के प्राकृतिक तथा राजनैतिक विभाजन, जनसंख्या का वितरण, कृषि, पशु-पालन, पक्षी-पालन, खनिज धन्धे, मछली के धन्धे, वन सम्बन्धी धन्धे, उद्योग-धन्धे, यातायात, व्यापार, मनुष्यों के रहन-सहन, जनसंख्या के वितरण, नगरों के बसने इत्यादि बातों का अध्ययन करता है। यही आर्थिक भूगोल का क्षेत्र है।

आर्थिक भूगोल के कार्य—आर्थिक भूगोल के दो मुख्य कार्य हैं। पहला कार्य तो यह है कि वह पृथ्वी के आर्थिक साधनों (Economic Resources) का ठीक-ठीक विवरण देता है और दूसरा मुख्य कार्य यह है कि वह हमें बतलाता है कि हम उन आर्थिक साधनों को मनुष्य के लाभ और उपयोग के लिए किस प्रकार काम में ला सकते हैं।

आर्थिक भूगोल के अध्ययन से लाभ

आर्थिक भूगोल के अध्ययन से हमें नीचे लिखे लाभ होते हैं:—

(१) आर्थिक भूगोल से हम यह जान सकते हैं कि कौन-कौन सी चीजें, कच्चा माल (जैसे-खेती की पैदावार, खनिज पदार्थ, वनों में उत्पन्न होने वाली वस्तुएँ, मछली इत्यादि) कहाँ उत्पन्न होते हैं और पक्का माल—अर्थात् कारखानों से तैयार की हुई भिन्न-भिन्न प्रकार की चीजें कहाँ मिल सकती हैं।

(२) आर्थिक भूगोल हमें पृथ्वी के आर्थिक साधनों (खेती की पैदावार,

वन-सम्पत्ति, खनिज सम्पत्ति, शक्ति के साधन तथा मछलियों) के बारे में ही ठीक-ठीक जानकारी नहीं देता, वरन् हमें यह भी बतलाता है कि इन आर्थिक साधनों का मनुष्य-समाज के हित के लिये किस प्रकार उपयोग किया जाना चाहिये। इस दृष्टि से आर्थिक भूगोल का महत्व बहुत अधिक है।

(३) हमको आर्थिक भूगोल के अध्ययन से यह लाभ होगा कि हम जान सकेंगे कि भिन्न-भिन्न देशों का व्यापार क्या है। एक देश दूसरे देशों से क्या चीजें मँगाता है और कौन-सी वस्तुएँ वहाँ भेजता है।

(४) भिन्न-भिन्न देशों के उद्योग-धंधे और पेशे क्या हैं, इनकी जानकारी भी हमें आर्थिक भूगोल से ही होती है।

(५) किसी धंधे या पेशे की सफलता किन कारणों पर निर्भर है, इसका ज्ञान भी आर्थिक भूगोल पढ़ कर ही हम प्राप्त कर सकते हैं।

(६) व्यापारिक केन्द्रों, बन्दरगाहों और धन्धों की उन्नति के कारणों को भी आर्थिक भूगोल हमें बतलाता है।

(७) सच तो यह है कि जो व्यक्ति कोई व्यापार या धन्धा करना चाहता है, उसके लिये आर्थिक भूगोल का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक और लाभ-दायक है। आर्थिक भूगोल का ज्ञान प्राप्त करके ही वह यह निश्चय कर सकता है कि कहाँ से क्या माल मँगाया जावे और किस स्थान पर कोई धन्धा खड़ा किया जा सकता है।

(८) आर्थिक भूगोल वास्तव में पृथ्वी रूपी एक विशाल कारखाने का सही चित्र हमारे सामने रखता है। अस्तु, यदि इस विषय का ठीक प्रकार से अध्ययन किया जावे तो आज दिन की बहुत सी राजनैतिक समस्याओं का, जो कि वास्तव में आर्थिक भूगोल की समस्याएँ हैं, हल ढूँढ़ निकाला जा सकता है।

आर्थिक भूगोल का भूगोल की अन्य शाखाओं से संबंध

आर्थिक भूगोल, भूगोल विषय की एक शाखा है; वह कोई स्वतन्त्र विषय नहीं है। अस्तु, उसका भूगोल की अन्य शाखाओं से घनिष्ठ सम्बन्ध होना स्वाभाविक ही है।

किसी भी देश की खेती, उद्योग धन्धे तथा व्यापार उस देश के धरातल की बनावट, जलवायु तथा स्थिति पर निर्भर होते हैं। इन सबका अध्ययन हम प्राकृतिक भूगोल में करते हैं। अस्तु, आर्थिक भूगोल तथा प्राकृतिक भूगोल का घनिष्ठ सम्बन्ध है।

किसी भी देश के आर्थिक भूगोल का अध्ययन उस देश के राजनैतिक भूगोल के जाने बिना नहीं किया जा सकता। राजनैतिक भूगोल में हम उस देश के निवासियों, राज्य, संस्थाओं, तथा वहाँ के नियमों के बारे में अध्ययन करते हैं।

भूगर्भ शास्त्र देश के धरातल की बनावट का अध्ययन करता है और हमें खनिज पदार्थों, चट्टानों तथा मिट्टियों के बारे में जानकारी देता है, जो कि मनुष्य के जीवन पर बहुत गहरा प्रभाव डालते हैं। अतः उसका भी आर्थिक भूगोल से गहरा सम्बन्ध है।

गणितात्मक भूगोल—पृथ्वी के आकार, विस्तार, गति इत्यादि का अध्ययन करता है, तथा ज्वार-भाटे और समुद्रीय धाराओं की जानकारी देता है। उनके द्वारा पृथ्वी की जलवायु तथा वनस्पति प्रभावित होती हैं। अतएव आर्थिक भूगोल से इसका भी गहरा सम्बन्ध है।

इनके अतिरिक्त आर्थिक भूगोल को अर्थशास्त्र, समाज-शास्त्र, इतिहास, वनस्पति-शास्त्र-प्राणि-शास्त्र तथा रसायन शास्त्र से भी उपयोगी जानकारी मिलती है। अतएव वह इन शास्त्रों से भी सहायता लेता है।

मनुष्य तथा उसकी परिस्थिति

जिस स्थान में मनुष्य निवास करता है, वहीं के अनुसार उसे अपना जीवन बनाना पड़ता है क्योंकि उसे अपने जीवन की रक्षा के लिये भोजन तथा शरीर-रक्षा के लिये कपड़े, और रहने के लिये सुरक्षित स्थान (मकान) की आवश्यकता होती है। यह जानने के लिए कि किसी देश के मनुष्यों का मुख्य धन्धा क्या होगा, वहाँ का पहिनावा क्या होगा, तथा उस देश के निवासियों का रहन सहन और स्वभाव कैसा होगा, उनकी कार्य—क्षमता कैसी होगी, हमें वहाँ की भौगो-

लिक परिस्थिति को ध्यान में रखना होगा, क्योंकि ये सब बातें भौगोलिक परिस्थिति पर ही अवलम्बित हैं। मानवीय भूगोल के विद्वानों का कहना है कि मनुष्य अपने निवास स्थान की उपज है। यदि देखा जावे तो प्रत्येक पेशा मनुष्य के स्वभाव पर एक प्रकार का विशेष प्रभाव डालता है। यदि भिन्न-भिन्न जातियों के स्वभाव का निरीक्षण किया जावे तो यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है।

शिकारी और गड़रिये

उदाहरण के लिए संसार की उन जातियों को ले लीजिये, जो जंगली प्रदेशों में निवास करती हैं और शिकार के द्वारा अपना जीवन-निर्वाह करती हैं। उनका स्वभाव विनाशकारी होता है। वे लड़ने भिड़ने के लिये विशेष उत्सुक रहती हैं। इसका मुख्य-कारण यह है कि शिकारी जाति का ध्येय ही विनाश करना होता है। वह वन-पशु तथा पक्षियों को नष्ट करके ही जीवित रहती है। शिकारी जाति के लिये जीवन का अधिक मूल्य नहीं होता। छोटी-सी बात पर शिकारी किसी से लड़ जावेगा और उसका जीवन अथवा अपना जीवन नष्ट कर देगा। यही कारण है कि शिकारियों में शक्तिवान व्यक्ति आदर की दृष्टि से देखा जाता है। गड़रिये का स्वभाव शिकारी से भिन्न होता है, क्योंकि उसके लिये जीवन मूल्यवान् होता है; वह अपने पशुओं को जंगली पशुओं से बचाने का प्रयत्न करता है। उसके जीवन का ध्येय अपने पशु-सम्पति की रक्षा करना होता है। भला वह शिकारियों की भाँति कलह-प्रिय क्योंकर होगा! यही कारण है कि गड़रियों में आयु और अनुभव को श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता है, न कि शारीरिक शक्ति को। गड़रिये अधिक कुशाग्र बुद्धि वाले नहीं होते क्योंकि वह भेड़ पालने का धन्धा करते हैं। यह बुद्धिमान पशु नहीं है और उस कार्य में विभिन्नता नहीं होती; वह सदैव एक समान होता है। इसीलिए गड़रिये का बौद्धिक विकास नहीं हो पाता।

किसान

किसान का काम खेती-बारी करना और फसल की रक्षा करना है। उसके जीवन का उद्देश्य विनाशकारी न होकर अपनी खेती की उन्नति करना होता

है। किसान का जीवन अपनी भूमि से इतना अधिक सम्बन्धित होता है कि वह किसी भी परिवर्तन को जल्दी स्वीकार नहीं करता। किसान अपने गाँव तथा देश को छोड़कर बाहर जाना पसन्द नहीं करता और न वह किसी नई बात को शीघ्र ही अपनाता है। किसान का स्वभाव शान्त होता है। कलह उसके स्वभाव के विरुद्ध है। गाँवों की कुछ जातियों में प्राचीन रीतियों को श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता है और उन्हें अपने वंशपरम्परागत अनुभव पर अधिक विश्वास होता है। इसका मुख्य कारण यह है कि खेतों में बहुत प्रकार की क्रियाएँ होती हैं और मौसम में तनिक भी परिवर्तन होने से क्रियाओं में हेर-फेर करना आवश्यक हो जाता है। इसके अतिरिक्त फसलों में खराबी हो जाने अथवा रोग लग जाने अथवा पशुओं में रोग फैल जाने पर पुराना अनुभव ही काम आता है। यही कारण है कि खेतिहर जातियों में वृद्ध स्त्री-पुरुष का बहुत आदर होता है। वे 'प्राचीन' को श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं; उसको शीघ्र छोड़ने को तैयार नहीं होते और 'नवीन' को शीघ्र ही नहीं अपना लेते। इसके अतिरिक्त किसान का भूमि से घनिष्ठ संबंध होने के कारण वह अपने गाँव को छोड़ना नहीं चाहता। अन्य किसी स्थान पर उसे अधिक लाभ हो तो भी वह गाँव छोड़कर नहीं जाता। खेती में कार्य-विभिन्नता बहुत होती है, इस कारण किसान की बुद्धि का खूब विकास होता है।

मजदूर

बड़े-बड़े व्यापारिक तथा औद्योगिक नगरों में मजदूरों का एक नया वर्ग उत्पन्न हो गया है, जो कारखानों में काम करता है। इन औद्योगिक मजदूरों का स्वभाव सर्वथा भिन्न होता है।

नगरों में रहने वाले मजदूरों का जीवन एक-सा नहीं रहता। वह बदलता रहता है। वहाँ यदि मजदूर मशीन पर काम करता है, तो थोड़े दिनों के उपरान्त एक दूसरी तरह की मशीन का आविष्कार हो जाता है और मजदूर को उस पर काम करना पड़ता है। यही नहीं, जिन वस्तुओं को कारखाने में तैयार किया जाता है, उनके स्वरूप में भी परिवर्तन किया जाता है। कहने का

मतलब यह है कि औद्योगिक नगरों में रहने वाले मजदूरों का जीवन परिवर्तनशील होता है। यही कारण है कि नगरों में रहने वाले मजदूरों को किसी एक स्थान से प्रेम नहीं होता है। यदि लंदन में काम करने वाला मजदूर कनाडा में धन उपार्जन करने का अच्छा अवसर देखता है, तो बिना किसी हिचकिचाहट के वह अपने देश को छोड़कर कनाडा जा सकता है। इसके विपरीत भारत के किसी गाँव का किसान अपने गाँव को नहीं छोड़ना चाहता। चाहे कोई भी देश क्यों न हो, वहाँ की भिन्न-भिन्न पेशे वाली जातियों के स्वभाव अवश्य ही भिन्न होंगे। देखने से ही ज्ञात हो जायगा कि पाकिस्तान के उत्तर-पश्चिम सीमान्त में मिले हुये पहाड़ी प्रदेश की जातियों का स्वभाव कितना क्रूर है और भारत के किसानों का कितना शान्त है। वास्तव में यदि देखा जावे, तो मनुष्य के जीवन पर उसके निवास स्थान का अमिट प्रभाव होता है।

परिस्थिति का प्रभाव

अब हमें यह देखना है कि मनुष्य के जीवन पर भिन्न-भिन्न परिस्थितियों का कैसा प्रभाव पड़ता है। हममें से बहुत से लोग समझते हैं कि इस विज्ञान के युग में प्रकृति मनुष्य के वश में आ गई है। किन्तु ऐसा समझना हम लोगों की भूल है। विज्ञान के द्वारा मनुष्य ने प्रकृति से अपने कार्य में सहायता लेना सीख लिया है और प्रकृति की शक्तियों के बुरे प्रभावों से अपने को बचाने में भी उसे सफलता मिल गई है, परन्तु इससे अधिक वह कुछ नहीं कर सकता। उदाहरण के लिये मनुष्य कोयले तथा पानी से भाप और बिजली पैदा करके उसका कारखानों में उपयोग करता है और वर्षा तथा धूप से बचने के लिये उसने भिन्न-भिन्न प्रकार के मकानों को बनाया है, परन्तु उष्ण-कटिबन्ध आज भी गर्म है। चावल की पैदावार आज भी गरम देशों में ही हो सकती है, लाख प्रयत्न करने पर भी चावल नार्वे और स्वीडन में पैदा नहीं किया जा सकता। वैज्ञानिकों के लाख प्रयत्न करने पर भी आइसलैंड में उसकी खेती नहीं की जा सकती। अपने अनुभव से मनुष्य यह तो जान गया कि भिन्न-भिन्न फसलें किस प्रकार की जल-

वायु में उत्पन्न की जा सकती हैं, किन्तु जलवायु में परिवर्तन करना उसके वश की बात नहीं है।

आज भी रेलवे लाइन पर्वतीय प्रदेशों में प्राचीन घाटियों के रास्ते ही से होकर जाती है, जो अत्यन्त प्राचीन समय से व्यापारिक मार्ग थे। फिर भी यह मानना होगा कि इस वैज्ञानिक युग में सभ्य जातियों ने अपने को प्रकृति के अधिकार से बहुत कुछ स्वतंत्र कर लिया है। लेकिन अफ्रीका के सघन वनों में रहने वाले हब्शी और राजस्थान तथा मध्य भारत में रहने वाले भील, छोटा नागपुर के सन्थाल और आसाम के नागा आज भी प्रकृति के आधीन हैं।

भिन्न परिस्थितियों में रहने वाली जातियों के विचार, रहन-सहन तथा स्वभाव भिन्न होते हैं। धीरे-धीरे उन जातियों में कुछ विशेषता आ जाती है। यहाँ तक कि वह एक दूसरे से बिलकुल भिन्न हो जाती हैं। हमें जो भिन्न जातियों में असमानता दृष्टिगोचर होती है, वह केवल भौगोलिक परिस्थिति का ही प्रभाव है। यदि बङ्गाल प्रदेश के रहने वाले मनुष्य कमजोर होते हैं और नेपाल की घाटियों में रहने वाले गुरखे हृष्ट-पुष्ट और बलवान होते हैं, तो इसका कारण दोनों देशों की भौगोलिक परिस्थिति में छिपा है। बिलोचिस्तान के शुष्क पठार में रहने वाले बिलोची जन्म-जात बलिष्ठ होते हैं, क्योंकि प्रकृति वहाँ उदार नहीं है और मनुष्य को अपने भरण-पोषण के लिए कठोर परिश्रम करना पड़ता है। हिमालय के निवासियों को देखिए। उनकी टाँगों और विशेष कर उनकी पिंडलियों की सुन्दरता देखिए। ये कितनी सुन्दर होती हैं! क्योंकि उन्हें शताब्दियों से पहाड़ों पर चढ़ना पड़ता है। भूमध्य रेखा के समीपवर्ती सघन वनों में रहने वाले लोग निर्बल और आलसी होते हैं, क्योंकि वहाँ प्रकृति इतनी उदार है कि थोड़े प्रयत्न से ही मनुष्य अपनी उदर-पूर्ति कर लेता है।

मरुभूमि की रहने वाली जातियाँ घुमक्कड़ बन जाती हैं, क्योंकि उन्हें जल की खोज में अपने पशुओं सहित एक स्थान से दूसरे स्थान पर निरन्तर जाना पड़ता है। इसी प्रकार जातियों के रीति-रस्म और आचार-विचार भी भिन्न हो जाते हैं।

धरातल की बनावट और उसका प्रभाव

धरातल की बनावट का प्रभाव मनुष्य के जीवन पर बहुत अधिक पड़ता है। किसी भी देश की जलवायु और पैदावार बहुत कुछ धरातल की बनावट पर निर्भर है। यही नहीं, धरातल की बनावट इस बात को भी निर्धारित करती है कि अमुक देश औद्योगिक उन्नति करेगा या नहीं। पहाड़ी प्रदेशों की साधारणतया औद्योगिक उन्नति कम होती है, क्योंकि वहाँ मार्गों की सुविधा नहीं होती। खेती-बारी और उद्योग-धन्धे ऊँचे पहाड़ी देश में पनप ही नहीं सकते। जब सम्पत्ति का उत्पादन पहाड़ी देशों में कम होता है, तो वहाँ जनसंख्या भी कम और बिखरी हुई होती है। पहाड़ी प्रदेशों के निवासियों में मुख्य धन्धे पशु-पालन, खान खोदना तथा लकड़ी का सामान बनाना है। नीचे मैदान में, जहाँ की भूमि उपजाऊ हो, घनी आबादी मिलती है, क्योंकि ऐसे प्रदेशो में खेती-बारी तथा अन्य उद्योग-धन्धे खूब पनप सकते हैं और मार्गों की सुविधा होने से व्यापार की भी उन्नति हो सकती है।

इनके साथ हमें नदियों पर विचार करना आवश्यक है। नदियाँ मनुष्य-समाज की आर्थिक उन्नति में बहुत सहायक होती हैं। खेतों की सिचाई और व्यापारिक मार्ग के लिये नदियों का उपयोग होता है। आधुनिक काल में पानी से सस्ते दामों में बिजली उत्पन्न करने की नवीन विधि ने नदियों (विशेष कर पहाड़ी नदियों) का महत्व और भी बढ़ा दिया है।

इनके अतिरिक्त धरातल की बनावट का अध्ययन इसलिये भी आवश्यक है कि इससे एक प्रदेश का दूसरे प्रदेश से सम्बन्ध ज्ञात होता है। यदि कोई विद्यार्थी बम्बई अथवा मद्रास के महत्व को जानना चाहता है, तो उसे इन बन्दरगाहों से सम्बन्धित कृषि-प्रधान देश का अध्ययन करना होगा।

केवल धरातल की बनावट का ही अध्ययन करने से काम नहीं चलेगा। हमें उन चट्टानों के विषय में भी अध्ययन करना होगा, जिनसे धरातल बना है। चट्टानों के टूटने से ही मिट्टी बनती है और चट्टानों की बनावट पर ही धातुओं का होना भी निभर है। भूगर्भ-विद्या के जानने वालों ने पता लगाया है कि भिन्न-भिन्न समय की बनी हुई चट्टानों में भिन्न-भिन्न प्रकार

की धातुएँ पाई जाती हैं। कौन-सी धातु कहाँ मिलेगी, यह वहाँ की चट्टानों की बनावट पर निर्भर है। यही नहीं, मिट्टी की उत्पादन-शक्ति भी उसमें मिली चट्टानों के कणों पर ही अवलम्बित होती है। कुछ चट्टानों की मिट्टी अत्यन्त उपजाऊ तथा दूसरी चट्टानों की मिट्टी फसलों के लिये हानिकारक होती है। उदाहरण के लिये लैटेराइट जाति की मिट्टी खेती-बारी के काम की नहीं होती। रेह वाली तथा नमकीन मिट्टी पौधे को उगने ही नहीं देती। यह उन स्थानों पर पाई जाती है, जहाँ पानी कम बरसता है अथवा जहाँ वर्षा के पानी को बहने के लिये मार्ग ही नहीं मिलता। ऐसे स्थानों में वर्षा का पानी पृथ्वी की तह में नीचे चला जाता है और नमक उसमें घुलकर अन्दर ही इकट्ठा हो जाता है। जब तेज धूप से पानी भाप बन कर उड़ता है तो अन्दर से नमक ऊपर आकर पृथ्वी पर जम जाता है और भूमि खेती-बारी के लिए बेकार हो जाती है। जिस मिट्टी में वनस्पति का अधिक अंश होता है, उसकी उर्वरा शक्ति बढ़ जाती है। ज्वालामुखी पर्वतों के फूटने से जो पिघले हुए पदार्थ निकलते हैं, उनके द्वारा बनी हुई मिट्टी बहुत उपजाऊ होती है। किन्तु जो मिट्टी नदियों के द्वारा पीसी जाकर मैदानों पर बिछा दी जाती है, वह सबसे अधिक उपजाऊ होती है। संसार भर में गंगा के दोआबा, नील नदी के प्रदेश, तथा चीन में लाल नदी के प्रदेश की मिट्टी जितनी उर्वरा है, उतनी दूसरी मिट्टी नहीं हो सकती।

भूमि

पृथ्वी का क्षेत्रफल १,६७० लाख वर्गमील है। इसमें लगभग एक चौथाई भूमि है और शेष समुद्र है। हमारी पृथ्वी में कुल ५४० लाख वर्गमील भूमि है। सूखी भूमि का लगभग दो तिहाई उत्तरी गोलार्द्ध में है और शेष एक तिहाई दक्षिणी गोलार्द्ध में है। यही कारण है कि मनुष्य की उन्नति उत्तरी गोलार्द्ध में अधिक हुई और वहीं वह अधिक फला-फूला। दक्षिणी गोलार्द्ध में दक्षिणी अमेरिका, दक्षिणी अफ्रीका तथा आस्ट्रेलिया के बीच में महासागर लहराते हैं, इस कारण ये एक दूसरे से दूर पड़ गये हैं, परन्तु उत्तरी गोलार्द्ध

में भूमि के सभी बड़े भू-भाग एक दूसरे से मिले हुए उत्तरी गोलार्द्ध में जलवायु ठंडी है, अतएव मनुष्य उद्यमी और पुरुषार्थी होता है। किन्तु दक्षिणी गोलार्द्ध की भूमि की जलवायु गर्म है, अतएव उसकी उन्नति अधिक नहीं हुई है। धरातल का रूप सब जगह एक सा नहीं है। कहीं गगनचुम्बी पहाड़ हैं, तो कहीं पठार; कहीं नदियों की घाटियाँ हैं, तो कहीं चौरस मैदान दिखलाई पड़ते हैं। धरातल के ये भिन्न-भिन्न स्वरूप पृथ्वी में होने वाले परिवर्तनों तथा जलवायु के कारण बन गए हैं। पृथ्वी में दो प्रकार के परिवर्तन होते हैं—एक तो इतना धीरे-धीरे होता है कि उसको हम जान ही नहीं पाते। उदाहरण के लिए पृथ्वी के कुछ भाग धीरे-धीरे ऊँचे उठते जा रहे हैं और कुछ भाग नीचे होते जा रहे हैं। दूसरे प्रकार का परिवर्तन भूकम्पों तथा ज्वालामुखी पहाड़ों के फटने से होता है। इनके द्वारा धरातल में एकाएक भारी परिवर्तन हो जाता है। जलवायु के द्वारा धरातल में जो परिवर्तन होते हैं, वे अधिक महत्वपूर्ण हैं। धरातल को आधुनिक रूप देने में वर्षा, जल, वायु, धूप तथा वृक्षों का अधिक हाथ रहा है। नदियाँ पहाड़ों को काट-काट कर घाटियाँ बनाती हैं तथा चट्टानों को तोड़कर, पत्थरों को पीस कर मिट्टी को नीचे मैदानों पर बिछा देती हैं। हवा एक स्थान से मिट्टी को उड़ाकर दूसरे स्थान पर ले जाती है। बर्फ, पौधे तथा धूर धीरे-धीरे धरातल को तोड़ते रहते हैं। जब चट्टानों के बीच में ठण्डक के कारण पानी जम जाता है, तो वह चट्टानों को तोड़ देता है। हिम-नदी (ग्लेशियर) चट्टानों को तोड़कर उन्हें घिस देती है और जहाँ वह पिघलती है, वहाँ उस मिट्टी को बिछा देती है। हवा और पानी ने धीरे-धीरे धरातल को बहुत कुछ बदल दिया है। गंगा और सिंधु के मैदान इन दो नदियों द्वारा लाई हुई मिट्टी से ही बने हैं।

चट्टानें

केवल पृथ्वी के धरातल की बनावट का ही अध्ययन करने से काम नहीं चल सकता है; हमें उन चट्टानों के विषय में भी जानकारी करनी होगी, जिनसे धरातल बना है। चट्टानों के टूटने से ही मिट्टी बनती है और

चट्टानों की बनावट पर ही धातुओं का होना भी निर्भर है। चट्टानें तीन प्रकार की होती हैं :—

(१) आग्नेय चट्टान (Igneous Rocks)

(२) तलछट वाली चट्टान (Sedimentary Rocks)

(३) परिवर्तित चट्टान (Metamorphic Rocks)

(१) आग्नेय चट्टान पिघले हुये पदार्थ के जम जाने से बनती है। इसमें पर्त नहीं होते, रवे होते हैं। पहले पृथ्वी जलती हुई अग्नि का गोला थी और सब पदार्थ पिघली हुई दशा में थे। जब पृथ्वी के ठंडा होने के कारण वह पिघला हुआ पदार्थ जम गया, उस समय ये चट्टानें बनीं। इसी कारण इनको मुख्य चट्टान (Primary Rocks) भी कहते हैं।

(२) तलछट वाली चट्टान में पर्त होते हैं। आग्नेय चट्टान जब हवा, बर्फ, पानी तथा धूप के कारण टूटी और वह चूरा हवा अथवा पानी द्वारा दूसरे स्थानों पर जमा दिया गया, तो जो उससे चट्टानें बनीं उन्हें तलछट वाली चट्टान (Sedimentary Rocks) या गौण चट्टान (Secondary Rocks) भी कहते हैं।

(३) परिवर्तित चट्टान पहली दोनों चट्टानों का परिवर्तित रूप है। जब बहुत अधिक दबाव तथा गर्मी के कारण इनका रूप बदल जाता है, तब वे पहचानी नहीं जातीं। इनमें पर्त और रवे दोनों ही पाये जाते हैं। संगमरमर परिवर्तित चट्टान का उदाहरण है।

चट्टानों का आर्थिक महत्व बहुत अधिक है। क्योंकि चट्टानों के ऊपर ही मिट्टी की अच्छाई-बुराई निर्भर है। कुछ चट्टानों की मिट्टी अच्छी और अधिक उपजाऊ होती है, और कुछ की बहुत खराब होती है। खेती की पैदावार मिट्टी पर निर्भर रहती है। यदि मिट्टी अच्छी है तो पैदावार अच्छी होगी और यदि मिट्टी बेकार है, तो पैदावार नहीं हो सकती। अतएव खेतों की उन्नति और सफलता चट्टानों पर बहुत कुछ अवलम्बित है।

इसके अतिरिक्त चट्टानों की बनावट और खनिज पदार्थों का गहरा सम्बन्ध है। कुछ चट्टानें ऐसी होती हैं कि उनमें खनिज पदार्थ बहुत कम होते हैं और कुछ में खनिज पदार्थ बहुत होते हैं। खनिज पदार्थों से हमारे धंधे, कल-कारखाने चलते हैं। इसलिये यह स्पष्ट हो जाता है कि खेती और उद्योग-धंधे की उन्नति बहुत कुछ चट्टानों पर निर्भर है। इसी से चट्टानों का आर्थिक महत्व है।

मिट्टी

मनुष्य के लिये मिट्टी का भी बहुत महत्व है। क्योंकि सारी पैदावार मिट्टी पर ही निर्भर है। यदि किसी देश की मिट्टी उपजाऊ है, तो वहाँ खेती की उन्नति हो सकती है, अन्यथा नहीं। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि मनुष्य के सारे आर्थिक प्रयत्न प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से मिट्टी पर निर्भर है।

पृथ्वी की ऊपरी सतह पर जो चट्टानों का टूटा हुआ चूरा बिछा रहता है, उसी को मिट्टी कहते हैं। किसी प्रदेश की मिट्टी पर तीन बातों का प्रभाव रहता है—(१) जिस चट्टान से वह मिट्टी बनी; (२) जलवायु; (३) उस चट्टान पर उत्पन्न होने वाली वनस्पति। इन्हीं तीनों बातों के आधार पर मिट्टी दो प्रकार की मानी गई है—एक तो वह मिट्टी, जिसके बनने में बाहरी शक्ति अर्थात् जलवायु तथा वनस्पति का प्रभाव मुख्य है। दूसरी वह मिट्टी, जिस पर चट्टानों का मुख्य प्रभाव है।

उदाहरण के लिये पहले प्रकार की मिट्टी गंगा के मैदान की मिट्टी है और दूसरे प्रकार की मिट्टी मध्य भारत की काली मिट्टी है। किन्तु इससे यह न समझ लेना कि हम अपने गाँव या प्रदेश में जो मिट्टी देखते हैं, वह वहाँ के चट्टानों से बनी है। अधिकतर मिट्टी जहाँ वह बनी, वहाँ से प्रकृति की शक्तियों द्वारा दूसरे स्थान पर ले जाकर जमा दी गई है। मिट्टी को एक स्थान से दूसरे स्थान पर जमा देने में जल, वायु और बर्फ का मुख्य हाथ रहा है।

नदियाँ चट्टानों को तोड़ कर जो मिट्टी बनाती हैं और बहाकर नीचे के

मैदानों में बिछा देती हैं, उसे गंगवार मिट्टी (Alluvial soil) कहते हैं। यह अत्यन्त उपजाऊ मिट्टी होती है। जो मिट्टी हवा द्वारा उड़ाकर दूसरी जगह बिछा दी जाती है, उसे लोयस (Loess) कहते हैं। चीन तथा मध्य योरोप में यह मिट्टी पाई जाती है। यह भी बहुत उपजाऊ होती है। हिम-नदी (Glaciers) के द्वारा जमा की हुई मिट्टी को टिल (Till) कहते हैं। यह भी उपजाऊ होती है।

ऊपर हमने यह बतलाने का प्रयत्न किया है कि मिट्टी किस प्रकार बनी। अब हम मिट्टी के रूपों का वर्णन करेंगे। मिट्टी के तीन रूप हैं—चीका (Clay), रेत (Sand) और दोमट (Loam)। चीका मिट्टी बहुत कड़ी और चिकनी होती है। उसमें न तो पानी ही जल्दी पहुँच सकता है और न हवा ही जल्दी पहुँच सकती है। इस कारण चीका मिट्टी खेती के लिए उपयोगी नहीं होती। रेतीली मिट्टी में चीका का अंश बहुत कम होता है। उसके कण अलग-अलग रहते हैं। उसमें कणों को जोड़ देने वाला पदार्थ नहीं होता। इस कारण उसमें उत्पन्न होने वाले पौधों की जड़ तक हवा और पानी सरलता से पहुँच सकता है। रेतीली मिट्टी पर खेती करने के लिये पानी की बहुत आवश्यकता होती है। यदि जल की कमी हो, तो पैदावार नहीं हो सकती। दोमट मिट्टी (Loam) में दोनों प्रकार की मिट्टी होती है अर्थात् उसमें रेत और चीका समान रूप से मिले रहते हैं। दोमट मिट्टी में सब प्रकार की मिट्टियों के गुण होते हैं। कुछ पौधों के लिए रेतीली मिट्टी उपयोगी होती है और कुछ के लिए रेतीली मिट्टी हानिकारक होती है। जिन पौधों के लिए जड़ के पास अधिक समय तक पानी की आवश्यकता है, रेतीली मिट्टी अधिक उपयोगी सिद्ध नहीं होती। रेतीली मिट्टी में पानी बहुत गहराई तक चला जाता है और साथ ही वह सूर्य की किरणों से शीघ्र ही सूख भी जाता है। चीका मिट्टी खेती के लिए सर्वथा अनुपयुक्त है, क्योंकि एक तो पौधा उसमें अपनी जड़ को आसानी से नहीं फैला सकता, फिर उसमें हवा और पानी भी जड़ तक आसानी से नहीं पहुँच सकते। इस कारण ऐसी मिट्टी पर खेती नहीं की जाती, केवल घास ही उगती है।

मिट्टी का कार्य—यह तो हम पहले ही कह आये हैं कि मिट्टी चट्टानों का चूरा है। जिसमें वनस्पति का यथेष्ट अंश मिला होता है। इस पर पौधा उगता है और अपनी जड़ों को उसमें घुसेड़ कर अपने जीवित रहने के लिए आवश्यक तत्वों को प्राप्त करता है। मिट्टी में पौधों के लिए निम्नलिखित चार तत्व आवश्यक होते हैं—नत्रजन, कैलशियम, फास्फोरस, और पोटेशियम। जिस भूमि में इन तत्वों की कमी हो जाती है, उनकी उर्वरा शक्ति घट जाती है और उस पर खेती करने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि खाद देकर उन तत्वों की कमी को पूरा किया जावे।

मिट्टी में परिवर्तन—मिट्टी में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। मिट्टी में चार प्रकार के परिवर्तन होते हैं। (१) पहले परिवर्तन को मिट्टी का 'क्रमिक विकास' कहते हैं। वर्षा तथा जल के बहाव, जलवायु और पौधों के प्रभाव के कारण तथा रासायनिक क्रियाओं द्वारा मिट्टी सदैव बदलती रहती है और उसका विकास होता रहता है। इस क्रिया के द्वारा प्रथम चट्टानें टूट कर अपरिपक्व मिट्टी बनती है; दूसरी स्थिति में इस क्रिया के द्वारा अपरिपक्व मिट्टी अच्छी तरुण मिट्टी बनती है, उसमें उन्नति होती है। तीसरी स्थिति में मिट्टी बहुत उपजाऊ और पूर्ण रूप से परिपक्व बन जाती है और चौथी स्थिति तब होती है, जब मिट्टी निर्बल और पुरानी अर्थात् वृद्ध हो जाती है। उस मिट्टी में से पौधों के पोषण करने की शक्ति नष्ट हो जाती है। उस दशा में मनुष्य को मिट्टी को बहुत गहरा पलट कर तथा अन्य उपायों से खेती के उपयुक्त बनाना पड़ता है। इस क्रिया को मिट्टी का क्रमिक विकास कहते हैं और यह प्राकृतिक रूप से होता रहता है।

(२) दूसरे प्रकार का परिवर्तन तब होता है जब कि फसलें मिट्टी में से कुछ तत्व बहुत तेजी से खींच लेती हैं। यदि इस प्रकार की मिट्टी को थोड़ा विश्राम दिया जावे और उस पर कुछ समय तक खेती न की जावे, तो यह थकी हुई मिट्टी फिर उपजाऊ बन सकती है।

(३) तीसरे प्रकार का परिवर्तन खाद द्वारा होता है। खाद देने का परिणाम यह होता है कि जो मिट्टी कम उपजाऊ होती है, उसकी उर्वरा शक्ति

बढ़ जाती है तथा मिट्टी के पुरानी अर्थात् वृद्ध होने से जो उर्वरा शक्ति नष्ट हो जाती है वह भी स्थायी रूप से पूरी हो जाती है।

(४) चौथा परिवर्तन भयंकर होता है। उसे भूमि का विलयन (Soil erosion) कहते हैं। भूमि का विलयन जल, वायु अथवा बर्फ से होता है। इसमें जल द्वारा भूमि-विलयन बहुत भयंकर होता है।

भूमि-विलयन

भूमि के विलयन से प्रति वर्ष देशों की मिट्टी रूपी अनन्त सम्पत्ति बहा कर समुद्र में डाली जा रही है। यदि वर्षा के जल का नियंत्रण न किया जावे, तो वह क्रमशः भूमि को रेगिस्तान और खेती के अयोग्य बना देती है। विशेषज्ञों का कहना है कि ऊपरी मिट्टी की गहराई ६ इंच से एक फुट तक होती है। यही मिट्टी खेती की जान होती है। भूमि की यह ऊपरी मिट्टी ४०० वर्षों में एक इंच गहरी तैयार होती है। यही किसान की सबसे बड़ी पूँजी है और यही पूंजी प्रतिवर्ष विलयन या कटाव के कारण नष्ट होती जाती है।

भूमि का विलयन या कटाव तीन प्रकार का होता है। (१) जल के द्वारा, (२) हवा के द्वारा, (३) बर्फ के द्वारा। जल के द्वारा भूमि का विलयन या कटाव बहुत भयंकर होता है। वर्षा के जल के बहाव के कारण विस्तृत प्रदेश में नाले और खाइयाँ बन जाती हैं। प्रतिवर्ष ये नाले और खाइयाँ बढ़ती जाती हैं और कुछ ही वर्षों में बहुत बड़ा क्षेत्र ऊबड़-खाबड़ बन जाता है। इसके अतिरिक्त वर्षा का जल धीरे-धीरे ऊपर की सतह की मिट्टी को बहा ले जाता है। इससे भी मिट्टी की उर्वरा शक्ति कम हो जाती है।

तेज हवा द्वारा रेत तथा धूल के तूफान आते हैं। उपजाऊ भूमि रेत से पट जाती है और खेती के लिये बेकार हो जाती है।

हिमनदी भी धरातल को रगड़ती-घिसती हुई भूमि के विलयन-कार्य में योग देती है। इससे जहाँ की भूमि घिस जाती है, वहाँ धरातल पर नंगी चट्टानें अवशेष रह जाती हैं जिससे वहाँ कृषि करना असम्भव हो जाता है।

भूमि को इस प्रकार नष्ट होने से बचाने के लिये पहाड़ों पर जङ्गलों को

लगाया जाता है; पहाड़ी प्रदेशों में बेब्ल खेती (Terrace cultivation) की जाती है; नालों और खाइयों में बाँध बनाकर भावी विलयन को रोका जाता है अथवा ऊबड़-खाबड़ प्रदेश में वन लगाये जाते हैं तथा कटाव के प्रदेश के प्राकृतिक बहाव को ठीक किया जाता है।

जैसे-जैसे देशों की जनसंख्या बढ़ती जा रही है, वैसे ही वैसे मनुष्य को भूमि की उत्पादन-शक्ति को बढ़ाने की आवश्यकता का अनुभव हो रहा है। अधिकाधिक खाद के उपयोग से भूमि की उर्वरा शक्ति को घटने नहीं दिया जाता। भूमि के विलयन या कटाव को रोककर, रेह वाली भूमि को वैज्ञानिक क्रियाओं द्वारा खेती के योग्य बनाकर, दलदली भूमि को सुखाकर और पथरीली भूमि का उपयोग करके मनुष्य भूमि की कमी को पूरा कर रहा है। आज मनुष्य की आर्थिक उन्नति और सभ्यता के विकास के लिए यह आवश्यक है कि वह भूमि के अपव्यय को रोके।

जलवायु तथा उसका मनुष्य पर प्रभाव

जलवायु तथा जनसंख्या

मनुष्य के जीवन पर जलवायु का प्रभाव बहुत अधिक है। गरमी और जल मनुष्य-जीवन के लिये कितनी महत्वपूर्ण वस्तुएँ हैं, यह तो स्पष्ट ही है। किन्तु वनस्पति भी जलवायु पर ही निर्भर है। गरमी और जल काफी न होने से अथवा जरूरत से ज्यादा होने से बहुत से प्रदेश मनुष्य के निवास के योग्य नहीं रहते। गरम रेगिस्तान, बर्फीले मैदान, तथा बर्फ से ढँके हुये पहाड़ मनुष्य के निवास-स्थान बनने के योग्य नहीं हैं। यद्यपि ऐसे स्थानों में भी कुछ मनुष्य तो रहते ही हैं, परन्तु उनका जीवन इतना कठिन है कि वहाँ अधिक जनसंख्या नहीं रह सकती।

जलवायु का खेती-बारी तथा उद्योग-धन्धों पर बहुत बड़ा प्रभाव होता है और प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से मनुष्य तो जलवायु का दास ही है। मनुष्य जलवायु को बदल नहीं सकता। यही कारण है कि रेगिस्तान आज भी रेगिस्तान है और गरम देश आज भी गरम है।

जलवायु, सभ्यता और व्यापार

मनुष्य की सभ्यता भी जलवायु से प्रभावित है। संसार में सर्वप्रथम सभ्यता गरम देशों में फैली, किन्तु आज ठंडे देश अधिक सभ्य समझे जाते हैं। यह सब जलवायु के ही कारण है। उत्तर तथा दक्षिण ध्रुव प्रदेशों, दलदल वाले मैदानों तथा विषुवत् रेखा (Equator) के सघन वन प्रदेशों में जो पिछड़ी हुई जातियाँ रहती हैं, वे जलवायु के कारण ही इतनी पिछड़ी हुई हैं।

विषुवत् रेखा के समीप अत्यधिक वर्षा तथा गरमी होने के कारण वनस्पति बिना प्रयत्न के उत्पन्न होती है। मनुष्य को भोजन उत्पन्न करने के लिये अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ता, वह आलसी बन जाता है। उसकी आवश्यकताएँ कम होती हैं; इस कारण यह प्रदेश आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हैं। जलवायु का प्रभाव केवल खेती-बारी, उद्योग-धंधे, मजदूरों को कार्य-शक्ति तथा सभ्यता पर ही पड़ता हो, यह बात नहीं है। जलवायु का प्रभाव व्यापार तथा गमनागमन पर भी पड़ता है। जिन देशों में बहुत अधिक ठंड पड़ती है, वहाँ की नदियाँ जाड़े में जम जाती हैं और इसका फल यह होता है कि उन देशों के बन्दरगाह व्यापार के योग्य नहीं रहते। साइबेरिया केवल इसी कारण सभ्य संसार से पृथक् रहा कि उसकी नदियाँ जाड़े में जम जाती हैं और जहाज बन्दरगाह में नहीं आ सकते। जहाँ वर्षा बहुत अधिक होती है, नदियों में बाढ़ आ जाती है, वहाँ भी गमनागमन के साधन विकसित नहीं हो पाते।

ठण्डे देश गरमी के दिनों में तो पैदावार तथा व्यापार के लिए अत्यंत सुविधाजनक होते है, किंतु जाड़ा सुस्ती तथा व्यापार की मंदी का समय होता है। जाड़े के दिनों में वहाँ पौधा उग नहीं सकता। यदि उग भी जावे तो अधिक दिनों तक जीवित नहीं रह सकता। इस कारण जाड़े के दिन वहाँ अपेक्षाकृत आलस्य के होते हैं। बरसात के दिनों में मानसून वाले देशों के निवासियों के पास अधिक काम नहीं रहता। भारत का किसान बरसात के दिनों में खाली रहता है। जो प्रदेश बहुत शुष्क हैं या रेगिस्तान हैं, वहाँ भी खेती बारी या उद्योग धन्धे अधिक नहीं होते। जो थोड़ी जनसंख्या होती है, वह पशुपालन करती है।

जलवायु और प्रवास

जो जातियाँ एक-सी जलवायु में रहती हैं, उनका रहन-सहन एक-सा होने के कारण वे शीघ्र ही अपने देश के समान जलवायु वाले देश में जाकर बसने को तैयार हो जाती हैं। भिन्न जलवायु मनुष्य के प्रवास के लिये बाधक है। ब्रिटेन के निवासी प्रतिवर्ष कनाडा में बहुत अधिक संख्या में जाकर बस जाते हैं, किन्तु बहुत कुछ प्रयत्न करने पर भी वे आस्ट्रेलिया तथा दक्षिणी अफ्रीका में अधिक संख्या में जाकर नहीं बसना चाहते। भारत के गरम मैदानों की गरमी से घबरा कर वे लोग हिमालय तथा दूसरे पहाड़ी स्थानों पर चले जाते थे। इस थोड़े समय के प्रवास के कारण ही शिमला, नैनीताल, मंसूरी, दार्जिलिंग, उटकमंड इत्यादि महत्वपूर्ण स्थान बन गये हैं। भारतीय गरम देश में रहने के कारण ही दक्षिण अफ्रीका में जाकर बस सके और उसको उन्नत कर सके।

जलवायु और इमारतें

मनुष्य को अपने मकानों के बनाने में जलवायु का बहुत विचार करना पड़ता है। जब हम भिन्न प्रकार की जलवायु वाले देशों में भिन्न-भिन्न प्रकार की इमारतें देखते हैं, तब यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है। जिन देशों में वर्षा अधिक होती है, वहाँ के मकानों की छतें ढालू होती हैं। ठण्डे देशों में मकान बिना आँगन के बनाये जाते हैं। किन्तु गरम देशों में बिना आँगन का मकान रहने योग्य नहीं होता। यही कारण है कि ठण्डे देशों के मकानों में कमरे एक दूसरे से सटाकर बनाये जाते हैं, जिसमें रहने वाले सर्दी से बच सकें, किन्तु भारत जैसे गरम देश में आँगन बहुत जरूरी है। गरम देशों के मकानों में अधिक हवा के लिये बरामदा बनाया जाता है। गरम देशों में गलियाँ पतली रक्खी जाती हैं, जिससे सूर्य की गरमी अधिक न रहे।

जलवायु और व्यापारिक मार्ग

जलवायु का प्रभाव व्यापारिक मार्गों पर भी कुछ कम नहीं पड़ता। जिन स्थानों पर बहुत बर्फ पड़ती है, वहाँ रेल और जहाज व्यर्थ हो जाते हैं। जाड़े

में उत्तर के समुद्र जम जाते हैं। तब वहाँ जहाजों का पहुँचना कठिन हो जाता है। इसी प्रकार जिन देशों में रेलवे लाइनें भी बर्फ से दब जाती हैं, वहाँ मार्ग की असुविधा हो जाती है। जिन देशों में वर्षा अधिक होती है, वहाँ भी मार्ग की असुविधायें उत्पन्न हो जाती हैं। भारत में किसी न किसी भाग में प्रतिवर्ष वर्षा अधिक होने से रेलवे लाइन मीलों तक टूट जाती है और कुछ दिनों के लिये रास्ता बन्द हो जाता है। रेगिस्तान में हवा रेत की पहाड़ियाँ खड़ी करके रास्ता रोक देती हैं और ट्रेनों को घंटों रुकना पड़ता है। प्राचीन काल में जब जहाज भाप से नहीं चलते थे, तब हवा ही उनका अवलम्बन थी। स्थल के मार्गों पर जलवायु का विशेष प्रभाव होता है। सड़कें तथा अन्य मार्ग जलवायु को ध्यान में रखकर ही बनाये जाते हैं। जिन देशों में बर्फ जमी रहती है, वहाँ पहियेदार गाड़ी नहीं चल सकती।

जलवायु और उद्योग-धन्धे

मजदूरों की कार्य-शक्ति जलवायु पर ही निर्भर होती है। इस कारण अप्रत्यक्ष रूप से जलवायु का सभी धन्धों पर प्रभाव पड़ता है, किन्तु कुछ धन्धे जलवायु पर ही निर्भर होते हैं। उदाहरण के लिए सूती कपड़े का धन्धा वहीं अच्छी तरह से पनप सकता है, जहाँ हवा में नमी हो, जिससे बुनते समय सूत न टूटे। मैंचेस्टर के सूती कपड़े के धन्धे की उन्नति का यही मुख्य कारण है। सिनेमा के फिल्म तैयार करने में मनुष्य को जलवायु पर ही अवलम्बित रहना पड़ता है। जहाँ वर्ष में अधिक दिनों तेज धूप रहती है, वहाँ यह धन्धा उन्नति कर सकता है। जहाँ बादल, कुहरा और वर्षा अधिक होती हो, वहाँ यह धन्धा उन्नति नहीं कर सकता। ठंडे और शुष्क जलवायु में मजदूर और कारीगर बिना थके अधिक समय तक काम कर सकते हैं किन्तु गरम और नम जलवायु में उनकी कार्य-शक्ति कम होती है।

जलवायु का मस्तिष्क पर प्रभाव

मनुष्य के मस्तिष्क पर भिन्न भिन्न जलवायु का क्या प्रभाव पड़ता है, इसका ठीक-ठीक अनुमान करना कठिन है। फिर भी यह तो सभी मानते हैं

कि ठंडी जलवायु में मनुष्य हृष्ट-पुष्ट और चुस्त बना रहता है, किन्तु गरम और नम हवा मनुष्य को सुस्त और निकम्मा बना देती है। गरम और नम जलवायु में मनुष्य थोड़ा परिश्रम करने से ही थक जाता है। इसके विपरीत ठंडी हवा मनुष्य के हृदय तथा मस्तिष्क को शक्ति प्रदान करती है। गर्मियों के दिनों में गम्भीर अध्ययन नहीं हो सकता और नम हवा का मस्तिष्क पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। यदि देखा जावे, तो भिन्न-भिन्न देशों के निवासियों की विचार-शक्ति और स्वभाव उस देश की जलवायु के अनुसार ही बनता है। अँग्रेज खेल-कूद बहुत पसन्द करते हैं, क्योंकि इंग्लैण्ड का मेघाच्छादित आकाश सुस्त रहने वाले मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। दक्षिणी अमेरिका के निवासियों में जो आलस्य है, वह वहाँ की गरम जलवायु का ही फल है। पूर्वी देशों में जो उदासीनता और पश्चिमी देशों में चंचलता का साम्राज्य है, वह भिन्न जलवायु का ही फल है। स्काटलैण्ड के निवासियों में गम्भीरता, असीम धैर्य और कल्पना-शक्ति का जो बाहुल्य दिखाई देता है, वह वहाँ के कुहरे से परिपूर्ण जलवायु का प्रभाव है। इंगलैंड में गहरे रंगों की ओर रुचि न होने का कारण वहाँ का बादलों से घिरा हुआ आसमान है, और भारत जैसे गरम मुल्कों में जो तेज रंगों का इतना अधिक प्रचार है, इसका कारण यहाँ की तेज धूप है।

अमेरिका के एक प्रसिद्ध विद्वान् ने जलवायु तथा मनुष्य की कार्य-शक्ति के सम्बन्ध में अच्छी खोज की है। उनका नाम है श्री ई० हंटिंगटन। इन महाशय ने इस विषय पर बहुत कुछ अध्ययन करने के उपरान्त यह परिणाम निकाला है कि मनुष्य की शारीरिक शक्ति ६०° से ६५° फैं० गरमी में सबसे अधिक चैतन्य रहती है और मस्तिस्क सबसे अच्छा कार्य उस समय करता है, जब बाहरी वायु का तापक्रम ३८° से० हो। यदि कुहरा अधिक पड़ता हो अथवा गरमी सब मौसमों में एक-सी रहती हो या फिर गरमी में जल्दी-जल्दी अधिक परिवर्तन हो जाता हो, तो मनुष्य की शारीरिक शक्ति कम हो जाती है। जब हवा बहुत तेज चलती है, तब मनुष्य के हृदय में उत्तेजना फैलती है।

हंटिंगटन का विचार है कि गर्मियों में कारखानों में कम कार्य होना चाहिए और दूसरे मौसम में काम तेजी से होना चाहिए।

जलवायु और वनस्पति

वनस्पति, जलवायु और भूमि पर निर्भर रहती है। वर्षा, गरमी और वायु पौधे के लिये आवश्यक वस्तुएँ हैं। पौधे अपनी पत्तियों के द्वारा हवा से अपना भोजन ले लेते हैं और उनकी जड़ें पृथ्वी से जल खींचती हैं। पानी और हवा पौधे के लिये जरूरी हैं, किन्तु रोशनी और धूप भी कुछ कम जरूरी नहीं हैं। रोशनी के द्वारा ही हवा और पानी से पौधे के लिये भोजन बन जाता है। भिन्न-भिन्न जलवायु में भिन्न-भिन्न जाति के पौधे पनपते हैं, किन्तु पौधे अपने अनुकूल जलवायु के सिवाय दूसरे प्रकार की जलवायु में भी उत्पन्न हो सकते हैं। हाँ, जलवायु में बहुत अधिक अन्तर न होना चाहिये।

पौधा अधिक गरमी और ठंडक में बिल्कुल नष्ट नहीं हो जाता है। रेगिस्तान और ध्रुवों में भी पौधे उगते हैं। गरम देशों में पौधे खूब घने और बहुतायत से उत्पन्न होते हैं और ठंडे देशों में पौधे बिखरे हुए और कम उत्पन्न होते हैं। कुछ पौधे ऐसे होते हैं जो पकने के समय तेज धूप चाहते हैं। इसलिये अधिकतर गरम देशों में उत्पन्न किये जाते हैं और यदि ठंडे देशों में ये पौधे उत्पन्न किये जाते हैं, तो केवल गरमी में। पौधे के लिये सूखी हवा हानिकारक है, क्योंकि वह पौधे का रस सुखा देती है। यही कारण है कि प्रकृति ने उन देशों में जहाँ हवा शुष्क होती है, पौधों पर एक प्रकार का गोंद या पत्तियों के स्थान पर काँटे उत्पन्न कर दिये हैं, जिससे सूखी हवा पौधे का अधिक रस न सुखा सके।

जलवायु और जन-निवास

किसी स्थान पर मनुष्य निवास कर सकता है अथवा नहीं, यह बहुत कुछ वहाँ की जलवायु पर निर्भर रहता है। गरमी और जल मनुष्य-जीवन के लिए नितान्त आवश्यक हैं और जहाँ यह उचित मात्रा में मिलते हैं, वहाँ मनुष्य का निवास सम्भव है। यदि किसी स्थान पर अत्यधिक गरमी है, किन्तु साथ ही

जल भी यथेष्ट हो, तभी मनुष्य रह सकता है। किन्तु अत्यन्त गरम और सूखे रेगिस्तानों में मनुष्य का निवास कठिन होता है। यही दशा उन स्थानों की है, जहाँ अति शीत होती है और बर्फ जमी रहती है। जनसंख्या वहाँ घनी होती है, जहाँ यथेष्ट गर्मी और यथेष्ट जल हो।

वनस्पति

वनस्पति दो प्रकार की होती हैं - सघन वन तथा घास के मैदान। जिस प्रदेश में घास अथवा वन नहीं होते, उसे रेगिस्तान कहते हैं।

प्रत्येक देश की औद्योगिक उन्नति में जंगलों का विशेष स्थान रहता है।* बहुत से धन्धे (कागज, दियासलाई, लाख, फर्नीचर, खिलौने, वार्निश इत्यादि) जंगलों पर ही निर्भर रहते हैं। इसके अतिरिक्त वनों में हमें बहुत आवश्यक चीजें मिलती हैं। वनों से ये लाभ तो हैं ही, परन्तु सबसे बड़ा लाभ यह है कि वनों के कारण वर्षा अधिक होती है, नदियों में बाढ़ नहीं आती, मैदानों के कुओं में पानी रहता है; वन आसपास के तापक्रम को कम कर देते हैं। बहुत से पशु पक्षी वनों में रहते हैं, जिनकी खाल इत्यादि उपयोगी होती है। जिस भूमि पर वन खड़ा होता है, वह उपजाऊ बन जाती है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि जंगल मनुष्यों के बड़े लाभ की वस्तु है और उसका मनुष्य-जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ता है।

यह तो पहले ही बतलाया जा चुका है कि मनुष्य समाज के जीवन पर जंगलों का बहुत प्रभाव पड़ा है, परन्तु खेती की पैदावार का तो मानव-जीवन पर अत्यधिक प्रभाव है। खेती के द्वारा ही मनुष्य को अपना भोजन मिलता है और खेती से ही औद्योगिक कच्चा माल प्राप्त होता है। कौन सी फसल कहाँ पैदा हो सकती है, यह भूमि और जलवायु पर निर्भर है और खेती की पैदावार पर ही बहुत कुछ मनुष्य अवलम्बित रहते हैं।

मनुष्य के जीवन पर जीव-जंतुओं का प्रभाव

संसार में अगणित जीव-जन्तु पाये जाते हैं। मनुष्य भी उनके साथ ही

*वनों से क्या लाभ है, इसका विस्तार वन-प्रदेश नामक अध्याय में देखिये।

रहता है । अतः उसको इसके द्वारा लाभ और हानि दोनों ही पहुँचा करते हैं। कुछ पशु-पक्षी तो ऐसे हैं, जिनके बिना मनुष्य का काम नहीं चल सकता । उनको हम मित्र कहेंगे । दूसरे वे हैं, जो मनुष्य को हानि पहुँचाते हैं। उन्हें हम शत्रु कहेंगे । आगे दोनों प्रकार के जन्तुओं का विवरण दिया जाता है।

शत्रु जीव-जन्तु

शेर, भेड़िया, चीता तथा अन्य जंगली जानवर तो मनुष्य के शत्रु हैं ही, परंतु बहुत प्रकार की मक्खियाँ तथा कीड़े, जो बीमारियाँ फैलाते हैं, वे भी मनुष्य के कम शत्रु नहीं हैं। भारत में प्रतिवर्ष मलेरिया, प्लेग, हैजा तथा अन्य रोगों के कारण न जाने कितने मनुष्यों की मृत्यु होती हैं। ये सब रोग कुछ कीड़ों के ही प्रसाद हैं। यदि इन कीड़ों को छोड़ भी दिया जावे, तो भी ऐसे बहुत से कीड़े हैं, जो पेड़ों और फसलों को नष्ट करते हैं। गन्ना, कपास, गेहूँ, रबर, चाय, अंगूर और कहवा की पैदावार बहुत से देशों में केवल इन कीड़ों के कारण ही कम हो गई। संसार में सबसे अधिक अंगूर की शराब बनाने वाला फ्रांस फायलौक्सरा (Phylloxera) नामक कीड़े के कारण भयंकर विपत्ति में फँस गया था। लोगों का तो यहाँ तक विचार था कि अब अंगूर की पैदावार हो ही नहीं सकती, परन्तु वैज्ञानिकों ने दूसरी अंगूर की बेल उत्पन्न की, जिस पर इस कीड़े का असर नहीं; होता । यही नहीं सुअर, बन्दर, चूहे, खरगोश तथा और जानवरों से भी खेती को बहुत हानि होती है। टिड्डी तथा फसलों के रोग तो लहलहाती फसल को नष्ट कर डालते हैं।

मित्र जीव-जन्तु

किन्तु संसार में ऐसे भी जीव-जन्तु हैं, जिनके बिना मनुष्य का जीवन अत्यन्त कठिन हो जाय । गाय, बैल, घोड़ा, गदहा, ऊँट, हाथी मनुष्य के कार्यों में सहायता करते हैं । गाय और भैंस हमें घी, दूध और मक्खन देती हैं । बैल, घोड़ा, भैंसा खेतीबारी में, बोझा ढोने और गाड़ियों के खींचने में सहायक होते हैं । भेड़, और बकरी से मनुष्य को खाने और पहनने की वस्तुएँ मिलती हैं। ऊँट तो रेगिस्तान के रहने वालों का सबसे बड़ा सहायक है। इनके अतिरिक्त

रेशम के कीड़ों से हमें सुन्दर रेशम मिलता है। मनुष्य समाज की उन्नति में इन सबका मुख्य भाग रहा है। यद्यपि रेल तथा मोटरों के कारण सवारी के लिये पशुओं का महत्व घट गया है, परन्तु जहाँ रेल और अच्छी सड़कें नहीं बनी हैं, वहाँ आज भी वे बड़े काम के हैं और खेती तो आज भी बिना पशुओं की सहायता के हो नहीं सकती।

मानवीय आर्थिक प्रयत्नों पर सामाजिक प्रभाव

ऊपर हम लिख आये हैं कि मनुष्य के आर्थिक प्रयत्नों अर्थात् खेती, वन सम्बन्धी धन्धों, पशुपालन, खनिज धन्धों, उद्योग-धन्धों तथा व्यापार पर भौगोलिक परिस्थितियों का गहरा प्रभाव पड़ा है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि बहुत कुछ अंशों में भौगोलिक परिस्थिति पर ही ये निर्भर रहते हैं। परन्तु सामाजिक शक्तियाँ भी मनुष्य के आर्थिक प्रयत्नों अर्थात् व्यापार, खेती तथा उद्योग-धन्धों पर गहरा प्रभाव डालती हैं। इसे नहीं भुलाया जा सकता।

सामाजिक शक्तियाँ, जो मनुष्य के आर्थिक प्रयत्नों पर प्रभाव डालती हैं, चार प्रकार की हैं :—

(१) जातीय गुण, (२) धर्म, (३) राज्य और (४) जनसंख्या।

जातीय गुण और धर्म

जातीय गुण मनुष्य के आर्थिक प्रयत्नों पर गहरा प्रभाव डालते हैं। कुछ जातियाँ अधिक क्षमतावान, कुशाग्र बुद्धि तथा परिश्रमी होती हैं; वे व्यापार में दक्ष होती हैं। कुछ जातियाँ आलसी, कम बुद्धिमान और निरुद्यमी होती हैं। विषुवत् रेखा के समीपवर्ती प्रदेशों में रहने वाली जातियाँ इसी प्रकार की हैं। उनके विरुद्ध योरोप, एशिया, उत्तरी अमेरिका तथा उत्तरी अफ्रीका में बसने वाली जातियाँ उद्यमशील होती हैं। धर्म का भी मनुष्य के आर्थिक प्रयत्नों पर गहरा प्रभाव पड़ता है। धर्म मनुष्य को कुछ कार्य करने से रोकता है और कुछ कार्यों के लिये प्रोत्साहित करता है। उदाहरण के लिये, बुद्ध धर्म के द्वारा अहिंसा पर बहुत अधिक बल देने के कारण चीन और जापान

में मांस तथा ऊन प्राप्त करने के लिए पशु-पालन का धन्धा नहीं पनप सका। भूमध्य सागर (मैडिटरेनियन) के पूर्वी किनारे के प्रदेशों में जहाँ अधिकतर मुस्लिम धर्म को मानने वाले रहते हैं, अंगूर खूब पैदा हो सकता है, परन्तु धार्मिक प्रभाव के कारण वहाँ शराब का धन्धा नहीं पनप सका। इन मुस्लिम देशों में शराब के स्थान पर कहवे की खूब माँग है। इस्लाम केवल शराब को ही वर्जित नहीं करता वरन् सूद को भी बर्जित करता है। अतएव मुस्लिम देशों में बैंकिंग कारबार उन्नति नहीं कर सका। मुस्लिम देशों में सुअर पालने का भी धन्धा नहीं होता।

हिन्दू धर्म में जातिवाद ने मनुष्य के पेशों को निर्धारित कर दिया है। मनुष्य अधिकतर अपने जातीय पेशों को ही करता है। एक ब्राह्मण चमार के कार्य को नहीं करेगा, इत्यादि। इस प्रकार मनुष्य अपने मन चाहे पेशों को करने में स्वतंत्र नहीं है।

ईसाई धर्म इस सम्बन्ध में अधिक उदार है। वह इस प्रकार का कोई प्रतिबन्ध मनुष्य पर नहीं लगाता। यही कारण है कि ईसाई धर्म के मानने वाले आर्थिक दृष्टि से अधिक क्रियाशील हैं और उन्नत हैं।

राज्य

किसी देश की औद्योगिक तथा व्यापारिक उन्नति उस देश की शासन-व्यवस्था पर भी निर्भर है। यदि सरकार अच्छी और उन्नतिशील है, तो वह खेती, उद्योग-धन्धों तथा व्यापार की उन्नति करेगी और यदि शासन-व्यवस्था खराब है तथा सरकार बुरी है, तो खेती, उद्योग धन्धों तथा व्यापार की अवनति होगी। यदि शासन प्रगतिशील नहीं है, अथवा देश में शान्ति और व्यवस्था नहीं है, तो उस देश में उद्योग-धन्धे, कृषि और व्यापार की उन्नति नहीं कर सकते।

जनसंख्या

जो प्रदेश घनी जनसंख्या वाले होते हैं, वहाँ व्यापार और धन्धों की उन्नति होती है। यह तो स्वाभाविक है कि जहाँ जनसंख्या बहुत कम

होगी, व्यापार भी कम होगा। यदि किसी देश में प्राकृतिक देन खूब है, भूमि उर्वरा है, जलवायु उपयुक्त है, वनस्पति बहुत है तथा खनिज पदार्थों की बहुतायत है, लेकिन जनसंख्या बहुत कम है, तो मजदूरों की कमी के कारण वहाँ व्यापार, खेती और उद्योग-धन्धों की उन्नति नहीं हो सकती। जब उत्तरी अमेरिका में यूरोप से जाकर लोग बसे, तो वहाँ उद्योग धन्धों और खेती की उन्नति हुई।

मजदूर और जनसंख्या—उद्योग धन्धों की उन्नति के लिए मजदूरों की उतनी ही अधिक आवश्यकता है, जितनी कि कच्चे माल तथा शक्ति की। भिन्न-भिन्न जाति के मजदूर एक से नहीं होते। कुछ जातियाँ अधिक कार्य-क्षमता प्रगट करती हैं उनमें ऊँचे दर्जे के मजदूर होते हैं और कुछ में नीचे दर्जे के मजदूर होते है। किसी भी देश की औद्योगिक तथा कृषि की उन्नति वहाँ मजदूरों पर बहुत कुछ निर्भर रहती है। यही कारण है कि जिन देशों में जनसंख्या कम है और वे प्रकृति की देन से भरे-पूरे हैं वहाँ कुलियों की बहुत माँग रहती है और घनी आबादी वाले देशों से प्रति वर्ष वहाँ मजदूर जाकर बसते हैं। फिर भी प्रकृति के धनी परन्तु जनसंख्या की कमी के प्रदेश आर्थिक दृष्टि से शीघ्र अधिक उन्नति नहीं कर पाते।

पेशे और जनसंख्या का संबंध—पेशे और आबादी का घनिष्ट संबंध है। जंगलों में प्रति वर्गमील आबादी कम होती है। इसका कारण यह है कि शिकारी जातियाँ केवल प्रकृति द्वारा उत्पन्न वस्तुओं का उपयोग करती हैं। वे कोई वस्तु अपने परिश्रम से उत्पन्न नहीं करतीं। पशुओं को मारकर, मछलियाँ पकड़ कर अथवा फल-फूल इकट्ठा करके वे अपना निर्वाह करती हैं। अतएव शिकारी को अपने कुटुम्ब का पालन-पोषण करने के लिए अधिक क्षेत्रफल की आवश्यकता होती है।

पशुपालन करने वाली जातियाँ पशुओं को पालकर उनसे अपना भोजन प्राप्त करती हैं। इस कारण थोड़ी भूमि पर भी अधिक जनसंख्या निर्वाह कर सकती है। शिकारियों की अपेक्षा चरवाहों की आबादी अधिक घनी होती है। यदि चरागाह अच्छे होते हैं, तब तो पशु चराने वाली जातियाँ वहीं स्थायी

रूप से बस जाती हैं, नहीं तो चारे की खोज में वे जातियाँ एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमती फिरती हैं।

जिन देशों की भूमि, जलवायु, तथा भौगोलिक परिस्थिति खेती के अनुकूल होती है, वहाँ की आबादी घनी और स्थायी होती है। खेती के द्वारा थोड़ी भूमि पर भी बहुत से मनुष्य निर्वाह कर सकते हैं। खेती करने वाली जातियों को शिकारी तथा पशु चराने वाली जातियों की भाँति भोजन के लिए प्रतिदिन की दौड़-धूप नहीं करनी पड़ती। इस कारण ये जातियाँ अवकाश का समय शिक्षा, साहित्य-कला, तथा अन्य विद्याओं को जानने में व्यय करती हैं। सच तो यह है कि सभ्यता का विकास तभी हुआ, जब मनुष्य खेती करने लगा।

औद्योगिक देशों की आबादी बहुत घनी होती है, क्योंकि उद्योग-धंधों के लिए अधिक भूमि की आवश्यकता नहीं होती। एक कारखाने में जितने मूल्य का माल एक साल में तैयार होता है, उतने मूल्य की पैदावार हजारों एकड़ भूमि पर भी उत्पन्न नहीं की जा सकती। यही कारण है कि औद्योगिक देश अत्यन्त घने आबाद हैं। कृषि-प्रधान देशों की आबादी उद्योग-प्रधान देशों की तुलना में बिखरी होती है।

अभ्यास के प्रश्न

१—आर्थिक भूगोल से आप क्या समझते हैं? इसके अंतर्गत किन-किन बातों का अध्ययन करना चाहिए? (१९५३)

२—यह कहना कि "मनुष्य अपने निवास-स्थान की उपज है", कहाँ तक ठीक है?

३—मनुष्य के जीवन पर उसकी परिस्थित का क्या प्रभाव पड़ता है? (१९५३)

४—खेती करने वाली जातियाँ स्वभावतः शान्त, शिकारी जातियाँ कलहप्रिय और औद्योगिक जातियाँ परिवर्तन पसन्द करने वाली क्यों होती हैं?

५—धरातल की बनावट का मनुष्य पर क्या प्रभाव पड़ता है?

६—जलवायु का शरीर और मस्तिष्क पर क्या प्रभाव पड़ता है?

७—जलवायु का खेती-बारी और उद्योग-धन्धों पर कैसा प्रभाव पड़ता है?

८—जलवायु का व्यापारिक मार्गों पर क्या प्रभाव पड़ता है?

९—मनुष्य जीवन पर जीव-जन्तुओं का कितना प्रभाव पड़ता है ?

१०—वनस्पति का मनुष्य-जीवन पर प्रभाव बतलाइये।

११—भौगोलिक परिस्थिति किसे कहते हैं और उसका मनुष्य के रहन-सहन, पेशे तथा कार्य-क्षमता पर कैसा प्रभाव पड़ता है ?

१२—'मनुष्य की आर्थिक क्रियाओं पर जलवायु का सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है। इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं ? भारतीय उदाहरणों से अपने कथन की पुष्टि कीजिए। (१९५२)

१३—मानसूनी जलवायु किसे कहते हैं, और वह कहाँ-कहाँ पाई जाती है ? (१९५३)

१४—भौगोलिक परिस्थितियों का मनुष्य की आर्थिक क्रियाओं पर क्या प्रभाव पड़ता है ? उसकी विवेचना कीजिए। अपने देश का उदाहरण देकर उत्तर को स्पष्ट कीजिए (१९५१)

दूसरा अध्याय

भारत की प्रकृति

(Physical Condition of India)

भारत एक विशाल देश है, जिसका क्षेत्रफल १२,६६,६४० वर्गमील है। १९५१ की जनगणना के अनुसार इसकी जनसंख्या ३५,६८,९१,६२४ है। इसकी उत्तर से दक्षिण तक लम्बाई २००० मील तथा चौड़ाई भी लगभग इतनी ही है।

स्थिति—अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की दृष्टि से भारत की स्थिति बहुत अच्छी है। पूर्वी गोलार्द्ध में इसकी स्थिति मध्य में है और यह हिन्द महासागर के शीर्ष पर स्थित है। इस कारण भिन्न-भिन्न देशों से व्यापार करने में इसे बहुत बड़ी प्राकृतिक सुविधा है। अफ्रीका, योरप, आस्ट्रेलिया तथा पूर्वी एशिया और अमेरिका जाने को जो भी समुद्री मार्ग हैं, वे भारत को अपनी स्थिति के कारण सुलभ हैं, उत्तर में पहाड़ों तथा दक्षिण में समुद्र के कारण भारत की प्राकृतिक सीमायें निर्धारित हो गई हैं।

यद्यपि उत्तर के पहाड़ों ने भारत को एशिया के अन्य देशों से पृथक् कर दिया है और इस कारण उन देशों से स्थल द्वारा व्यापार करने में रुकावट होती है, किन्तु उत्तर-पश्चिम में बहुत से दर्रे हैं, जिनसे विभाजन के पूर्व भारत अपने पड़ोसी एशियाई देशों से व्यापार करता था।

भारत के विभाजन के फलस्वरूप भारत की यह प्राकृतिक सीमा नष्ट हो गई। अब काश्मीर से पूर्वी पञ्जाब में होकर राजस्थान तथा सौराष्ट्र की सीमा भारत और पाकिस्तान की सीमा बन गई है। भौगोलिक दृष्टि से पाकिस्तान और भारत एक देश हैं। पूर्व की ओर हिमालय की श्रेणियों ने भारत को ब्रह्मा से अलग कर रखा है।

उष्ण तथा शीतोष्ण कटिबन्धों के मध्य में बसा होने के कारण भारत में सभी प्रकार की जलवायु, बनस्पतियाँ तथा पैदावारें पाई जाती हैं। कहीं घने जंगल हैं, तो कहीं जल-विहीन मरुस्थल हैं। उत्तर से दक्षिण तथा पूर्व से पश्चिम विस्तार अधिक होने के कारण देश की प्राकृतिक अवस्था में बड़ी भिन्नता पाई जाती है। कहीं गगनचुम्बी पर्वत मिलते हैं, तो कहीं नदियों की उपजाऊ घाटियाँ हैं; कहीं विस्तृत पठार हैं, तो कहीं समतल मैदान हैं। नदियों की अधिकता के कारण देश धन-धान्य से परिपूर्ण है।

भारत का समुद्र-तट :— भारत का समुद्र-तट न तो कटा हुआ है और न तट के पास छोटे-छोटे द्वीप ही हैं। समीप का तटवर्ती समुद्र छिछला, चौरस और रेतीला है। इस कारण उस पर अच्छे बन्दरगाह अधिक नहीं हैं। कच्छ की खाड़ी, खम्भात की खाड़ी, पाक जलडमरूमध्य और गंगा के डेल्टा पर ही समुद्र-तट कटा हुआ है। ये सब छिछले हैं, इस कारण बराबर इनकी मिट्टी निकालते रहने की आवश्यकता होती है तभी ये जहाजों के लिये उपयोगी हो सकते हैं।

जहाँ तक क्षेत्रफल का प्रश्न है, भारत संसार के सबसे बड़े देशों में से एक है। और जहाँ तक जनसंख्या का प्रश्न है, भारत चीन को छोड़कर सबसे अधिक जनसंख्या वाला देश है। यद्यपि सदियों तक पराधीन रहने के कारण भारत आर्थिक दृष्टि से पिछड़ गया किन्तु यह प्राकृतिक देन की दृष्टि से धनी देश है।

पृथ्वी की बनावट के अनुसार हम देश को चार भागों में बाँट

(१) हिमालय का पहाड़ी प्रदेश, जो उत्तर में स्थित है।

(२) गंगा का मैदान, जो गंगा के डेल्टा से पूर्वी पञ्जाब तक फैला हुआ है।

(३) दक्षिण का पठार, जो मैदानों के दक्षिण में है।

(४) तटीय मैदान, जो दक्षिणी पठार के पूर्व और पश्चिम में हैं।

पर्वतीय प्रदेश

दक्षिण पठार के उत्तर-पूर्व में जो प्रदेश है और जो आज हिमालय का पर्वतीय प्रदेश तथा गंगा के मैदान के नाम से प्रसिद्ध है, किसी समय समुद्र के नीचे छिपा हुआ था। जिस समय पठार ज्वालामुखी के विस्फोट के कारण लावा से ढँक गया, उसी समय पृथ्वी के धरातल में ऐसा भयंकर परिवर्तन हुआ कि जिससे उत्तर के छिछले समुद्र का धरातल ऊँचा उठकर संसार के सबसे ऊँचे पर्वत में परिणत हो गया। इस नवीन पर्वत-श्रेणी से नदियों ने प्रतिवर्ष अनन्त राशि में मिट्टी तथा रेत ला-ला कर इस छिछले समुद्र को पाटना आरम्भ कर दिया और धीरे-धीरे इस विस्तृत क्षेत्र को उन्होंने संसार के सबसे अधिक उपजाऊ मैदानों में परिणत कर दिया।

उत्तर का विशाल हिमालय पर्वत संसार भर के पहाड़ों से अधिक ऊँचा है। उसकी पर्वत-श्रेणियाँ पामीर से प्रारम्भ होती हैं। इस उत्तरी पर्वतीय प्रदेश में हिमालय की केवल एक ही श्रेणी नहीं है। वास्तव में हिमालय पर्वत प्रायः तीन समानान्तर श्रेणियों से बना है। मैदान के किनारे वाली श्रेणी, मैदान की तरह ही मिट्टी, बालू, कंकड़ की बनी है। यह श्रेणी अधिक ऊँची नहीं है। इसे शिवालिक के नाम से पुकारते हैं। इसके उत्तर में दूसरी श्रेणी है, जो पचास-साठ मील चौड़ी है और ६००० से १२००० फीट तक ऊँची है। शिवालिक तथा इस श्रेणी के बीच में खुले मैदान हैं। दूसरी श्रेणी के उत्तर में हिमालय की तीसरी श्रेणी है, जो सबसे अधिक ऊँची है। इसे महान् हिमालय कहते हैं। इस श्रेणी की औसत ऊँचाई बीस हजार फीट है। हिमालय की प्रसिद्ध चोटियाँ गौरीशंकर, किंचिंजंगा और धौलागिरि इत्यादि इसी में हैं। इस श्रेणी के दर्रे भी १६,००० से १८,००० फीट तक ऊँचे हैं। इस कारण इनको पार करके तिब्बत के पठार में जाना बहुत दुष्कर है। मार्ग अत्यन्त दुर्गम हैं, केवल पगडंडियाँ मात्र होती हैं। मनुष्य अथवा पशु का तनिक भी पैर फिसलने पर हजारों फीट गहरे गड्ढों में गिरने की आशंका प्रतिक्षण बनी रहती है। नदियाँ भयंकर तथा अत्यन्त गहरी कन्दराओं में होकर बहती हैं, जिन्हें रस्सों के पुल से पार करना पड़ता है। यही कारण है कि हिमालय उत्तर भारत तथा तिब्बत में एक अभेद्य दीवार की भाँति खड़ा है और किसी प्रकार का

आवागमन तथा व्यापार कठिन है। हिमालय की अभेद्य दीवार ने भारत को अपने पड़ोसी देशों से सर्वथा पृथक् कर दिया है।
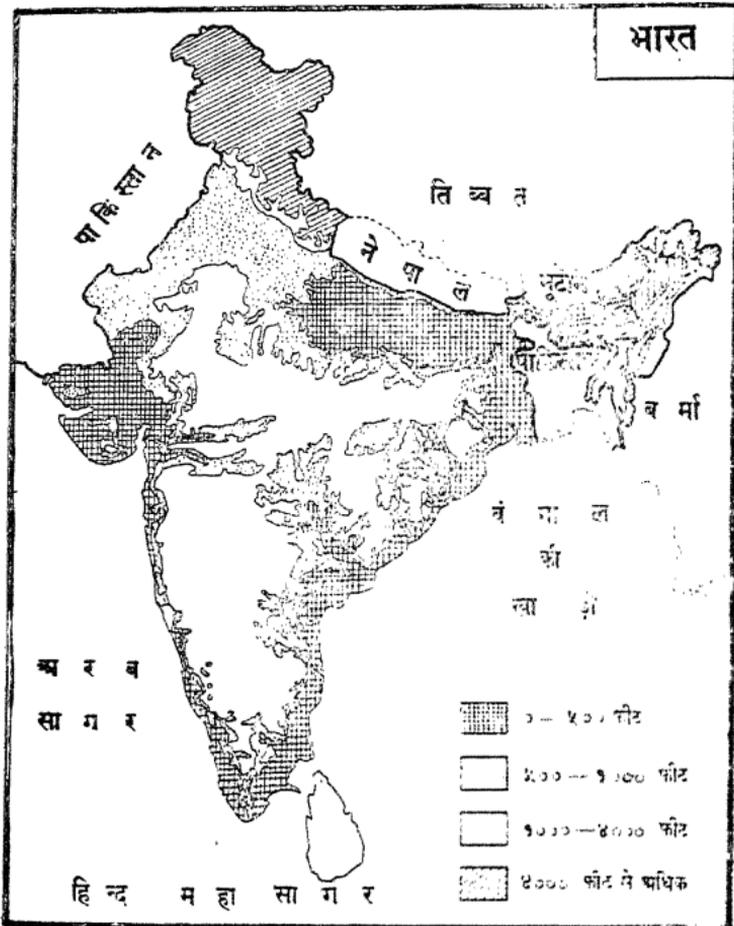
भारत के प्राकृतिक भाग

हिमालय से भारत को लाभ

किन्तु इससे यह न समझ लेना चाहिये कि हिमालय से इस देश को कोई लाभ नहीं है। सच तो यह है कि हिमालय का हमारे देश के आर्थिक जीवन

पर गहरा प्रभाव है। हिमालय का भारत की जलवायु पर बहुत असर है। भारत के उत्तरी भाग में जो वर्षा होती है, उसका मुख्य कारण हिमालय पर्वत ही है। मानसून इन पहाड़ों से टकरा कर सारा पानी उत्तर के मैदानों में गिरा देता है। यदि उत्तर में हिमालय की पर्वत-श्रेणियाँ न होतीं, तो मानसून उत्तर भारत को पार करके चली जाती और वह सूखा रह जाता। केवल हिमालय से यही लाभ नहीं है, वरन् उसका ढाल इस तरह का है कि जो नदियाँ उत्तरी तिब्बत से निकलती हैं वे भी दक्षिण की ओर मुड़कर भारत को जल देती हैं। इस प्रकार जो वर्षा भारत की ओर होती है और भारत की सीमा के बाहर होती है, उन सब का लाभ भारत को ही मिलता है। हिमालय से निकली हुई नदियों पर ही हमारे देश का मुख्य धन्धा—खेती निर्भर है। हिमालय पर बर्फ जमी रहने के कारण इससे निकली हुई नदियों में गर्मी में भी पानी रहता है, जिससे खेतों की सिंचाई होती है।

हिमालय उत्तर की अत्यन्त ठंडी हवाओं को रोक लेता है, नहीं तो उन ठंडी हवाओं के कारण खेतों को बहुत हानि पहुँचती।

इसके अतिरिक्त इन पहाड़ों पर जो बहुमूल्य लकड़ी, घास, जड़ी-बूटियाँ, छाल, फल, गोंद, लाख इत्यादि पदार्थ अनन्त राशि में पाये जाते हैं, उनका बहुत धन्धों में कच्चे पदार्थ के रूप में उपयोग होता है। (हिमालय की वन-सम्पत्ति के विषय में वन-प्रदेश के अध्याय में विस्तारपूर्वक लिखा गया है।) जो कुछ भी हिमालय की वन-सम्पत्ति के विषय में ज्ञात है, उससे यह तो कहा ही जा सकता है कि प्रकृति ने इन वनों में असीम सम्पत्ति भर दी है। हिमालय ने उत्तर में भारत को रक्षा के लिए सुदृढ़ दीवार खड़ी कर दी है। पश्चिमी पर्वत की शाखायें नीची और उजाड़ हैं। नदियों ने इन पहाड़ों को काटकर सुगम दर्रे बना दिये हैं। उनमें खैबर और बोलन के दर्रे प्रसिद्ध हैं। शताब्दियों से भारत का अपने पड़ोसी अफगानिस्तान से कारवाँ द्वारा व्यापार होता आ रहा था। वह इन्हीं दर्रों का प्रभाव था। भारत पर बाहर से जितने भी आक्रमण हुए वे इन्हीं दर्रों के द्वारा हुए। अब ये पाकिस्तान में हैं।

पूर्व में ब्रह्मपुत्र नदी के मोड़ के आगे हिमालय की शाखायें दक्षिण की

ओर चली गई हैं। पटकोई, नागा, लुशाई पहाड़ियाँ आसाम को बर्मा से पृथक करती हैं। मनीपुर राज्य में होती हुई यह पहाड़ियाँ बरमा के अराकान योमा से मिल जाती हैं और इरावदी के मुहाने के पश्चिम की ओर नीग्रेस अन्तरीप में समाप्त हो जाती हैं। इनके अतिरिक्त जयन्तिया, खासी, गारो की पहाड़ियाँ आसाम की घाटी को सिलहट और कछार से अलग करती हैं। हिमालय की पूर्वी श्रेणियाँ सघन बनों से आच्छादित हैं।

हम ऊपर लिख चुके हैं कि हिमालय की तीन श्रेणियाँ हैं। तीसरी श्रेणी जिसे महान हिमालय के नाम से पुकारा जाता है, तथा दूसरी श्रेणी के बीच में दो चौड़ी घाटियाँ हैं—काठमांडू (नैपाल) की घाटी और काश्मीर की घाटी। ये बहुत चौड़े मैदान हैं, जो पाँच हजार फीट की ऊँचाई पर स्थित हैं और चारों ओर ऊँचे पहाड़ों से घिरे हुए हैं।

इसी प्रकार शिवालिक तथा हिमालय की दूसरी श्रेणी के बीच में कुछ घाटियाँ हैं, जिन्हें दून कहते हैं। तेज नदियाँ हिमालय से जो मिट्टी और पत्थर बहाकर लाती हैं, उनके जमा होने से यह घाटियाँ बनी हैं।

हिमालय से यह सब लाभ होते हुए भी इतना तो कहना ही होगा कि यह उत्तर में एक महान् अभेद्य दीवार की भाँति खड़ा है और इसने भारत का चीन इत्यादि एशियाई राष्ट्रों से व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित होने में रुकावट डाली है।

गङ्गा के मैदान

हिमालय के दक्षिण में गंगा का उपजाऊ मैदान है। यह संसार के अत्यन्त उपजाऊ प्रदेशों में से है। इसकी भूमि अत्यन्त उपजाऊ है। इसलिए यह बहुत घना आबाद है। इसमें उत्तरी राजस्थान, पूर्वी पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल और आधा आसाम सम्मिलित हैं। यह मैदान पश्चिम में अधिक चौड़ा और पूर्व में कम चौड़ा है। इसका क्षेत्रफल लगभग ५ लाख वर्ग-मील है। इस विशाल मैदान में पत्थर का कहीं नाम तक नहीं है। इस मैदान को खोदने पर १००० फीट गहराई तक कहीं चट्टानों का चिह्न भी नहीं दिखलाई

पड़ता है। राजस्थान का रेगिस्तान ४०० मील लम्बा और १०० मील चौड़ा है। अरावली पहाड़ ने इसे दो भागों में बाँट दिया है। दक्षिण-पूर्वी भाग गंगा का बेसिन है। उत्तर में भाभर और तराई को छोड़कर शेष मैदान में गंगा और सिन्ध की सहायक नदियों का एक जाल बिछा हुआ है और उनके द्वारा लाई हुई मिट्टी से ही ये मैदान बने हैं।

उत्तर में जहाँ हिमालय की श्रेणियाँ आरम्भ होती हैं, वहाँ पर नदियों ने कंकड़ और पत्थर के ढेर इकट्ठा कर दिये हैं। ये पथरीले ढाल हिमालय पहाड़ के एक सिरे से दूसरे सिरे तक पाये जाते हैं। इन्हें भाभर कहते हैं। "भाभर" में चूना अधिक होने के कारण छोटी-छोटी नदियों और नालों का पानी इस प्रदेश में सूख जाता है, केवल बड़ी नदियों का पानी ऊपर की ओर बहता है। इसलिए इस प्रदेश में खेती नहीं हो सकती है। भाभर ५ मील से लेकर २० मील तक चौड़ा है। खेती न हो सकने के कारण इस प्रदेश में प्रायः आबादी नहीं है।

भाभर के आगे जमीन मैदान में मिल जाती है। यहाँ पर वह पानी, जो भाभर के अन्दर चला जाता है, पृथ्वी पर प्रकट होता है। इससे यहाँ दलदल और नमी बहुत है। इस नम प्रदेश में लम्बी घास और सघन वन हैं, परन्तु नमी अधिक होने के कारण यहाँ मलेरिया का अधिक प्रकोप रहता है और आबादी कम है। इसको "तराई" कहते हैं। पश्चिम में वर्षा कम होती है, इस कारण पश्चिम के मैदानों और "भाभर" के बीच में "तराई" नहीं है। पूर्व तथा मध्य में तराई का प्रदेश है, जो भाभर से अधिक चौड़ा है।

मैदान का महत्व

(१) उत्तर के मैदान बहुत विस्तृत हैं। ये भारत के एक तिहाई क्षेत्रफल को घेरे हुए हैं। देश की लगभग आधी जनसंख्या इन्हीं मैदानों में रहती है। आर्थिक दृष्टि से यह भारत का सबसे महत्वपूर्ण भाग है। उत्तर के मैदानों में खनिज पदार्थों का सर्वथा अभाव है। परन्तु भूमि उर्वरा और समतल होने के कारण तथा रेलों और नदियों का जाल बिछा होने के कारण यहाँ खेती,

उद्योग-धंधे उन्नत हैं और जनसंख्या घनी है। सिंधु, गंगा और ब्रह्मपुत्र नदी-प्रणालियों द्वारा लाई गई मिट्टी से बना होने तथा उन्हीं के द्वारा सींचा जाने के कारण यह मैदान 'पर्वतों की देन' कहलाता है।

(२) भारत के शेष भाग के समान ही इस विस्तृत मैदान की जलवायु भी गरम है। हिमालय से निकलने वाली असंख्य छोटी-बड़ी नदियाँ इसे सींचती है। इस कारण यह भारत का सबसे अधिक उपजाऊ भाग है।

(३) यह मैदान बिलकुल समतल है। इस कारण नदियाँ इसमें धीरे-धीरे बहती हैं। अतः नदियों का जल मिट्टी में समा जाता है और यहाँ कुयें बहुत आसानी से खोदे जा सकते हैं, जिनमें पानी कभी नहीं सूखता। इसके अतिरिक्त बड़ी नदियों में बहुत दूर तक नावें भी चलाई जाती हैं। समतल होने के कारण यहाँ रेल और सड़कों के बनाने में भी बहुत आसानी है।

(४) हिमालय से निकलने वाली अनेक नदियाँ अपने साथ महीन रेत और मिट्टी बहाकर लाती हैं। वर्षा के दिनों में जब इन नदियों में बाढ़ आती है, तो यह मिट्टी और रेत मैदान में बिछ जाती है। इस प्रकार प्रति वर्ष मैदानों में इस उपजाऊ मिट्टी की नवीन तह पड़ जाती है। लाखों वर्षों से ये नदियाँ प्रतिवर्ष नवीन उपजाऊ मिट्टी लाकर मैदानों में बिछाती रही हैं। यही कारण है कि उत्तर के मैदान अत्यंत उपजाऊ हैं और वहाँ बिना खाद के अच्छी फसलें उत्पन्न होती हैं। खेती की उन्नति तथा यातायात के विकास के कारण यहाँ व्यापार तथा धन्धों का विकास हुआ और घनी आबादी बस गई।

यही कारण है कि उत्तर के समतल मैदान भारतीय सभ्यता की जन्मभूमि है और यहाँ बड़े-बड़े नगर बसे हुए हैं।

संक्षेप में समस्त उत्तरी मैदान एक अत्यंत विशाल खेत के समान है, जिसे नदियों ने अत्यत उपजाऊ बना दिया है और जो व्यापार, उद्योग-धन्धों का केन्द्र होने के कारण घनी आबादी से परिपूर्ण है।

पठार

गंगा के मैदान के दक्षिण में पठार है। यह पठार का प्रदेश भारत का सबसे प्राचीन भाग है। यह कई छोटे और बड़े पठारों में विभाजित है।

दक्षिण का पठार वास्तव में खुली हुई घाटियों का प्रदेश है। यहाँ ढाल अधिक नहीं है और नदियाँ धीरे-धीरे बहती हैं। कहीं-कहीं पहाड़ियों का ढाल बहुत अधिक है, परन्तु अधिकतर प्रायद्वीप में वास्तविक पर्वत-श्रेणियाँ नहीं मिलतीं।

गंगा और सिन्धु के दक्षिण में मालवा और विंध्यप्रदेश की जमीन धीरे-धीरे ऊँची होती गई है। मालवा पठार में विन्ध्याचल पर्वत ऊँचा और लम्बा है। यह बम्बई प्रदेश से आरम्भ होकर मध्य प्रदेश, विंध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश में होता हुआ बिहार और उड़ीसा प्रदेश में सोन घाटी तक फैला हुआ है। यह पहाड़ गंगा के प्रदेश को नर्मदा, ताप्ती और महानदी से मिलने वाले पानी से अलग करता है।

मालवा पठार के पश्चिम में अरावली की पहाड़ियाँ हैं। उत्तर-पूर्व की ओर पहाड़ियाँ पतली होती गई हैं और देहली के समीप ये पहाड़ियाँ समाप्त हो गई हैं। अरावली की पहाड़ियों को बनास, माही और लूनी नदियाँ पार करती हैं। ये नदियाँ अरब सागर में जाकर गिरती हैं। चम्बल नदी पूर्व की ओर बहकर यमुना में मिल जाती है। माउंट आबू इस पर्वत-श्रेणी का सबसे ऊँचा स्थान है।

नर्मदा के दक्षिण को दक्षिण का ऊँचा पठार कहते हैं। यह त्रिभुजाकर है और सब ओर से पहाड़ों से घिरा है उत्तर में सतपुड़ा की श्रेणी है। नर्मदा की घाटी सतपुड़ा और विन्ध्याचल को अलग करती है। सतपुड़ा की पर्वत-श्रेणी में महादेव की पहाड़ियाँ सबसे ऊँची हैं, जिस पर पंचमढ़ी है। सतपुड़ा की पहाड़ियाँ पूर्व में छोटा नागपुर तक फैली हुई हैं। सतपुड़ा में सब नदियाँ गहरी घाटियों में होकर बहती हैं। सतपुड़ा के दक्षिण में ताप्ती की घाटी है। नर्मदा और ताप्ती की चौड़ी घाटियों के मैदानों में लावा से उत्पन्न हुई मिट्टी पाई जाती है, जो बहुत उपजाऊ है।

पठार के पश्चिमी किनारे पर पश्चिमी घाट तथा पूर्वी किनारे पर पूर्वी घाट स्थित हैं। पश्चिमी घाट एक अभेद्य दीवार की भाँति पठार के पश्चिमी

किनारे पर खड़ा है। इसमें केवल कुछ दर्रों से होकर आने-जाने का मार्ग है। इनमें 'भोर घाट' और 'थाल घाट' मुख्य हैं। पश्चिमी घाट तथा समुद्र में अधिक अन्तर नहीं है। इसलिये पश्चिमी तट के मैदान बहुत पतली पट्टी की भाँति हैं। घाट के पश्चिमी ढाल से निकलकर अरब सागर में गिरने वाली नदियों की संख्या बहुत अधिक है, किन्तु वे बहुत छोटी हैं। जो नदियाँ पश्चिमी घाट के पूर्वी ढाल से निकली हैं, वे लम्बी हैं और उनकी घाटियाँ चौड़ी हैं तथा उनके मुहाने बड़े हैं।

पूर्वी घाट पश्चिमी घाट की भाँति ऊँचा और एक सा नहीं है। बहुत से स्थानों पर नदियों ने इस पर्वत-श्रेणी को काटकर अपनी घाटियाँ बना ली हैं। इन पहाड़ों और समुद्र के बीच में एक नीचा मैदान है, जो पश्चिमी समुद्र-तट के मैदान के समान है। केवल अन्तर इतना ही है कि पूर्वी तटीय मैदान अधिक चौड़े और विस्तृत हैं। पूर्वी घाट नीचे और बहुत टूटे-फूटे हैं, इस कारण यहाँ मार्ग आसानी से बनाये जा सकते हैं। पूर्वी घाट दक्षिण में नीलगिरि पहाड़ियों द्वारा पश्चिमी घाट से जुड़े हुए हैं।

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि नर्मदा और ताप्ती की घाटियों में बहुत बड़े और उपजाऊ मैदान हैं। नर्मदा के मैदान जबलपुर से हरदा तक २०० मील की लम्बाई में फैले हुए हैं। इस नदी की घाटी १२ मील से लेकर ३५ मील तक चौड़ी है। ताप्ती के मैदान की लम्बाई १५० मील और चौड़ाई ३० मील है। ताप्ती की सहायक अमरावती का मैदान भी १०० मील लम्बा और ४० मील चौड़ा है, परन्तु जो नदियाँ पूर्व को बहती हैं उनकी घाटियों में मैदान नहीं हैं। इन नदियों के अतिरिक्त प्रायद्वीप में ऐसी भी नदियाँ हैं, जो गंगा और यमुना में जाकर मिलती हैं।

भारत के दक्षिणी पर्वतों में नीलगिरि का पहाड़ मुख्य है। इसी पर उटकमंड स्थित है। पालघाट नदी के दक्षिण में नीलगिरि पर्वत के समान ही अनामलाई का पठार भी है। इनके सिवा और भी पठार हैं। जो छोटे हैं और जिनके किनारे के पास की भूमि बहुत नीची है। इन पहाड़ों को बने बहुत समय नहीं हुआ। इस कारण नदियाँ अब भी अपनी घाटियाँ बना रही हैं।

तटीय मैदान

दक्षिण पठार चारों ओर मैदानों से घिरा है। उत्तर में गंगा और सिंधु का मैदान, पूर्व में गंगा का मैदान तथा पूर्व का तटीय मैदान, दक्षिण में पूर्व का तटीय मैदान तथा पश्चिम का तटीय मैदान है।

पूर्वी घाट और बंगाल की खाड़ी के बीच में कारोमंडल का चौड़ा विस्तृत उपजाऊ समतल तटीय मैदान है। पश्चिमी घाट और समुद्र का तटीय मैदान तंग है और मालाबार के नाम से प्रसिद्ध है। यह मैदान भी बहुत उपजाऊ है।

भिन्न-भिन्न भागों में पाई जाने वाली मिट्टी

भारत एक बहुत बड़ा देश है, इस कारण यहाँ बहुत तरह की मिट्टी पाई जाती है। हम यहाँ उन मिट्टियों के विषय में लिखते हैं, जो देश में मुख्यतः पाई जाती हैं।

लाल मिट्टी (Red Soil)

यह मिट्टी लाल होती है क्योंकि इसमें लोहा मिला होता है। मद्रास, मैसूर दक्षिण-पूर्व बम्बई, हैदराबाद और मध्य प्रदेश के पूर्व में तथा छोटा नागपुर उड़ीसा और बंगाल के दक्षिण में पाई जाती है। यह मिट्टी बहुत प्रकार की चट्टानों से बनी है। इस कारण यह गहराई और उर्वरा शक्ति में बहुत तरह की होती है। ऊँचे मैदानों में पाई जाने वाली लाल मिट्टी उर्वरा नहीं होती, किन्तु जो नीचे मैदानों में पाई जाती है, वह बहुत अच्छी होती है। इस मिट्टी में नाइट्रोजन (Nitrogen), फास्फोरिक एसिड (Phos phoric Acid) और वनस्पति का अंश कम होता है, परन्तु पोटाश (Potash) और चूना यथेष्ट मिलता है।

काली मिट्टी (Black Soil)

काली मिट्टी सारे दक्षिणी ट्रैप तथा मद्रास व आंध्र के कुछ जिलों में पाई जाती है। दक्षिणी ट्रैप में मिट्टी २,००,००० वर्गमील में फैली हुई है। बम्बई

प्रदेश के अधिकांश भाग, सारा बरार तथा मध्य प्रदेश, आंध्र और हैदराबाद के पश्चिमी भाग में यह मिट्टी फैली हुई है। यह मिट्टी भी कई तरह की होती है। पहाड़ियों के ढालों और ऊँचे मैदानों में पाई जाने वाली काली मिट्टी अधिक उपजाऊ नहीं होती, परन्तु टूटी हुई पहाड़ियों के बीच की तथा मैदानों की मिट्टी बहुत उर्वरा और गहरी होती है।

बरसात के दिनों में यह मिट्टी चिकनी और लिबलिबी हो जाती है और गरमी के दिनों में बहुत गहरी दरारें पड़ जाती हैं। यह मिट्टी अधिकतर बहुत उपजाऊ होती है। मालवा के कुछ मैदानों में, जहाँ यह मिट्टी पाई जाती है, लगभग २००० वर्षों से बिना सिंचाई, खाद और भूमि को विश्राम दिये खेत जोते और बोये जाते हैं। मिट्टी में धातुओं की अधिक मिलावट होने से रंग काला हो गया है। इस मिट्टी पर कपास बहुत पैदा होती है। इसका मुख्य कारण यह है कि वर्षा के उपरांत यह मिट्टी गोंद के समान लिबलिबी हो जाती है और सूखने पर इतनी कड़ी हो जाती है कि सूर्य की किरणें जमीन के अन्दर का पानी भाप बनाकर उड़ा नहीं पातीं इसी कारण काली मिट्टी के प्रदेश में बिना अधिक बरसात और सिंचाई के ही कपास उत्पन्न हो सकती है।

इस मिट्टी में फासफोरिक एसिड (Phosphoric Acid) व नत्र-जन (Nitrogen) कम होती है परन्तु पोटाश (Potash) और चूना (Lime) यथेष्ट मिलता है।

लैटराइट (Laterite) मिट्टी

यह मिट्टी विशेषकर मध्य भारत तथा विन्ध्य प्रदेश, राजस्थान के कोटा, भूपाल में, पूर्वी और पश्चिमी घाटों के समीप, और कहीं-कहीं आसाम में भी पाई जाती है। यह मिट्टी भी कई प्रकार की होती है। पहाड़ियों पर पाई जाने वाली मिट्टी बहुत कम उपजाऊ और घाटियों में पाई जाने वाली उपजाऊ होती है। इस मिटटी में फासफोरिक एसिड (Phosphoric Acid)

पोटाश (Potash) और चूना कम होता है, किन्तु वनस्पति का अंश यथेष्ट होता है।
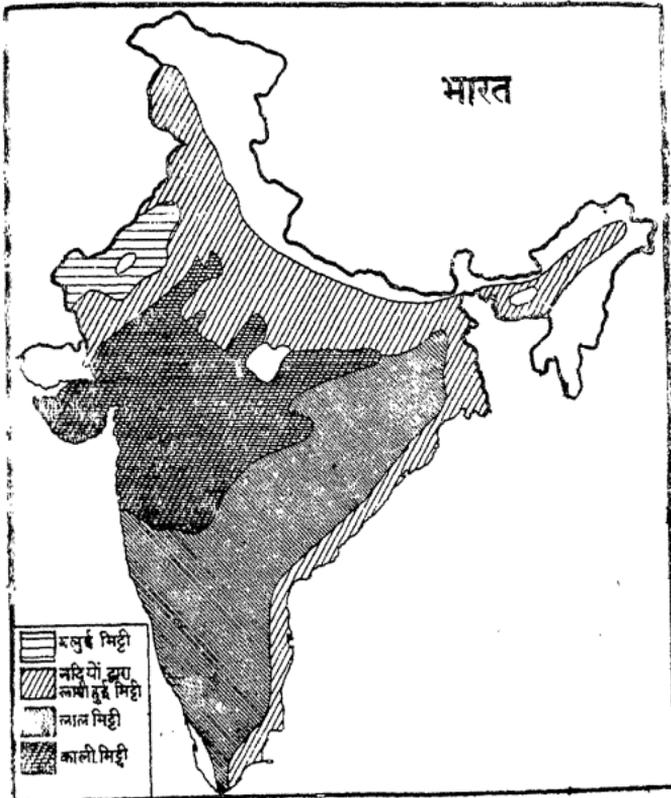
भारत की मिट्टी

नदियों द्वारा लायी हुई मिट्टी
(Alluvial Soil)

भारत में यह मिट्टी सबसे अधिक उपजाऊ है। यह दक्षिण प्रायद्वीप के दोनों तटों पर मिलती है। पूर्वी तट की ओर गोदावरी, कृष्णा और कावेरी के डेल्टाओं में यह मिट्टी पाई जाती है। इन मैदानों में चावल और गन्ने की फसलें खूब पैदा होती हैं। दक्षिण की इस मिट्टी में फासफोरिक

एसिड (Phosphoric Acid), नत्रजन (Nitrogen) और वनस्पति का अंश कम है, किन्तु पोटाश (Potash) और चूना यथेष्ट हैं।

उत्तर में गंगा के विस्तृत मैदानों में यह मिट्टी फैली हुई है। अधिकांश उत्तर राजस्थान, पूर्वी पञ्जाब, उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल और आधे आसाम में यही मिट्टी पाई जाती है। इस मिट्टी वाले प्रदेश का क्षेत्रफल तीन लाख वर्गमील है। इस मिट्टी की गहराई का आज तक पता नहीं चला, परन्तु बोरिंग करने से यह पता चलता है कि १६०० फीट गहराई तक यह मिट्टी मिलती है। इस प्रदेश की मिट्टी हिमालय से निकलने वाली नदियों द्वारा हिमालय की चट्टानों को काट कर लाई गई है।

सिंधु और गंगा के मैदानों की मिट्टी में नत्रजन (Nitrogen) कम है, पोटाश (Potash) काफी है और फासफोरिक एसिड (Phosphoric Acid) यद्यपि बहुत नहीं है, परन्तु पर्याप्त है।

ऊपर के विवरण से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि भारत में पाई जाने वाली भिन्न-भिन्न मिट्टियों में नत्रजन एक ऐसा मुख्य तत्व है, जिसकी कमी है।

खेतों को खाद की आवश्यकता

यह सभी जानते हैं कि खेत में लगातार फसलें उत्पन्न करने से उसकी मिट्टी कमजोर पड़ जाती है। यदि उनमें खाद न डाली जाय, तो उस खेत में पैदावार कम होने लगती है। इसका कारण यह है कि पौधा कुछ तत्वों को मिट्टी से लेता है। अतएव मिट्टी से कुछ तत्व फसल उत्पन्न करने के कारण कम हो जाते हैं। किन्तु यह ध्यान में रखने की बात है कि हर एक पौधा भिन्न-भिन्न तत्वों को मिट्टी से लेता है। यही नहीं, प्रत्येक पौधा कुछ तत्वों को भूमि में बढ़ाता भी है। फसल उत्पन्न करने से जब भूमि के कुछ तत्व कमजोर पड़ जाते हैं तो भूमि में अच्छी फसल उत्पन्न नहीं होती। अतएव भूमि के उस तत्व को पूरा करने तथा उसको अधिक उपजाऊ बनाने के लिये खाद देनी पड़ती है। खाद देकर तो किसान भूमि को उपजाऊ बनाता ही है,

प्रकृति भी भूमि के खोये हुए तत्वों को फिर पूरा करने में सहायक होती है।

भारत में लगभग हर एक प्रकार की मिट्टी में नत्रजन की कमी है। यदि किसान खेत को जोत कर एक या दो साल तक बिना कुछ बोए छोड़ दे। तो हवा से भूमि नत्रजन स्वयं ले लेगी। इसीलिये कहा गया है कि खेतों की उपज को कम न होने देने के लिये उनको आराम मिलना चाहिये। आराम मिलने का मतलब यह है कि कुछ समय तक खेत पर कोई भी फसल न पैदा की जाय। परन्तु जिन देशों में भूमि कम होती है और जो घने आबाद होते हैं उनमें खेती की पैदावार की इतनी ज्यादा माँग होती है कि खेतों को आराम नहीं मिलता और उन पर लगातार फसलें पैदा की जाती हैं। यही हाल भारत का है। यहाँ की जमीन को भी आराम कम मिलता है।

दूसरा तरीका जमीन को जल्दी कमजोर न होने देने का यह है कि फसलों को हेर-फेर के साथ पैदा किया जाय। फसलों के हेर-फेर (Rotation of Crops) का मतलब यह है कि एक ही फसल लगातार एक खेत में न बोई जाय। यदि इस बार एक फसल बोई गई है तो दूसरी बार उसी फसल को न बो करके दूसरी फसल पैदा की जाय। इन फसलों के अदल-बदल को 'फसल का हेर-फेर" कहते हैं। इससे यह लाभ होता है कि जमीन के जिस तत्व को एक फसल कम करती है, उसी को दूसरी फसल कम न करेगी। इसके अतिरिक्त फसलें कुछ तत्वों को भूमि में बढ़ाती भी हैं। अतएव फसलों के हेर-फेर से यह लाभ भी होता है कि जिस तत्व को एक फसल ने कम किया है, उसे दूसरी फसल बढ़ा देगी।

इतने पर भी खेत की जमीन को उपजाऊ बनाने के लिये खाद देने की जरूरत पड़ती है। भारत की मिट्टी में नत्रजन (जो एक मुख्य तत्व है) की कमी है। इस कारण वही खाद अधिक उपयोगी सिद्ध होगी जिसमें नत्रजन हो।

अब हम यहाँ उन खादों के नाम और विवरण देते हैं, जिनका भारत में प्रयोग होता है या हो सकता है।

गोबर और कूड़े की खाद

खाद के सम्बन्ध में एक बात ध्यान में रखनी चाहिये। भारतीय किसान उसी खाद को अपने खेतों में डाल सकता है, जो बिना खर्च किये अथवा नाम मात्र का खर्च करने से गाँव में ही तैयार हो सकती हो। कीमती खाद को वह खेतों में डाल ही नहीं सकता। हाँ, यदि फसल बहुत कीमती हो, तो अवश्य मोल लेकर कीमती खाद डाल सकता है। इस दृष्टि से गोबर और कूड़े की खाद बहुत महत्वपूर्ण है। गोबर, पशुओं के पेशाब, कूड़ा इत्यादि वस्तुओं की बहुत अच्छी खाद बन सकती है। प्रत्येक किसान गाय और बैल पालता है। अतएव यदि किसान अपने पशुओं के गोबर, पेशाब और घर के कूड़े की खाद बनावे, तो उसकी खेती के लिये काफी खाद तैयार हो सकती है और इस खाद के बनाने में थोड़ी सी मेहनत के सिवा कुछ खर्च नहीं पड़ता। किन्तु वर्ष के आठ महीने तो किसान गोबर के कण्डे बनाकर उन्हें जला डालते हैं। केवल बरसात के दिनो में कण्डे बनाये ही नहीं जा सकते। तब उस गोबर की खाद बनायी जाती है। गोबर जैसी मूल्यवान् खाद को जलाने से देश की बहुत अधिक हानि होती है, परन्तु दूध इत्यादि के औटाने में धीमी आँच की जरूरत होने के कारण तथा गाँव में लकड़ी की कमी होने के कारण किसान गोबर को जला डालता है। साथ ही यह भी न भूलना चाहिये कि भारत में गोबर की ही खाद सबसे अच्छी और सबसे सस्ती है। अतएव यदि हम चाहते हैं कि किसान गोबर का जलाना छोड़कर उसको खेती में डाले तो हमें उसकी आदत के विरुद्ध प्रचार करना होगा और गाँवों की ऊसर भूमि पर जंगल लगाकर वहाँ लकड़ी उत्पन्न करनी होगी, तभी यह समस्या हल हो सकती है।

इसके अतिरिक्त किसान को अरहर, कपास, सन, जूट के डंठल इत्यादि जलाने के लिये प्रोत्साहित करना होगा और चूल्हे में सुधार करना होगा, जिससे कि भोजन बनाने में जो बहुत सी अग्नि व्यर्थ नष्ट हो जाती है, वह न हो और ईंधन की बचत हो सके। इसके अतिरिक्त ऐसी अंगीठियों का भी आविष्कार होना चाहिये, जिनमें सूखी घास इत्यादि भी जल सके। ईंधन की बचत करके ही हमें खाद के लिए गोबर को बचा सकते हैं।

गोबर को जलाने से बचाने के अतिरिक्त हमें किसान को गड्ढे में खाद बनाने के तरीके को सिखाना होगा। तभी अच्छी खाद तैयार हो सकेगी। ढेर लगाकर खाद बनाने से अच्छी खाद तैयार नहीं होती। उसके तत्व नष्ट हो जाते हैं। हर्ष की बात है कि ग्राम-सुधार-कार्य के फल-स्वरूप गाँवों में गड्ढों में खाद बनाने का प्रचार किया जा रहा है।

मल की खाद

अभी तक भारत में मल की खाद का उपयोग कम होता है, क्योंकि किसान उसको छूना पसन्द नहीं करते। परन्तु अब शहरों के पास सब्जी इत्यादि की खेती में यह खाद दी जाने लगी है। गाँवों में तो इस खाद का कोई उपयोग ही नहीं होता। पहले तो किसान उसको छूना ही नहीं चाहते। दूसरे, गाँवों में पाखाने के न होने से और उसको इकट्ठा करने का कोई साधन न होने से, चाहने पर भी उसका उपयोग नहीं हो सकता। यदि गाँवों में पिट लैट्रिन्स (Pit latrines) का प्रचार हो जाय, तो यह खाद गाँव में मिल सकती है। किसान जो इस खाद का उपयोग करने से हिचकते हैं, उसका मुख्य कारण उसकी बदबू और गन्दगी है। इन खराबियों को दूर करने के दो तरीके हैं। मल को सुखाकर, उसको पीसकर बारीक कर दिया जावे और उस पाउडर का खाद के रूप में उपयोग हो। भारत में कुछ म्युनिसिपैल्टियाँ पाउडर बनाती हैं। दूसरा तरीका यह है कि मल को बड़े-बड़े तालाबों में इकट्ठा किया जाय और उसमें हवा को पास करके उसकी दुर्गन्ध नष्ट कर दी जाय, किन्तु यह कार्य बड़े-बड़े शहरों की म्युनिसिपैल्टियाँ ही कर सकती हैं। गाँवों में यदि गड्ढे बनाकर ग्राम-शौचालय बनाये जायँ तो मल का उपयोग खाद के लिए हो सकता है।

हरी खाद

कुछ पौधे ऐसे होते हैं, जिनको पैदा करके उन्हें खेत में ही जोत कर मिला देने से खेत उपजाऊ हो जाता है। उदाहरण के लिए यदि सन की

फसल पैदा करके उसको खेत में ही जोत दिया जाय, तो जमीन जोरदार हो जायेगी। सन को जमीन में जोत कर मिलाते समय जमीन में नमी होनी चाहिये। परन्तु सन की खाद बनाने में एक नुकसान यह है कि किसान को फसल से कुछ भी न मिलेगा। ढैंचा और मूँगफली की पत्तियों की भी हरी खाद बनाई जा सकती है।

खली की खाद

यह तो सभी जानते हैं कि खली की भी बहुत अच्छी खाद तैयार होती है। किन्तु आजकल तो खली की कीमत इतनी अधिक है कि किसान उसकी खाद बनाकर खेत में नहीं डाल सकता। भारत से हर साल करोड़ों रुपये का तिलहन विदेशों को जाता है। यदि यह तिलहन विदेशों को न जाकर यहाँ के ही कारखानों में पेरा जाता तो और लाभों के साथ एक लाभ यह भी होता कि खली देश में ही रहती और वह बहुत सस्ती बिकती। किसान उस दशा में उसका उपयोग खाद के लिए कर सकता था।

एमोनिया सलफेट (Ammonium Sulphate)

एमोनिया सलफेट जमशेदपुर ताता के लोहे के कारखाने में तथा बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा के कोयले की खानों से मिलती है। परन्तु एमोनिया सलफेट की कीमत इतनी ज्यादा है कि फलों और गन्ने की पैदावार को छोड़कर और किसी फसल के लिए उसका उपयोग लाभदायक नहीं हो सकता। यही कारण है कि किसान इसका बहुत कम उपयोग करते हैं।

हड्डी की खाद

हड्डी को पीसकर बहुत अच्छी खाद तैयार होती है। भारत से हर साल लगभग एक करोड़ रुपये से कुछ कम की हड्डी तथा हड्डी का चूरा विदेशों को चला जाता है। इस कारण इसका उपयोग किसान नहीं कर पाता। हड्डी की खाद उस जमीन के लिए बहुत लाभदायक है, जहाँ फासफेट् (Phosphate) की कमी है।

मछली की खाद

मछली की खाद भी बहुत उपयोगी होती है, परन्तु भारत में मछली इतनी अधिक नहीं मिलती कि उसका उपयोग खाद के रूप में किया जा सके। हाँ, बम्बई और मद्रास प्रदेश के समुद्र-तट के किनारे पर अवश्य इसका उपयोग खाद के रूप में होता है।

ऊपर के विवरण से यह पता चल ही गया होगा कि भारतीय किसान खेतों को बहुत कम खाद देता है। गोबर की खाद के सिवा और सब खादें इतनी कीमती और कम हैं कि उनका भारत में अधिक उपयोग हो ही नहीं सकता। गोबर को किसान जला डालता है। अतएव खाद की समस्या तभी हल हो सकती है, जब उसको गोबर जलाने से रोका जाय।

सिंदरी (बिहार) का खाद का कारखाना

देश में खाद्य पदार्थों तथा औद्योगिक कच्चे माल की कमी को पूरा करने के लिए यह आवश्यक प्रतीत होने लगा कि भूमि की पैदावार को बढ़ाया जाय। इसके लिए भूमि को अधिक खाद की आवश्यकता थी। अस्तु, भारत सरकार ने बिहार में सिन्दरी नामक स्थान पर ३८ करोड़ रुपये की लागत का एक विशाल कारखाना खड़ा किया है। यह कारखाना प्रतिवर्ष ३ लाख टन सल्फेट अमोनिया (कृत्रिम खाद) उत्पन्न करता है, जो सस्ते मूल्य पर किसानों को बेंची जाती है।

इस कारखाने के सफलतापूर्वक कार्य करने के बाद भारत सरकार ने निश्चय किया है कि तीन कृत्रिम खाद के बड़े कारखाने स्थापित किये जायेंगे। उनमें में एक कारखाना भाखरा-नांगल योजना के क्षेत्र में होगा और दूसरा सरकेला में होगा।

कृत्रिम खाद के अधिक मात्रा में बनने पर भूमि की उत्पादन शक्ति बढ़ेगी और खेती की उन्नति हो सकेगी। द्वितीय पंच-वर्षीय योजना की समाप्ति पर (१९६१ में) भारत में आज की अपेक्षा तिगुनी कृत्रिम खाद उत्पन्न होने लगेगी।

भारत की जलवायु

भारत एक बहुत बड़ा देश है। इसकी लम्बाई दो हजार मील से कुछ कम है और लगभग उतनी ही इसकी चौड़ाई है। इतने बड़े देश में एक सी ही जलवायु नहीं हो सकती। यही कारण है कि कहीं हमें वनस्पति से लह-लहाते प्रदेश नजर आते हैं, तो कहीं उजाड़ खण्ड और मरुभूमि दिखाई पड़ती है। आर्थिक भूगोल के विद्यार्थी को देश की जलवायु की जानकारी आवश्यक है, क्योंकि हमारे देश का सबसे महत्त्वपूर्ण धन्धा खेती जलवायु ही पर निर्भर है।

इस देश में जलवायु के विचार से वर्ष दो हिस्सों में बाँटा जा सकता है—पहला, सूखे महीने जिनमें वर्षा बिलकुल नहीं होती, दूसरा, वर्षा के महीने। सितम्बर से लेकर मई तक भारत में सूखे दिन होते हैं और इन दिनों में पृथ्वी से समुद्र की ओर चलने वाली हवाओं की प्रधानता रहती है। इन सूखी हवाओं के चलने से तापक्रम बहुत घटता और बढ़ता रहता है। जून से सितम्बर तक यहाँ बरसात के दिन होते हैं। उन दिनों हवा समुद्र से पृथ्वी की ओर चलती है। इस कारण हवा में नमी अधिक रहती है और तापक्रम का उतार-चढ़ाव अधिक नहीं होता। जिन महीनों में वर्षा होती है वे भी दो भागों में बाँटे जा सकते हैं—गर्मी के बरसात के महीने और सर्दी के बरसात के महीने। सर्दी के बरसात के महीने (सितम्बर से फरवरी तक) में बादल नहीं होते, किन्तु उत्तर भारत में तूफ़ान आया करते हैं। ये तूफान या तो सिंधु नदी के पश्चिम से उठते हैं अथवा भूमध्य सागर (Mediterra-nean Sea) से चलते हैं। इन तूफ़ानों के कारण उत्तर-पश्चिम भारत में २ इंच से ५ इंच तक वर्षा हो जाती है और पहाड़ी प्रदेशों में बर्फ भी गिरती है। किन्तु इन महीनों में दक्षिण प्रायद्वीप तथा बर्मा में आधे इंच से अधिक वर्षा नहीं होती है। तूफान आने से पहले तापक्रम (टेम्परेचर) कुछ ऊँचा हो जाता है, परन्तु तूफ़ान आने पर नीचा हो जाता है। तूफ़ान के साथ कुहरा और पाला भी पड़ता है और रात्रि को तापक्रम बहुत कम हो जाता है।

गरमी के महीनों (मई, जून इत्यादि) में तापक्रम ११०° फै० से १२०° फै० तक चढ़ जाता है। भारत की भूमि पर गरमी अधिक होने से हवा हिन्द महासागर से भारत की ओर चलने लगती है। मई के अन्त में हिन्द महासागर की ट्रेड हवायें आगे बढ़कर अरब सागर और बंगाल की खाड़ी पर फैल जाती हैं। ये हवायें भारत के पूर्वी और पश्चिमी समुद्र तटों के पास जून के मध्य में पहुँचती हैं। अरब समुद्र की ये मानसूनी हवायें पश्चिमी घाटों को पार करके प्रायद्वीप में घुसती हैं। पश्चिमी घाट को पार करते हुए मानसून पश्चिमी घाट के पश्चिमी ढाल पर खूब वर्षा करती है। अरब मानसून की एक शाखा उत्तर में काठियावाड़ और राजस्थान की ओर चली जाती है। लेकिन इन अत्यन्त गरम प्रदेशों में तापक्रम बहुत ऊँचा होता है और कोई पहाड़ मानसून को रोकने के लिये न होने के कारण यह हवा बिना वर्षा किये चली जाती है। बंगाल की खाड़ी की मानसून आसाम और बर्मा की पहाड़ियों से बड़े जोरों से टकराती है और यही कारण है कि वहाँ पानी बहुत बरसता है। आसाम में पानी बरसा कर मानसून पश्चिम की ओर मुड़ती है और बंगाल पर पानी बरसता है। उधर अरब समुद्र के मानसून की दूसरी शाखा मध्य भारत में से होती हुई बंगाल की खाड़ी की मानसून से आकर मिल जाती है, फिर ये हवायें पश्चिम की ओर उत्तर प्रदेश और पंजाब पर पानी बरसाती हुई पश्चिम को जाती हैं।

जुलाई और अगस्त के महीनों में उत्तर भारत में खूब वर्षा होती है। सितम्बर के मध्य में बरसात समाप्त हो जाती है। भारत के भिन्न-भिन्न भागों में वर्षा एक-सी नहीं होती। पश्चिमी घाट के पश्चिमी ढाल पर १२५ इंच वर्षा होती है, बर्मा के समुद्र तट पर भी लगभग इतनी वर्षा होती है। लेकिन अन्दर पानी कम हो जाता है। पश्चिमी घाट के पूर्वी ढाल पर केवल ४० इंच पानी बरसता है। दक्षिण महाद्वीप में १५ इंच से ३० इंच तक वर्षा होती है। मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश में वर्षा का औसत ३५ इंच से लेकर ५० इंच तक है। बंगाल के पूर्वी भाग तथा आसाम में लगभग ६५ इंच पानी बरसता है। शेष बंगाल में ५५ इंच और बिहार में ५० इंच पानी होता

है। उत्तर-भारत में वर्षा पूर्व से पश्चिम की ओर घटती जाती है। पंजाब में पानी बहुत कम हो जाता है, पूर्वी पंजाब में २० इंच और पश्चिम में केवल ६
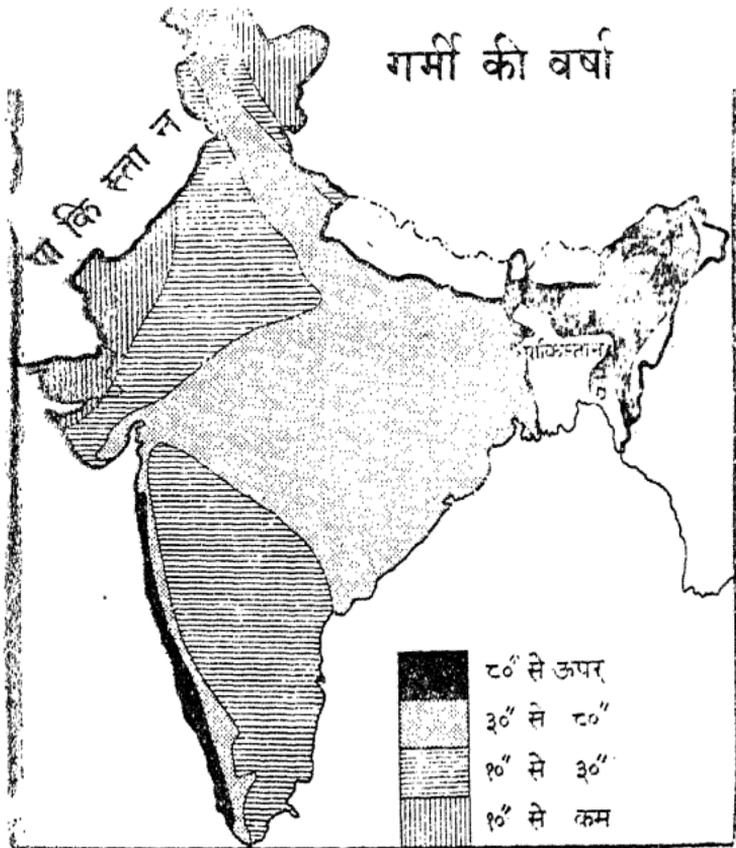
इंच ही पानी बरसता है। पश्चिमी राजस्थान तथा कच्छ में वर्षा ५ इंच से कम ही होती है।

जाड़े की वर्षा

अक्टूबर से दिसम्बर तक मानसून उत्तर से दक्षिण की ओर चलता है क्योंकि उत्तर के मैदानों में तापक्रम बहुत गिर जाता है। दिसम्बर के अन्त

में यह मानसून समुद्र को पार करता है। उत्तर से लौटते समय यह कुछ कारोमंडल तट तथा बंगाल की खाड़ी के कुछ द्वीपों पर पानी बरसाती है।
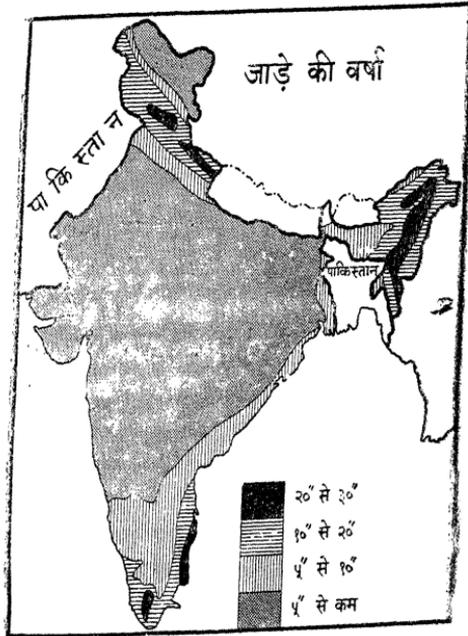
पश्चिम में लौटने वाली हवा (मानसून) मालाबार तट को पानी देती है। जाड़े के दिनों में आंध्र और मद्रास के जिलों में १५ इंच और मद्रास के दक्षिण में ७ इंच के लगभग पानी बरसता है। हैदराबाद और बम्बई के दक्षिण में ५ इंच के लगभग वर्षा होती है। बिहार, उड़ीसा और उत्तर प्रदेश में भी इन दिनों थोड़ी वर्षा हो जाती है।

वर्षा की विशेषताएँ

वास्तव में यदि देखा जाय तो आंध्र तथा मद्रास के समुद्र तट के प्रदेश को छोड़कर सारे भारत में गरमियों में ही वर्षा होती है। भारत में वर्षा का मौसम बहुत अनिश्चित है। समय निश्चित होते हुए भी पानी की दृष्टि से वर्षा औसत से कम होती है। कभी-कभी यह घट-बढ़ औसत से ५० प्रतिशत तक हो जाती है। भारत में वर्षा की केवल यही विशेषता नहीं है। एक दूसरी विशेषता यह भी है कि पूर्व से पश्चिम की ओर वर्षा कम होती जाती है। राजस्थान से पश्चिम (जैसलमेर) में किसी-किसी वर्ष १ इंच वर्षा भी नहीं होती यद्यपि वहाँ की औसत वर्षा ३" या ४" है। इसके विपरीत पूर्व में आसाम के कुछ स्थानों की औसत वर्षा ५०० इंच है। संक्षेप में भारत की वर्षा की तीन विशेषतायें हैं—(१) यहाँ वर्षा मौसमी है; (२) वर्षा पूर्व से पश्चिम की तरफ कम होती जाती है, तथा (३) वर्षा वर्ष भर कितनी होगी, यह बिल्कुल अनिश्चित है। एक स्थान पर किसी वर्ष अधिक वर्षा और किसी वर्ष बहुत कम वर्षा होती है। वर्षा की ऊपर लिखी हुई विशेषताओं के कारण खेती की समस्या इस देश में कठिन हो जाती है और उसका हल केवल सिंचाई के साधनों को उपलब्ध करने से ही सकता है।

जलवायु का भारत के आर्थिक जीवन पर प्रभाव

भारत के जलवायु की कुछ विशेषतायें हैं, जिनका भारत के आर्थिक जीवन पर प्रभाव पड़ता है।

(१) जाड़ों में भी भारत का तापक्रम बहुत नीचा नहीं होता। भारत के प्रत्येक भाग में जाड़ों में भी यथेष्ट गरमी रहती है, इस कारण खेती के लिए लम्बा समय मिलता है और जाड़ों में भी फसलें उत्पन्न होती हैं। जाड़ों में कुहरा और पाला न होने के कारण भारत शीतोष्ण कटिबन्ध की फसलें उत्पन्न करता है और गरमियों में उष्ण तथा अर्ध उष्ण कटिबन्ध की फसलें उत्पन्न होती हैं। बङ्गाल, आसाम और दक्षिण प्रायद्वीप के तटीय प्रदेश तथा

जिन प्रदेशों में सिंचाई के साधन उपलब्ध हैं, वहाँ सूखे महीनों में भी फसलें उत्पन्न की जाती हैं।
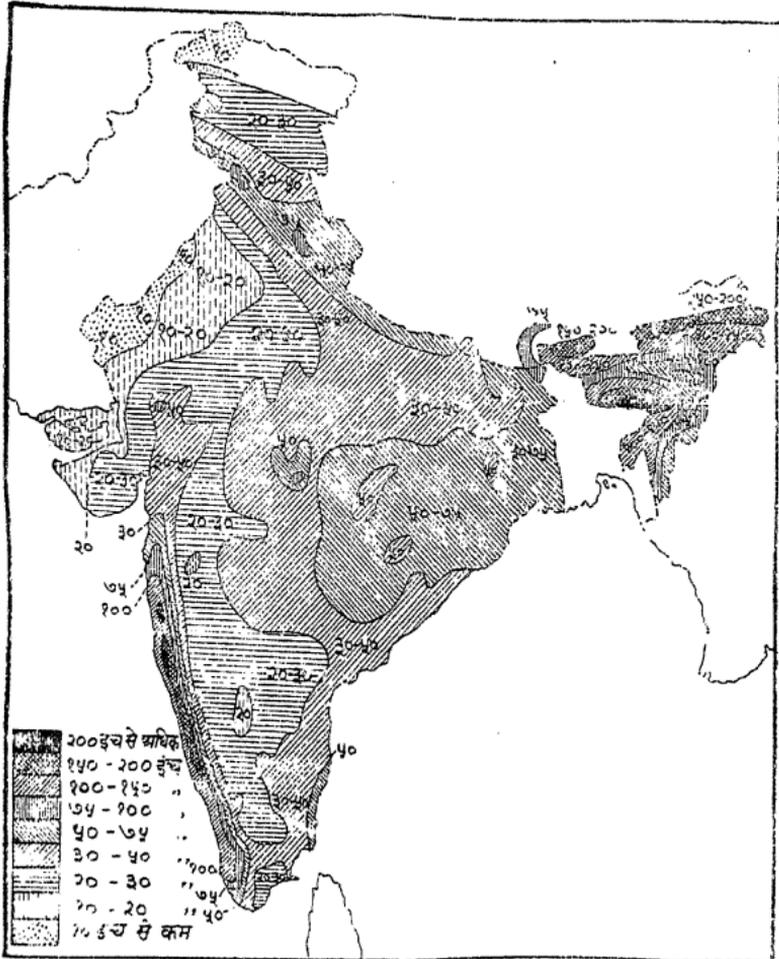
भारत की औसत वार्षिक वर्षा

(२) अधिकांश वर्षा जून, जुलाई, अगस्त, में होती है। उसमें ज्वार बाजरे की फसलें शीघ्र तैयार हो जाती हैं और इन दिनों के गरम और नम

जलवायु के कारण पौधों की खूब वृद्धि तथा उत्पत्ति होती है, जिससे पशुओं को यथेष्ट चारा मिलता है।

(३) गरमियों में तापक्रम बहुत जल्दी ऊँचा हो जाता है। इस कारण भारत में फसलें शीघ्र पक कर तैयार हो जाती हैं। शीघ्र पकने के कारण यहाँ पैदावार उतनी बढ़िया नहीं होती जितनी अन्य देशों की। जाड़े और गरमी दोनों की फसलों के लिए यह बात लागू होती है क्योंकि दोनों फसलें गरमियों में पकती हैं।

(४) वर्षा चूँकि वर्ष में तीन या चार महीनों में ही होती है, इस कारण वर्ष का शेष भाग सूखा रहता है। इसका परिणाम यह है कि यहाँ घास के मैदान नहीं हैं। जो कुछ भी घास वर्षा के दिनों में उगती है वह वर्षा के उपरांत धूप की तेजी से जल जाती है। इस कारण भारत में चारे की कमी रहती है और जो कुछ घास होती है वह घटिया होती है।

(५) वर्षा पश्चिम (पूर्वी पंजाब और उत्तर प्रदेश) में कम होती है और यही उपजाऊ मैदान ऐसे हैं जहाँ जाड़े में यथेष्ट जाड़ा पड़ता है और इस कारण ही यहाँ शीतोष्ण कटिबन्ध की पैदावार खूब होती है।

(६) भीषण गरमी आने के उपरान्त वर्षा होने से बहुत सी बीमारियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। उदाहरण के लिए, कुछ भागों में मलेरिया का भीषण प्रकोप होता है और जनसंख्या की कार्य-क्षमता घट जाती है। गरमी और नमी होने के कारण आलस्य और पुरुषार्थहीनता भी उत्पन्न हो जाती है। उससे उत्पादन-कार्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है, किन्तु यह बुरा प्रभाव केवल उन्हीं प्रदेशों में दिखाई देता है जहाँ वर्षा अधिक होती है।

(७) भारत में वर्षा अत्यन्त अनिश्चित है। किसी वर्ष सूखा पड़ जाने से दुर्भिक्ष पड़ जाता है, तो किसी वर्ष वर्षा अधिक होने से बाढ़ें आती हैं, जो फसलों को नष्ट कर देती हैं। इस कारण भारतीय ग्रामीण निराशावादी और भाग्यवादी बन गया है।

(८) क्योंकि वर्षा केवल गर्मियों के तीन महीनों में होती है, इस कारण जाड़े में फ़सलें उत्पन्न करने के लिए सिंचाई की बहुत अधिक आवश्यकता होती है । यही कारण है कि भारत की खेती बहुत कुछ सिंचाई पर निर्भर है और सिंचाई का भारत में इतना अधिक महत्त्व है ।

अभ्यास के प्रश्न

१—वर्षा तथा धरातल की बनावट का भारत के आर्थिक जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा है ? व्याख्या कीजिए (१९४३)

२—भारत का आर्थिक भूगोल समझने के लिए वहाँ की जलवायु का अध्ययन क्यों आवश्यक है ? (१९४९)

३—भौगोलिक स्थिति के विचार से भारत की सुविधाओं और असुविधाओं की विवेचना कीजिये । (१९५०)

४—भारत में पाई जाने वाली मिट्टी के भेद बतलाइये और यह भी बतलाइये कि मिट्टी का उपजाऊपन किन बातों पर निर्भर है । आप की सम्मति में खेती के लिये कौन सी मिट्टी सबसे अच्छी है ? कारण सहित बतलाइये । (१९४५)

५—भारत में वर्षा की विशेषताएँ बतलाइए । वर्षा का विभाजन समयानुसार दीजिए और विभिन्न प्रदेशों में वर्षा की मात्रा बतलाइए । (१९४५)

६—गंगा घाटी की भौगोलिक परिस्थिति का वर्णन कीजिए और बतलाइए कि उसने वहाँ के आर्थिक जीवन को किस प्रकार विकसित किया है । (१९४३)

७—भारत के समुद्र-तट की प्राकृतिक विशेषताओं को बतलाइए जिनके कारण भारत सामुद्रिक उन्नति न कर सका ? (१९४२)

८—उत्तर भारत के मैदानों के आर्थिक महत्त्व पर प्रकाश डालिये ।

९—भारत में खेतों के लिये खाद की क्या व्यवस्था है ? विस्तारपूर्वक लिखिये ।

१०—हिमालय पर्वत से भारत को क्या लाभ है ? विस्तारपूर्वक लिखिये ।

११—भारत में वर्षा की विशेषताओं को बतलाइये और यह भी बतलाइये कि उनके कारण भारत में सिंचाई की इतनी आवश्यकता क्यों है ?

१२—हमारे देश में कौन कौन खाद अधिक प्रचलित हैं ? क्या भारत का किसान इन खादों का समुचित उपयोग करता है ? (उ०प्र० १९५२)

१३—भारत में कृत्रिम खाद कहाँ तक उपयोग होती है ? भारत में कृत्रिम खाद उत्पन्न करने के कौन से प्रयत्न किये गये हैं ?

१४—भारत में मिट्टी कितने प्रकार की है ? प्रत्येक मिट्टी की आर्थिक महत्ता बतलाइये । (१९५३)

१५—मानसूनी जलवायु किसे कहते हैं और वह कहाँ-कहाँ पाई जाती है ? (१९५३)

तीसरा अध्याय

सिंचाई

सिंचाई के साधन

भारत खेतिहर देश है। खेती पर ही अधिकांश जनसंख्या निर्भर है। खेती के लिए ठीक समय पर यथेष्ट पानी की आवश्यकता होती है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि भारत में जहाँ ६०″ या उससे अधिक वर्षा होती है, वहाँ सिंचाई की जरूरत नहीं होती। परन्तु जहाँ ६०″ से कम वर्षा होती है, वहाँ सिंचाई की आवश्यकता होती है। इस हिसाब से पश्चिमी घाट के पश्चिमी ढाल, आसाम और पूर्वी बंगाल तथा हिमालय के तराई-प्रदेश को छोड़ कर जहाँ वर्षा ५५ इंच से अधिक होती है, सारे देश में सिंचाई की जरूरत पड़ती है। कुछ प्रदेश तो इतने सूखे हैं कि वहाँ सिंचाई के बिना कुछ उत्पन्न ही नहीं हो सकता है।

यही कारण है कि भारत में बहुत पुराने जमाने से कुओं, तालाबों और नहरों से सिंचाई की जाती रही है। सिंचाई के साधन ब्रिटिश सरकार के समय में ही उपलब्ध किये गये हों, यह बात नहीं थी। बहुत पुराने जमाने से हिन्दू राजाओं, मुसलमान बादशाहों, जमींदारों तथा धनी व्यापारियों ने कुआँ, तालाब अथवा नहर निकलवाना अपना मुख्य कर्तव्य माना है। जिन प्रदेशों में बिना सिंचाई के खेती हो सकती है उनको छोड़कर लगभग सारे देश में अकाल पड़ सकता है, इस कारण प्रत्येक प्रदेश में कोई न कोई सिंचाई का साधन अवश्य है। सब प्रदेशों में सिंचाई के साधन एक-से नहीं हैं। उत्तर पश्चिम भारत में नहरें, उत्तर भारत के मैदानों और मध्य प्रदेश तथा मध्य भारत में कुएँ तथा दक्षिण प्रायद्वीप में तालाब और पहाड़ी बाँध सिंचाई के मुख्य साधन

हैं। सिंचाई के साधनों की भिन्नता प्रत्येक प्रदेश की भौगोलिक परिस्थिति के अनुसार भिन्न है।

नहरें :—पूर्वी पञ्जाब तथा उत्तर प्रदेश के पश्चिमी जिले खेती के लिए विशेषकर नहरों पर निर्भर हैं। उत्तर भारत की सारी नदियाँ हिमालय की हिम-नदियों (Glaciers) से निकलती हैं, इस कारण गरमी के मौसम में भी जब भारत की भूमि पानी के लिए बहुत प्यासी होती है, इन नदियों में पानी रहता है। इस कारण इन नदियों से निकली हुई नहरों से भी गरमियों के महीनों में जब खेतों को पानी की आवश्यकता होती है, तो पानी दिया जा सकता है। उत्तर भारत में नहरें निकालने की दूसरी सुविधा यह है कि नदियों का यहाँ एक जाल बिछा हुआ है। इस कारण जिन जिलों में पानी की आवश्यकता हुई उन्हीं जिलों की समीपवर्ती नदियों से नहर निकाल ली गई। यही नहीं, इन प्रदेशों में जमीन कहीं पथरीली या कंकरीली नहीं है। सारे उत्तर भारत के मैदान में नरम मिट्टी मिलती है। इसलिए नहरों के खुदवाने और बनवाने में कठिनाई कम होती है और खर्च बहुत नहीं पड़ता। उत्तर भारत के मैदानों में ऊसर और बंजर अथवा ऐसी भूमि बहुत कम है जिस पर खेती न होती हो। इस कारण नहरों का पानी बहुत दूर तक बिना काम में लाये हुए बहता नहीं रहता। उसका अधिक से अधिक उपयोग होता है क्योंकि नहरों के दोनों किनारों पर उपजाऊ भूमि होती है। यही कारण है कि इस भाग में नहरें सिंचाई का मुख्य साधन हैं।

कुआँ :—कुआँ भारत में सिंचाई का मुख्य साधन है। उन प्रदेशों में भी, जहाँ नहरें अथवा तालाब बहुत हैं, कुओं का सिंचाई के लिए खूब उपयोग होता है। एक सबसे अच्छी बात कुएँ के साथ यह है कि किसान अपने खेतों के पास थोड़े खर्च और परिश्रम से कुआँ खोद सकता है। हाँ, यदि भूमि बहुत पथरीली होती है तो कुआँ बनवाने में भी बहुत खर्च पड़ता है, जो एक साधारण किसान के वश के बाहर की बात होती है। कुएँ अधिकतर उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश और आंध्र के उत्तरी

भाग, पूर्वी पंजाब और राजस्थान में सिंचाई के काम में लाये जाते हैं। वैसे तो ऐसी कोई जगह नहीं है जहाँ कुएँ न हों, परन्तु इन प्रदेशों में सिंचाई के मुख्य साधन कुएँ ही हैं।

किन्तु कुएँ की उपयोगिता उसके कम गहरे होने पर निर्भर है। सोता जितनी कम गहराई पर निकलेगा, कुआँ सिंचाई के लिये उतना ही अधिक उपयोगी होगा, क्योंकि कुएँ से पानी निकालने में उतना ही कम खर्च होगा। जिन प्रदेशों में वर्षा बहुत कम होती है वहाँ पानी बहुत गहराई पर मिलता है। यही कारण है कि राजस्थान और पंजाब के पश्चिम में कुएँ इतने गहरे हैं कि उनसे सिंचाई करना बहुत खर्चीला है। इसके अतिरिक्त ऐसे भी प्रदेश हैं जहाँ पानी तो साधारण गहराई पर ही मिल जाता है, किन्तु जमीन पथरीली होने के कारण कुआँ खोदने में बहुत अधिक व्यय होता है। यही कारण है कि मालवा तथा दक्षिण प्रायद्वीप के चट्टानों से भरे हुये प्रदेश में कुओं के बनवाने में इतना अधिक व्यय होता है कि साधारण गरीब किसान कुआँ या बावली बनवा ही नहीं सकता। अतएव कुएँ से उन्हीं प्रदेशों में सिंचाई हो सकती है जहाँ की जमीन नरम हो और वर्षा साधारणतया अच्छी होती हो। भारत में सींची जाने वाली भूमि की २० प्रतिशत भूमि कुओं से सींची जाती है।

ट्यूब वेल या नल-कूप

कुछ वर्षों से उत्तर भारत में जलविद्युत के विकास के साथ-साथ ट्यूब वेल या नल-कूप का तेजी से विस्तार हुआ है। उत्तर प्रदेश, बिहार और पूर्वी पंजाब में नल-कूप बनवाये जा रहे हैं। उत्तर भारत में भूमि नरम है। पृथ्वी के अन्दर कोई चट्टान नहीं है। वर्षा अच्छी होने के कारण, हिमालय पर अतिवृष्टि होने के कारण तथा नदियों का जाल बिछा होने के कारण पृथ्वी के अन्दर यथेष्ट जल है। इस कारण ट्यूब वेल या नल-कूप सरलता से बनाये जा सकते हैं। एक नल-कूप एक हजार बीघे की भली-भाँति सिंचाई कर सकता है और बिजली के

कारण सिंचाई का व्यय कम होता है। नल-कूपों से एक बड़ा लाभ यह है कि किसान को जब आवश्यकता होती है तब उसे जल मिल जाता है और मीटर लगा होने के कारण वह जितना जल लेता है उसके अनुसार उसे सिंचाई देनी पड़ती है। इस कारण वह आवश्यकता से अधिक जल नहीं लेता है। पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत ट्यूब-वेल या नल-कूपों का खूब विस्तार हुआ है ।

तालाब—तालाब और बाँध दक्षिण प्रायद्वीप तथा मालवा में बहुत अधिक हैं। दक्षिण प्रायद्वीप की गरमियों में सूख जाने वाली नदियाँ न तो नहर बनाने के योग्य हैं और न वहाँ की पथरीली जमीन में नहरें आसानी से खोदी जा सकती हैं। हाँ, कुओं का सिंचाई के लिए अवश्य उपयोग होता है। परन्तु उनके खुदवाने में भी व्यय बहुत है। इस कारण वहाँ तालाबों का ही अधिक उपयोग किया जाता है। दक्षिण के पहाड़ी प्रदेश में बरसात के दिनों में सैकड़ों छोटे-छोटे नदी-नाले बरसात के पानी को बहा ले जाते हैं। गाँव के लोग उन नालों को बाँध से रोक कर तालाब बना देते हैं। जमीन पथरीली होने के कारण पानी को भूमि नहीं सोखती और तालाबों से खेतों की सिंचाई की जाती है। गाँव की पंचायत इन तालाबों की देखभाल रखती है और बाँध की मरम्मत करवाती है। दक्षिण में इन तालाबों को पटबाँध कहते हैं। तालाब आंध्र, मद्रास, हैदराबाद तथा मैसूर में अधिक पाये जाते हैं। दक्षिणी राजस्थान तथा मध्य भारत में भी तालाबों से सिंचाई होती है।

अविभाजित भारत में ७ करोड़ एकड़ भूमि सींची जाती थी। किन्तु विभाजन के उपरांत भारत में केवल लगभग पाँच करोड़ एकड़ भूमि सींची जाती है। इससे यह न समझना चाहिये कि सिंचाई के सम्बन्ध में भारत की स्थिति पाकिस्तान से अच्छी है। भारत में जहाँ केवल १८ प्रतिशत भूमि पर सिंचाई होती थी, वहाँ पाकिस्तान में ३२ प्रतिशत भूमि सींची जाती थी। यही कारण है कि प्रथम पंचवर्षीय योजना में सिंचाई के साधनों का विकास करने पर बहुत ध्यान दिया गया।

प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत नहरों के द्वारा ८५ लाख एकड़ नई भूमि पर और कुओं, नल-कूप, तथा तालाबों के द्वारा ८० लाख एकड़ नई
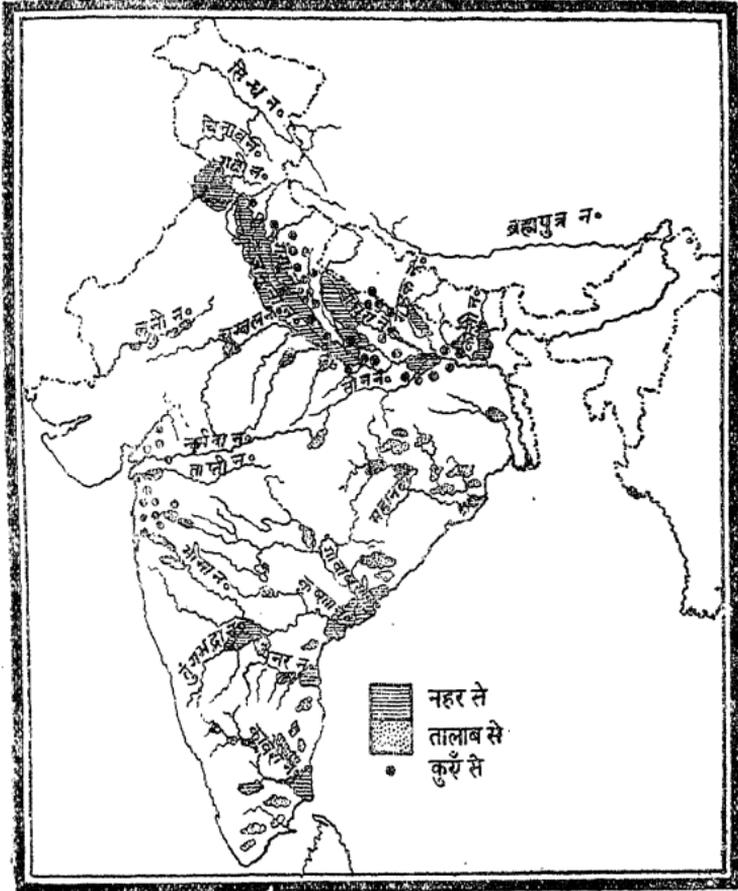
भारत में सींची जाने वाली भूमि

भूमि पर सिंचाई की सुविधा प्रदान की गई है। प्रत्येक राज्य में कुएँ, तालाब, नल-कूप तथा नहरें तेजी से बनाई जा रही हैं।

भारत में नीचे लिखे तीन प्रकार के सिंचाई के साधन हैं :-

सिंचाई

तालाब नहरें

स्थायी नहरें (Perennial) | बाढ़ की नहरें (Inundation) | बाँध की नहरें (Storage)

स्थायी नहरें वे होती हैं, जो वर्ष भर सिंचाई के उपयोग में आती हैं। वे
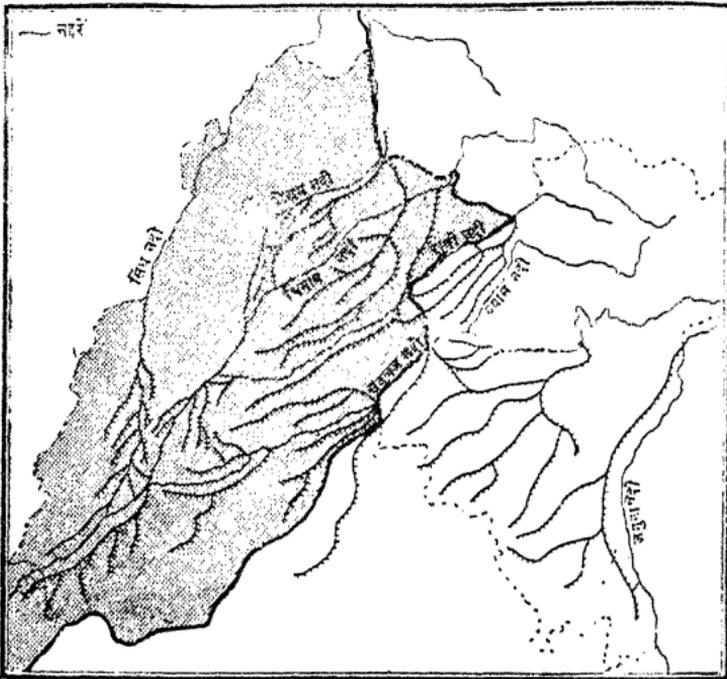
पूर्वी पंजाब की नहरें

ऐसी नदियों से निकाली जाती हैं, जो वर्ष भर बहती हैं। नदियों को

बाँध से रोक कर उस पानी को नहर में लाया जाता है। बाढ़ वाली नहरें वे होती हैं जिनमें पानी तभी आता है जब नदी में बाढ़ आती है। जब बाढ़ समाप्त हो जाती है तो नदी में पानी नीचे चला जाता है और नहरों में जल नहीं जा सकता।

स्थायी नहरें मुख्यतः उत्तर भारत में हैं। बाँध की नहरें दक्षिण, मध्य प्रदेश और विंध्यप्रदेश में हैं।

पूर्वी पंजाब

पूर्वी पञ्जाब में नीचे लिखी मुख्य नहरें हैं :—

(१) **पश्चिमी यमुना नहर**— यह १८७० ई० में बनकर तैयार हुई। यह यमुना नदी से निकली है और पूर्वी पंजाब के रोहतक, हिसार और करनाल जिलों और पैप्सू के पटियाला तथा झींद जिलों में ८,६०,००० एकड़ भूमि सींचती है। इसकी तीन शाखायें हैं। देहली शाखा, हाँसी शाखा, और सिरसा शाखा।

(२) **सरहिंद नहर**—यह सतलज नदी से रूपड़ के पास निकाली गई है और लुधियाना, फिरोजपुर, हिसार जिलों तथा पैप्सू राज्य को सींचती है। यह सन् १८६२ ई० में बनकर तैयार हुई थी। इसके द्वारा १८ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होती है।

(३) **अपर बारी दोआब नहर**—वह नहर रावी नदी से मधुपुर के पास निकाली गई है और गुरुदासपुर, अमृतसर जिलों को सींचती हुई पाकिस्तान के लाहौर जिले में चली जाती है। यह लगभग १२ लाख एकड़ भूमि को सींचती है।

(४) **सतलज घाटी की नहरें**—ये नहरें १६३३ ई० में बनकर तैयार हुईं। इन नहरों के जल से बीकानेर में सिंचाई होती है। परन्तु अधिकतर ये नहरें पाकिस्तान में चली गईं। राजस्थान की बीकानेर डिवीजन में इससे ३,४१,००६ एकड़ भूमि की सिंचाई होती है।

उत्तर प्रदेश

उत्तर प्रदेश के पश्चिमी जिलों में नहरें सिंचाई की एक मुख्य साधन

हैं। यद्यपि इन जिलों में कुएँ भी बहुत हैं, परन्तु नहरों द्वारा बहुत अधिक भूमि सींची जाती है। उत्तर प्रदेश में नीचे लिखी नहरें हैं :—
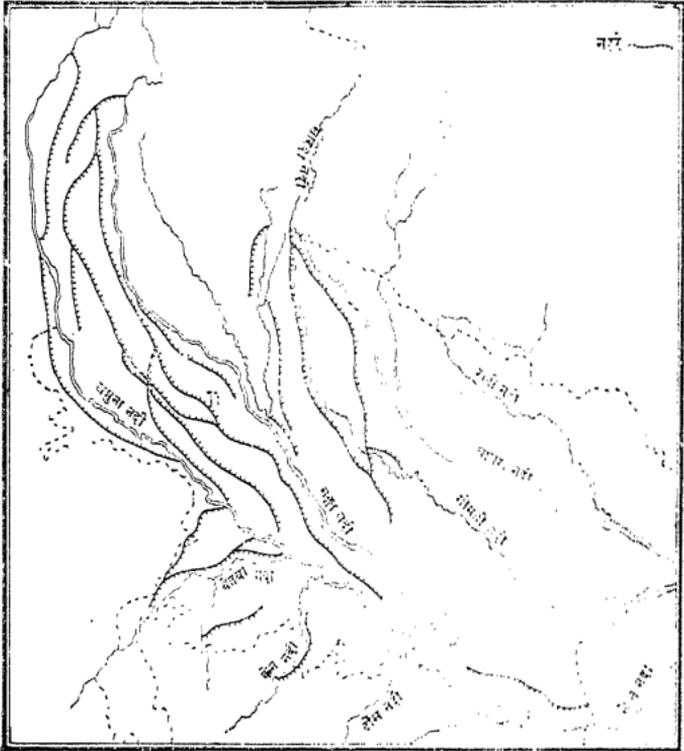
उत्तर प्रदेश की नहरें

(१) अपर गंगा नहर—यह नहर सन् १८५४ ई० में बनकर तैयार हुई। यह हरिद्वार के समीप गङ्गा से निकाली गई है। यह दस लाख एकड़ से अधिक भूमि की सिंचाई करती है और उत्तर प्रदेश की मुख्य नहर है। यह नहर लोअर गङ्गा नहर को भी पानी देती है। अपनी शाखाओं सहित इसकी लम्बाई ३८८८ मील है। इसकी सहायता से तीन करोड़ रुपये की

पैदावार उत्पन्न होती है। इस नहर के बन जाने से यह प्रदेश अत्यन्त उपजाऊ बन गया है।

(२) आगरा नहर—सन् १८७४ ई० में बनकर तैयार हुई। यह देहली के पास ओखला से यमुना नदी से निकाली गई है। यह २,८०,००० एकड़ भूमि को सींचती है। इस नहर की शाखाओं की लम्बाई १००२ मील है।

(३) लोअर गंगा नहर—यह नहर १८७८ ई० में बनकर तैयार हुई। यह गंगा से बुलन्दशहर जिले में नारौरा के पास से निकाली गई है। यह लगभग दस लाख एकड़ भूमि को सींचती है। तराई से निकल कर बहुत सी नदियाँ गंगा से मध्य में मिलती हैं, इस कारण यह नहर निकाली जा सकी। इस नहर की शाखाओं सहित लम्बाई ३८२७ मील है।

(४) शारदा नहर—शारदा नहर भी उत्तर प्रदेश की एक महत्वपूर्ण नहर है। यह १६२८ ई० में बनकर तैयार हुई थी। यह नेपाल की सीमा के पास बनबसा स्थान से शारदा नदी से निकाली गई है। यह रुहेलखंड तथा अवध के पश्चिमी भागों को सींचती है। इस नहर से ६० लाख एकड़ भूमि पर सिंचाई होती है। 'अधिक अन्न उपजाओ' आन्दोलन के फलस्वरूप इस नहर का और भी विस्तार किया गया है।

(५) पूर्वी यमुना नहर—यह नहर उत्तर प्रदेश के उत्तर-पश्चिमी भाग को सींचती है और यमुना से निकाली गई है। सहारनपुर जिले में ताजवाला बाँध से यह नहर निकली है। यह लगभग चार लाख एकड़ भूमि सींचती है।

(६) बेतवा नहर—इससे बुन्देलखंड में सिंचाई होती है। हमीरपुर, बाँदा, जालौन और झाँसी जिलों को इस नहर से पानी मिलता है। झाँसी से १५ मील दूर पारिछा नामक स्थान पर तथा दूसरा कुछ ऊँचे पर दो बाँध बनाये गये हैं जिनसे २ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होती है।

दक्षिण की नहरें

कावेरी डेल्टा की नहरें—यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि दक्षिण में नहरों से सिंचाई नहीं होती है। केवल महानदी, गोदावरी, कृष्णा और

कावेरी के डेल्टाओं में ही नहरें हैं, क्योंकि वहाँ नहरें बनाने के लिए सभी उपयुक्त बातें मौजूद हैं। कावेरी नदी के डेल्टा में नहरों द्वारा लगभग दस लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होती थी, परन्तु नहरों में पानी भेजने का निश्चित रूप से कोई प्रबन्ध नहीं था क्योंकि नहरें जहाँ से निकली थीं वहाँ पानी को रोकने और नहरों में भेजने के लिये वर्क्स नहीं थे। अतएव इस काम को पूरा करने के लिये मैटूर (Mattur) नामक स्थान पर एक बाँध बनाकर पानी को रोका गया है। इस बाँध के द्वारा ६०,००० घन फीट पानी रोक लिया गया है और ८८ मील लम्बी एक नहर निकाली गई है जो अपनी शाखाओं द्वारा निश्चित रूप से १३ लाख एकड़ भूमि को सींचेगी।

गोदावरी के डेल्टा में सिंचाई

गोदावरी एक विशाल नदी है। उसमें लगभग १,१५,००० वर्गमील का पानी सिमिट कर आता है और वर्षा के दिनों में प्रति-सेकंड १५ लाख घन फीट तक पानी देती है। गोदावरी का डेल्टा प्रारम्भ में दुर्भिक्ष-पीड़ित देश था; किन्तु उस पर बाँध बनाकर नहरें निकालने से अब वह धान उत्पन्न करने वाला उपजाऊ प्रदेश बन गया है। इन नहरों की लम्बाई ५०० मील और इनकी शाखाओं की लम्बाई २००० मील है। इस नहर के द्वारा उसमें लगी हुई पूंजी पर २६ प्रतिशत लाभ होता है। इन नहरों से दस लाख एकड़ भूमि सींची जाती है।

दक्षिण भारत की नहरें

कृष्णा के डेल्टा में सिंचाई

कृष्णा के डेल्टा का प्रदेश भी दुर्भिक्ष-पीड़ित था। अस्तु, बैजवाड़ा के

समीप एक बाँध बना कर नहर निकाली गई है, जिससे इस प्रदेश में सिंचाई होती है। यही नहीं, नहरों द्वारा गोदावरी और कृष्णा के डेल्टे मिला दिए गए हैं और उनमें नौका-संचालन होता है।

कृष्णा के डेल्टा में डिवी एक द्वीप है जिसका क्षेत्रफल एक लाख एकड़ से अधिक है। उस द्वीप की मिट्टी धान की खेती के लिए उपयुक्त थी, किन्तु सिंचाई का अभाव था। अस्तु, अधिकारियों ने ६१,०६३ घोड़े की शक्ति वाले इंजन लगा कर कृष्णा के पानी को पम्प करके नहरों में दिया। ये नहरें जो शाखाओं सहित १३० मील लम्बी हैं, इस द्वीप को सींचती हैं और उस पर धान की लहलहाती खेती होती है।

पैरियर नहर योजना

ऊपर लिखी हुई नहरें अभी थोड़ा समय हुआ बनी हैं। पैरियर प्रोजेक्ट दक्षिण में सबसे पुरानी नहर है। पैरियर नदी कारडेमम पहाड़ियों से निकल कर अरब सागर में गिरती थी, परन्तु नदी का पश्चिमी तट पर कोई उपयोग नहीं था क्योंकि उधर वर्षा बहुत होती है। इसके विपरीत कारडेमम पहाड़ियों से पूर्व की ओर तिनेवली और मदुरा के नीचे मैदान पानी के बिना सूखे प्रदेश थे क्योंकि वहाँ वर्षा बहुत कम होती है। इन सूखे जिलों को पानी देने के लिए जहाँ नदी पहाड़ियों में से निकलती है वहाँ पश्चिम की ओर एक १७५ फीट ऊँचा बाँध बना कर इस नदी को एक झील में परिणत कर दिया गया है। फिर इस झील का पानी सवा मील लम्बी पहाड़ी में से सुरंग खोदकर पूर्व की ओर ले जाकर वेगई नदी में डाल दिया गया है। वेगई नदी से नहरें निकाल कर तिनेवली और मदुरा जिलों की १,३३,००० एकड़ भूमि सींची जाती है।

मैसूर

कृष्णराजा सागर बाँध—कृष्णराजा सागर बाँध से जल-विद्युत् भी उत्पन्न की जाती है और सिंचाई भी की जाती है। पहले इस प्रदेश में दुर्भिक्ष

पड़ जाता था किन्तु नहर बन जाने से १,२०,००० एकड़ भूमि की सिंचाई की जाती है। मुख्य नहर को एरविन नहर कहते हैं। इस नहर के बन जाने के कारण यहाँ गन्ना बहुतायत से उत्पन्न होने लगा है और मांडया में बड़ी शक्कर की मिल स्थापित हो गई है।

बिहार

सोन नहर—सोन नदी पर डेहरी के समीप एक बाँध बनाकर एक नहर निकाली गई है और उससे शाहाबाद, गया और पटना जिलों में सिंचाई होती है। इस बाँध से दो मुख्य नहरें—(१) मुख्य पश्चिमी नहर; (२) मुख्य पूर्वी नहर निकाली गई हैं।

त्रिवेणी नहर—यह नहर गंडक नदी से निकाली गई है और उत्तरी बिहार के चम्पारन जिले की भूमि को सींचती है।

बिहार में भी प्रादेशिक सरकार ने नल-कूप को खोदने की योजना को स्वीकार कर लिया है और थोड़े नल-कूप खोदे भी गए हैं। अभी शाहाबाद जिले में बिजली से चलने वाले नल-कूप खोदे जा रहे हैं।

मध्य प्रदेश

मध्य प्रदेश में भी पहले दुर्भिक्ष का बहुत अधिक भय रहता था। इस को मिटाने के लिए मध्य प्रदेश में नहरें बनाने का आयोजन हुआ और नीचे लिखी नहरें निकाली गईं :—

महानदी नहर—इस नहर से रायपुर जिले में सिंचाई होती है। रुदर के निकट महानदी पर एक बाँध बनाया गया है। इसके अतिरिक्त महानदी की एक सहायक नदी पर भी एक बाँध मरामसिल्ली के निकट बनाया गया है। इन बाँधों से नहरें निकाल कर लगभग तीन लाख एकड़ भूमि सींची गई है।

वेनगंगा नहर—इस नहर से बालाघाट और भंडारा जिलों में सिंचाई होती है। वेनगंगा पर बाँध बनाकर उससे नहर निकाली गई है। इस नहर से ९१,५०० एकड़ भूमि की सिंचाई होती है।

तन्दुला नहर—यह नहर रायपुर तथा द्रुग जिलों के कुछ भागों को सींचती है। जहाँ तन्दुला और सूखी नदियाँ मिलती हैं, वहाँ एक-दो बाँध बनाये गए हैं जिनमें ६ अरब फीट पानी रहता है जिससे सिंचाई होती है।

बिलासपुर जिले का खारुङ्ग तालाब

खारुंग नदी पर एक बहुत बड़ा बाँध बनाया गया है। इस बाँध से दो नहरें निकाली गई हैं जो ६५,००० एकड़ भूमि को सींचती हैं।

बम्बई

इसके अतिरिक्त बम्बई प्रदेश में दो नये बाँध और बनाये गए हैं जिनसे सिंचाई की जाती है—एक मंदरदरा बाँध, दूसरा लायड बाँध। ये दोनों बाँध ऊँचे पर बनाये गए हैं। मंदरदरा बाँध प्रवा नहर को और लायड बाँध नीरा नहर को पानी देता है। जिस भूमि को प्रवा नहर पानी देती है, वह पहले बंजर पड़ी हुई थी, किन्तु वही अब गन्ना खूब पैदा करती है और भविष्य में वह क्षेत्र बहुत गन्ना उत्पन्न करने लगेगा। नीरा नहरें भी लगभग पौने सात लाख एकड़ भूमि को सींचती हैं।

गोदावरी नहरें—गोदावरी पर वेल झील के पास एक ऊँचा बाँध बनाया गया है जिसके दोनों किनारों से नहरें निकाली गई हैं जिनसे नासिक और अहमदनगर के जिलों में सिंचाई होती है।

बंगाल

पश्चिमी बंगाल में भी कुछ नहरें हैं, किन्तु उनमें से कुछ ही का उपयोग धान की फसल के लिए होता है। पश्चिमी बंगाल में नहरें सोना, रूपनारायन, बेमका तथा अन्य नदियों से निकाली गई हैं। उनका उपयोग अधिकतर माल ढोने, पीने के लिए पानी देने तथा नीचे मैदानों के व्यर्थ पानी को बहा ले जाने के लिए होता है। अभी हाल में दामोदर नहर निकाली गई है जो दो लाख एकड़ भूमि को सींचती है। इसके अतिरिक्त मिदनापुर नहर से भी धान की खेती की सिंचाई होती है।

१९५१ में भारत में पाँच करोड़ पचास लाख एकड़ से कुछ अधिक भूमि पर सिंचाई होती थी जो कुल जोती जाने वाली भूमि की १८ प्रतिशत थी। प्रथम पंचवर्षीय योजना के फलस्वरूप जो बड़ी सिंचाई योजनायें (नहर प्रणाली) तैयार हुईं उनसे ८५ लाख एकड़ और हजारों की संख्या में जो साधारण कुयें, नल-कूप, तालाब, पम्पिंग स्टेशन तथा छोटे-छोटे बाँध बनाये गए। उनसे लगभग ८३ लाख एकड़ नई भूमि की सिंचाई होने लगी। इस प्रकार १९५५-५६ में प्रथम पंचवर्षीय योजना की समाप्ति पर कुल देश में सात करोड़ एकड़ के लगभग भूमि सींची जाने लगी। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत ३ करोड़ एकड़ नई भूमि की सिंचाई की व्यवस्था की गई है। इस प्रकार १९६१ में जब द्वितीय पंचवर्षीय योजना समाप्त होगी तब देश में १० करोड़ एकड़ भूमि पर सिंचाई होने लगेगी जो कुल खेती की भूमि की एक तिहाई से अधिक होगी।

सिंचाई योजनाओं का आर्थिक प्रभाव

ऊपर दिए हुए विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि देश में सिंचाई के
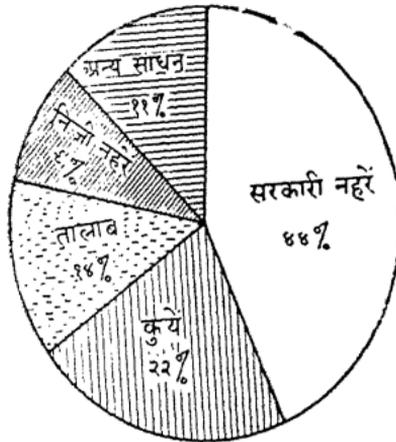
साधनों का बहुत तेजी से विकास किया जा रहा है। सिंचाई की इस व्यवस्था के फलस्वरूप लगभग पाँच करोड़ एकड़ नई भूमि पर दो फसलें उत्पन्न होंगी,

वर्षा के अभाव में आज जो फसलों के नष्ट हो जाने का भय बना रहता है वह दूर हो जावेगा, खाद्यान्न और औद्योगिक कच्चे पदार्थ के उत्पादन में वृद्धि होगी, संक्षेप में खेती का आशातीत विकास होगा।

जहाँ नहरों के बन जाने से सिंचाई की सुविधा हो गई, बहुत से सूखे प्रदेश लहलहाती फसलों से ढँक गये; वहाँ कुछ कठिनाइयाँ भी उठ खड़ी हुईं। एक बड़ी हानि तो यह हुई है कि किसान खेत में जरूरत से ज्यादा पानी दे देता है जिससे खेतों को नुकसान पहुँचता है। उत्तर प्रदेश में तो इसी कारण बहुत सी भूमि पर रेह जम गयी और बेकार हो गई। नहरों की सिंचाई में किसान को नहर-विभाग पर निर्भर रहना पड़ता है। कभी-कभी जब उसकी फसल को पानी की सख्त जरूरत होती है, तब नहर में पानी नहीं आता। साधारणतया यह विश्वास किया जाता है कि नहर के पानी से सींची हुई फसल कुएँ के पानी से सींची हुई फसल से कम होती है। फिर भी नहरों से देश का बहुत बड़ा लाभ हुआ है और खेती का बहुत विस्तार हुआ है।
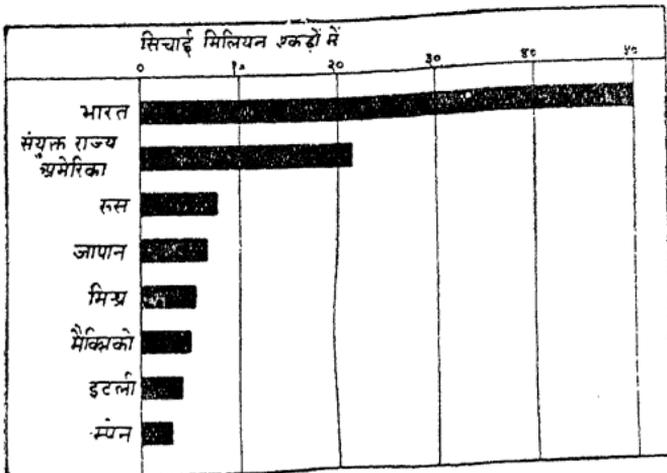
भिन्न-भिन्न देशों में सिंचाई की भूमि

तालाब

मध्य-भारत और दक्षिण में तालाबों और बाँधों से ही अधिकतर सिंचाई

होती है। राजस्थान, मध्यभारत, हैदराबाद, मैसूर, मद्रास, आंध्र और उड़ीसा में बड़ी-बड़ी झीलें सिंचाई के लिए बनवाई गई हैं। सच तो यह है कि दक्षिण राजस्थान और मद्रास, आंध्र, और मध्यभारत झीलों और तालाबों से भरे पड़े हैं। उदयपुर की प्रसिद्ध झील जयसमुद्र (ढेवर झील) जिसका क्षेत्रफल ६० वर्ग मील है सिंचाई के ही लिए बनवाई गई थी। हैदराबाद में निजाम सागर तथा मैसूर में कृष्णराजा सागर नामक झीलें अभी थोड़ा समय हुआ, बनकर तैयार हुई हैं। कृष्णराजा सागर से सिंचाई के अतिरिक्त बिजली तैयार करने में भी सहायता ली जावेगी। मद्रास प्रदेश में पैंतीस हजार से ऊपर छोटे-छोटे तालाब हैं जो तीस लाख एकड़ भूमि को पानी देते हैं। विंध्यप्रदेश और मध्य प्रदेश में भी तालाबों का सिंचाई के लिये उपयोग होता है।

प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत तालाबों के विकास की ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। भिन्न-भिन्न राज्यों की सरकारों ने नये तालाब बनवाने, पुराने तालाबों की मरम्मत करवाने तथा भरे हुये तालाबों को खुदवाने का काम आरम्भ कर दिया है। सैकड़ों नये तालाब बनाये जा चुके हैं और सैकड़ों बन रहे हैं। कई करोड़ रुपया उन पर व्यय किया जा चुका है। इससे इन प्रदेशों में सिंचाई की सुविधा होगी तथा अधिक भूमि पर खेती की जा सकेगी। तालाबों द्वारा एक करोड़ एकड़ से अधिक भूमि की सिंचाई की जाती है।
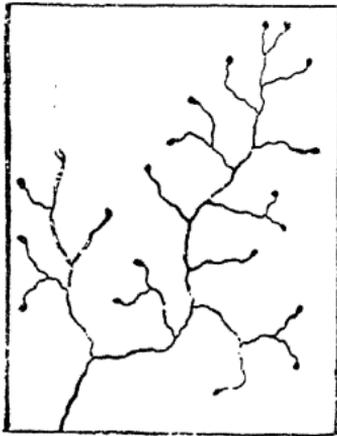
तालाब द्वारा सिंचाई

कुएँ

कुएँ दो प्रकार के होते हैं—कच्चे और पक्के। कच्चे कुएँ जो उत्तर प्रदेश के उन भागों में मिलते हैं जहाँ पानी कम गहराई पर मिल जाता है, दस-बारह रुपये में बन जाते हैं। पक्के कुएँ बनवाने में साधारणतः २५० से ५०० रुपये तक व्यय होता है। और जिन देशों में या तो पानी बहुत गहरा

है अथवा भूमि पथरीली है वहाँ एक कुआँ बनाने में १००० से २००० रुपये तक व्यय होते हैं। कुएँ से सिंचाई करने के लिए या तो रेहट अथवा चरस का उपयोग किया जाता है। रेहट (Persian Wheel) का मालाबार राजस्थान, काठियावाड़, पू० पंजाब और बम्बई में उपयोग होता है। चरस उत्तर प्रदेश आंध्र मद्रास, मध्य प्रदेश और बिहार में प्रचलित है। जहाँ वर्षा का जल इकट्ठा हो जाता है वहाँ ढेंकली का भी उपयोग होती है।

यह तो हम ऊपर ही कह आये हैं कि भारत में पूर्वी पंजाब, उत्तर प्रदेश बिहार, आंध्र और बम्बई में कुओं की प्रधानता है। इनके अतिरिक्त थोड़े बहुत कुएँ तो सभी राज्यों में हैं। इन राज्यों की सरकारों ने किसानों को कुएँ बनाने के लिए आर्थिक सहायता प्रदान की है। सरकार कुआँ बनाने में जितना व्यय होता है उसका आधा देती है। उत्तर प्रदेश, राजस्थान, बिहार इत्यादि राज्यों में ३०० से ५०० रु० तक सहायता दी जाती है। उत्तर प्रदेश में ४००० से अधिक कुएँ बन चुके हैं। वहाँ ४८,००० कुएँ बनाने की योजना है। इसी प्रकार पूर्वी पंजाब, बिहार, राजस्थान, मध्य भारत, आंध्र और बम्बई राज्यों में हजारों कुएँ बन चुके हैं और पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत बहुत बड़ी संख्या में कुएँ खोदे जा रहे हैं।

उत्तर प्रदेश के नल-कूप (Tube Wells)

उत्तर प्रदेश की सरकार ने लगभग डेढ़ करोड़ रुपये व्यय करके १,६५० नल-कूप खुदवाये हैं। अभी बदायूँ, मुजफ्फरनगर, बिजनौर, मेरठ, बुलन्दशहर, अलीगढ़ और मुरादाबाद जिलों में ही वे नल-कूप खोदे गये हैं। शारदा नहर के जल से तैयार की हुई बिजली के द्वारा ये नलकूप चलते हैं। एक नल-कूप लगभग एक हजार एकड़ भूमि को सींच सकता है। जैसे-जैसे और जिलों में बिजली पहुँचती जावेगी वैसे ही वैसे वहाँ भी 'नलकूप खुदते जावेंगे।' भविष्य में नलकूप उत्तर प्रदेश में सिंचाई का एक महत्वपूर्ण साधन बन जावेंगे। अब लगभग १५०० नलकूप बनवाने की और योजना है। उत्तर प्रदेश की सरकार ने प्रतिवर्ष २०० नलकूप खोदने की योजना स्वीकार की है

और शीघ्र ही १५०० नये नलकूप खुद जावेंगे। तब बीस लाख एकड़ से अधिक भूमि की सिंचाई इन कुओं से होने लगेगी।

प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत नलकूप-विकास कार्यक्रम—

प्रदेश	कुयें	लागत व्यय लाख रुपयों में	योजना से लाभ हजार एकड़ों में सिंचाई
उत्तर बिहार	३००	१८३	१२०
दक्षिण बिहार	२०० से अधिक	२३६	१६४
शक्कर के कारखानों का क्षेत्र	३००	१६१	१२०
पंजाब			
डेरा बाबा नानक योजना	५०	१५	२४
अलीवाला योजना	२०	१०	१४
जगाधरी योजना	१५०	१२५	१०२
उत्तर प्रदेश			
पश्चिमी जिले	६००	१८०	२८३
पूर्वी जिले	५०	१७	१३
अन्य पश्चिमी जिले	२००	७१	६४
गोरखपुर इत्यादि	१००	३०	३२
शाहजहाँपुर आदि	४४०	१८०	१८७
अन्य योजनायें	५२६३	२६४६	१५५२
योग	७७०६	३८५७	२७३१

१९४८ में भारत सरकार ने दो अमेरिकन ट्यूब वेल (नल-कूप) विशेषज्ञों को बुला कर यहाँ नल-कूप के विस्तार के सम्बन्ध में सरकार को सलाह देने का कार्य सौंपा। विशेषज्ञों का मत था कि पूर्वी पञ्जाब, उत्तर प्रदेश तथा बिहार नल-कूप द्वारा सिंचाई के लिए विशेष उपयुक्त हैं। भारत सरकार ने विशेषज्ञों की रिपोर्ट के आधार पर ६ हजार नये नल कूप बनवाने का निश्चय किया है। इसमें से लगभग २ हजार नल कूप बन चुके हैं। जैसे-जैसे जल विद्युत् योजनायें कार्यान्वित होती जावेंगी और अधिकाधिक बिजली उपलब्ध होती जावेंगी वैसे ही वैसे अधिकाधिक नलकूप खोदे जा सकेंगे, क्योंकि बिना बिजली के नल-कूपों से सिंचाई नहीं हो सकती। इस समय सरकारी विभाग, तथा विदेशी फर्में नल-कूप तैयार कर रही हैं। प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत इन नल-कूपों की ओर विशेष ध्यान दिया गया है।

भारत सरकार ने १९४८ में एक केन्द्रीय भूगर्भ जल संगठन स्थापित किया है। जो भूगर्भ-जल का उपयोग किस प्रकार किया जाये इस सम्बन्ध में खोज करता है।

आंध्र तथा मद्रास में इस समय लगभग ६ हजार बिजली से चलने वाले पम्प सिंचाई का काम कर रहे हैं। इसी प्रकार सूखे मौसम में सिंचाई करने के लिए बिहार तथा बम्बई में बिजली द्वारा चलने वाले पम्प लगाए गए हैं।

सिंचाई की नवीन योजनाएँ—स्वतन्त्र भारत में केन्द्रीय तथा प्रादेशिक सरकारों ने जो बहुत सी बहुमुखी योजनाएँ अपने हाथ में ली हैं उनसे जल-विद्युत् उत्पन्न होने के साथ-साथ सिंचाई की भी सुविधा हो जाएगी। इन में से मुख्य योजनाओं का विवरण नीचे दिया जाता है :—

दामोदर घाटी योजना—इसके द्वारा ११·४ लाख एकड़ भूमि पर सिंचाई की जावेगी तथा २·७ लाख किलोवाट बिजली उत्पन्न होगी। दामोदर घाटी योजना का विस्तृत वर्णन 'शक्ति के साधन' नामक परिच्छेद में देखिये।

भाखरा-नंगल योजना

पूर्वी पंजाब शुष्क प्रदेश था और उसको हरा-भरा बनाने के लिए यह आवश्यकता थी कि सतलज नदी के पानी का सिंचाई के लिए उपयोग किया

जाए। अतः भारत सरकार ने रूपड़ के समीप नंगल स्थान पर ६१ फीट ऊँचा बाँध बनाया जिससे प्रति सेकिंड १२,५०० घन फीट जल सतलज नदी से ४५०० मील लम्बी नहरों में बहेगा। ये नहरें ३६ लाख एकड़ मरु-भूमि की सिंचाई करेंगी और ४० लाख एकड़ भूमि, जिसको अभी कम जल मिलता है, अधिक जल देंगी। इस प्रकार कुल मिलाकर यह नहरें पौन करोड़ भूमि को लाभान्वित करेंगी।

परन्तु यह ४५०० मील लम्बी नहरें केवल वर्षा के दिनों में ही उपयोगी हो सकती थीं क्योंकि सतलज में अक्टूबर से जून तक बहुत कम जल रहता है। अतः सरकार ने भाखरा स्थान पर (नङ्गल से ८ मील दूर) एक बाँध बनाकर एक झील—जिसका क्षेत्रफल ६४ वर्ग मील है—का निर्माण किया। इस विशाल बाँध के द्वारा वर्षा के दिनों में सतलज का ५७ लाख एकड़ फीट अतिरिक्त जल रोक लिया जावेगा और शुष्क महीनों में यह जल उन नहरों को दिया जावेगा। भाखरा का बाँध ६८० फीट ऊँचा और १७०० फीट लम्बा है।

भाखरा नंगल योजना के बनाने का व्यय लगभग १ अरब ५० करोड़ रुपये हैं। इस योजना से १ करोड़ भूमि की सिंचाई होने के अतिरिक्त ४ लाख किलोवाट जल-विद्युत् तैयार होगी। इस क्षेत्र में २५ लाख शरणार्थियों को बसाया जाएगा। इस योजना के फलस्वरूप ११ लाख टन खाद्यान्न, ५ लाख टन शक्कर, १५ लाख टन पशुओं के लिए चारा, एक लाख टन तिलहन और दालें और आठ लाख गाँठ कपास अधिक उत्पन्न होगी। इस योजना से उत्पन्न होने वाली बिजली १२८ कस्बों तथा अनेक गाँवों को आलोकित करेगी।

भाखरा नंगल की नहरों से पूर्वी पंजाब, पैप्सू और राजस्थान के शुष्क प्रदेशों में सिंचाई की जावेगी और वहाँ शीघ्र ही लहलहाते खेत नजर आवेंगे। हर्ष की बात है कि भाखरा नंगल नहर सन् १९५४ में बन कर तैयार हो गई और नेहरू जी द्वारा उसका उद्घाटन हो गया तथा दूसरी नहर सन् १९५६ में पंत जी द्वारा उद्घाटित की गई है।

रिहंड बाँध—यह उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर जिले में पिपरिया गाँव में रिहंड नदी पर बनाया जा रहा है। इसके द्वारा चालीस लाख एकड़ भूमि सींची जाएगी तथा २ लाख किलोवाट बिजली उत्पन्न होगी। इससे उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों तथा बिहार में सिंचाई होगी।

गोदावरी योजना—इसके द्वारा दक्षिण में २५ लाख एकड़ भूमि पर सिंचाई होगी।

तुंगभद्रा योजना—इसके द्वारा दक्षिण में सात लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होगी। यह सन् १९५४ में बन कर तैयार हो गई। इससे आंध्र और हैदराबाद में सिंचाई होगी।

हीराकुंड बाँध की योजना—इसके द्वारा उड़ीसा में अट्ठारह लाख एकड़ से अधिक भूमि सींची जा सकेगी।

कोसी योजना—बिहार की कोसी योजना भी देश के बहुउद्देशीय योजनाओं में प्रमुख है। यह सिंचाई, जल-विद्युत्, मिट्टी के कटाव को रोकने, नौकानयन के लिये, बाढ़ों को रोकने के लिए, मलेरिया को दूर करने के लिये, मछलियों को पकड़ने के लिये तथा मनोरंजन के लिये बनाई जा रही है। इस योजना के अंतर्गत नैपाल में एक ७५० फीट ऊँचा बाँध चतरा घाटी में बनाया जायगा जिससे एक करोड़ दश लाख क्यूबिक फीट पानी रोका जा सकेगा।

कोसी नदी पर दो बाँध होंगे। पहला बाँध नैपाल में होगा। उससे दो नहरें निकाली जावेंगी जिनसे नैपाल में दस लाख एकड़ भूमि की सिंचाई हो सकेगी। दूसरा बाँध नैपाल-बिहार सीमा पर बनाया जावेगा। इस बाँध से तीन बड़ी नहरें निकाली जावेंगी जो बिहार के पूर्निया, दरभंगा और मुजफ्फरपुर जिलों में २० लाख एकड़ भूमि सींचेंगी। इससे १८ लाख किलोवाट जल-विद्युत् उत्पन्न होगी। इसके बनाने में लगभग एक अरब रुपया व्यय होगा।

नायर बाँध—उत्तर प्रदेश में गंगा की सहायक नदी नायर पर ६०० फीट ऊँचा एक बाँध बनाया जा रहा है। इस बाँध से १४ लाख एकड़ घन

फुट पानी एकत्रित करके गङ्गा की नहरों को पानी दिया जावेगा जिससे चार लाख एकड़ भूमि की सिंचाई और बढ़ जावेगी।

रामगंगा बाँध—उत्तर प्रदेश में रामगङ्गा नदी पर एक ऊँचा बाँध बनाकर पानी इकट्ठा किया जावेगा और यह पानी निचली गङ्गा नहर में डाल दिया जावेगा।

उत्तर प्रदेश के अन्य बाँध

(१) उत्तर प्रदेश में झाँसी जिले में शाजाद नदी पर ललितपुर बाँध बन कर तैयार हो गया है जिससे हजारो एकड़ भूमि की सिंचाई होती है।

(२) मिर्जापुर में कर्मनासा नदी पर नगवा बाँध बनाया गया है जिससे ६७ हजार एकड़ भूमि की सिंचाई होगी तथा बिजनौर और गढ़वाल जिलों में कोथरी नदी पर कोथरी बाँध बनाने की योजना है जिससे ५० हजार एकड़ भूमि सींची जावेगी।

(३) इनके अतिरिक्त मिर्जापुर जिले में अहरौरा बाँध जनवरी १९५५ में बनकर तैयार हुआ है जो ५० लाख रुपये की लागत का है और जिससे १२५ वर्गमील भूमि लाभान्वित होगी। यह मिट्टी का कच्चा बाँध है।

(४) बाँदा और हमीरपुर के पहाड़ी प्रदेश में सपरार, कबराल, रंगावन, और बरौंधा के बाँध बन कर तैयार हो गये हैं जिनसे हजारों एकड़ भूमि की सिंचाई हो रही है।

(५) इसी क्षेत्र में अर्जुन, सिरसी, चन्द्रप्रभा, और नौगढ़ के बाँध १९५५ तक बन कर तैयार हो जावेंगे।

जवाई बाँध—राजस्थान में जोधपुर डिवीजन में जवाई बाँध लगभग बनकर तैयार है। उससे जोधपुर की मरुस्थली में दस हजार एकड़ भूमि की सिंचाई होने लगी है और भविष्य में इससे भी अधिक भूमि सींची जावेगी।

भारत में मुख्य नहरों की तालिका

राज्य	नहर का नाम	जिस वर्ष में पूरी हुई	लाख रुपयों में व्यय	सिंचाई का क्षेत्रफल हजार एकड़ में
बिहार	सोन नहर	१८७५	२,६८	६५५
	त्रिबेनी नहर	१६१४	८२	११४
बम्बई	नीरा-बायें तट की नहर	१६०६	१४८	६०
	गोदावरी की नहरें	१६१६	१०७	६३
	नीरा-दाहिने तट की नहर	१६३८	४१२	८६
मध्य प्रदेश	तंदुला की नहरें	१६२५	१२०	१५८
	महानदी की नहरें	१६२७	१५६	१६६
मद्रास	कावेरी डेल्टा की नहरें	१८८६	८७	१०७०
	पेरियार नहर प्रणाली	१८६७	१०८	२०२
	कावेरी मैटूर योजना	१६३४	६४६	२३१
	निचला कैलेसन बाँध	१६०३	३०	१२३
	गोदावरी डेल्टा नहर-प्रणाली	१८६०	२१०	१२२६
	करनूल कुढ़ापा नहर-	×	२३४	८८
	कृष्णा डेल्टा नहर प्रणाली	१८६८	२२७	१००२
आंध्र	कृष्णा की पूर्वी तट की नहरें	१६१३	५६	१००
	पेनार नदी की नहरें	१८६४	७१	१७८

राज्य	नहर का नाम	जिस वर्ष में पूरी हुई	लाख रुपयों में व्यय	सिंचाई का क्षेत्रफल हजार एकड़ में
उड़ीसा	उड़ीसा नहर	१८९५	२७२	२३३
पूर्वी पञ्जाब	पश्चिमी यमुना नहर	१८२०	२०४	१०१८
	अपर बारी दोआब नहर	१८७९	×	७८३
	सरहिंद नहर	१८८४	२६७	२३१२
	पूर्वी नहर	१९२८	११४	१९०
उत्तर प्रदेश	पूर्वी यमुना नहर	१८३१	६६	४४६
	गंगा नहर	१८५६	४६६	१६२०
	आगरा नहर	१८७५	१२६	३४३
	लोअर गङ्गा नहर	१८८०	४६७	१२५१
	बेतवा नहर	१८९३	१२४	२२१
	केन नहर	१९०९	६७	१४०
	शारदा नहर	१९३०	११५७	१२९७
	ट्यूब वेल	×	४४९	९३६
प० बंगाल	दामोदर नहर	×	१२८	१८४
	मिदनापुर नहर	×	८५	७४
हैदराबाद	निजाम सागर नहर	१९४०	४७२	२७५
मैसूर	कृष्णराजा सागर की नहरें	१९३१	२६०	९२

अभ्यास के लिये प्रश्न

१—भारत में वर्षा की विशेषताएँ क्या हैं ? और उनके कारण कौन सी नई समस्या पैदा होती है ?

२—भारत में सिंचाई की इतनी अधिक आवश्यकता क्यों पड़ती है ?

३—भारत में सिंचाई के मुख्य साधन कौन-कौन से हैं और वे कहाँ-कहाँ पाए जाते हैं? (१९५३)

४—उत्तर-पश्चिम में नहरें क्यों सिंचाई के मुख्य आधार हैं?

५—दक्षिण भारत में तालाब ही सबसे उपयुक्त सिंचाई का साधन क्यों हैं?

६—सिंचाई के लिए किन-किन प्रदेशों में कुआँ अधिक महत्वपूर्ण हैं? और क्यों?

७—पूर्वी पंजाब की नहरों का वहाँ के उद्योग-धन्धों, खेती-बारी और किसानों पर क्या प्रभाव पड़ा?

८—उत्तर प्रदेश में ट्यूब-वेल से कहाँ-कहाँ सिंचाई होती है और उनसे भविष्य में लाभ होने की क्या आशा है? (१९५०)

९—भारत में सिंचाई की जो नई योजनाएँ इस समय चल रही हैं उनका संक्षिप्त विवरण दीजिए।

१०—उत्तर प्रदेश के भिन्न-भिन्न सिंचाई के साधनों का वर्णन कीजिए। उनकी कहाँ तक उन्नति हो सकती है? एक अच्छे सिंचाई के साधन से किसान को क्या लाभ हैं? (१९४५)

११—उत्तर प्रदेश में कौन-कौन सी नहरें हैं? उनके नाम तथा विवरण दीजिए।

१२—पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत जिन सिंचाई की योजनाओं को कार्यान्वित किया जा रहा उनके पूरा हो जाने पर खेती पर उनका क्या प्रभाव पड़ेगा?

१३—दामोदर घाटी, भाखरा नांगल, हीराकुण्ड, योजनाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।

चौथा अध्याय

मुख्य फसलें

भारतीय भूमि का विभाजन

(लाख एकड़ों में)

१—कुल क्षेत्रफल	८१२८
२—वन प्रदेश	९३४
३—क्षेत्रफल जो खेती के लिए उपलब्ध नहीं है	९९६
४—वह भूमि जिस पर खेती नहीं होती परन्तु जिसे खेती के योग्य बनाया जा सकता है	१०२७
५—परती भूमि	५९४
६—वह भूमि जिस पर खेती होती है	२९८४
७—जिस भूमि पर दो फसलें होती हैं	३५९
८—सींची जाने वाली भूमि	४७९
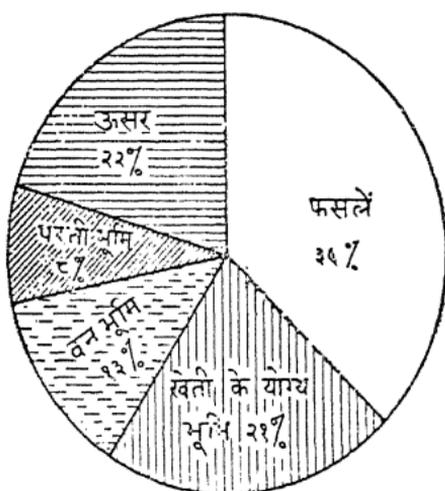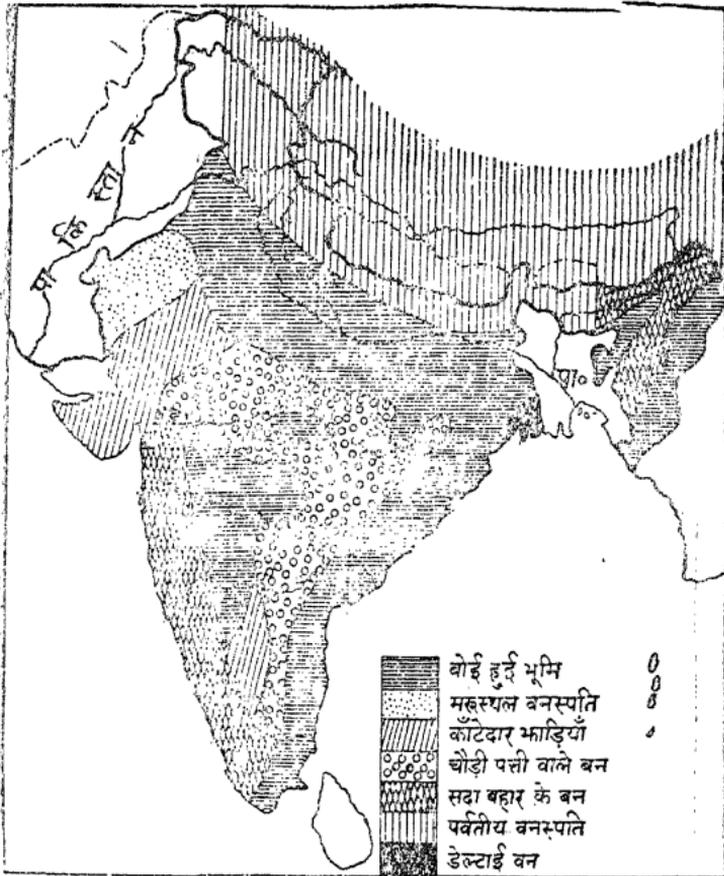
भारत में भूमि का विभाजन

भारतीय भूमि का विभाजन

भारत में नीचे लिखी मुख्य फसलें पैदा की जाती हैं :—

गेहूँ – अनाजों में गेहूँ सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। मनुष्य की जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग गेहूँ ही खाता है और गेहूँ अत्यन्त प्राचीन काल से उत्पन्न किया जाता है। यही कारण है कि गेहूँ को बहुत प्रकार की जलवायु में उत्पन्न करने का प्रयत्न किया गया है।

गेहूँ मटियार भूमि में खूब उत्पन्न होता है, परन्तु अधिक कठोर भूमि पौधे के लिए हानिकारक सिद्ध होती है। गेहूँ के लिये नरम मटियार भूमि ही सबसे उत्तम मानी जाती है। इस अनाज के बोने के समय सर्दी और नमी का होना आवश्यक है, परन्तु फसल पकने के समय तेज धूप उतनी ही आवश्यक है। यदि पकते समय गर्मी न पड़े, अथवा वायु में किसी कारण से भी नमी आ जावे तो गेहूँ को हानि पहुँच जाती है। यह अनाज उन देशों में भी उत्पन्न हो सकता है जहाँ शीत अधिक पड़ती है, किन्तु पकने के समय गर्मी
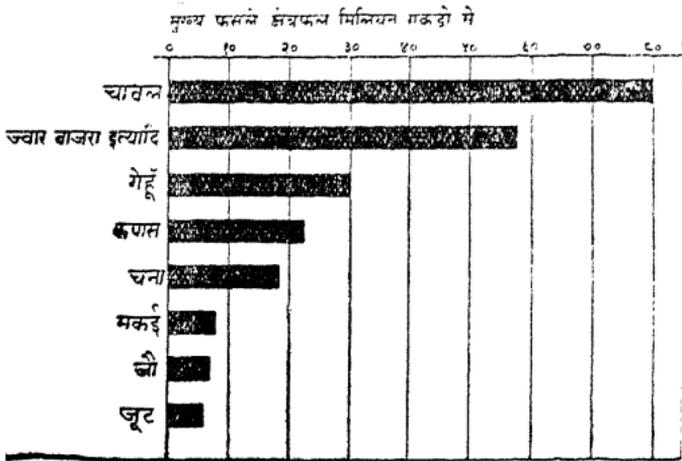
भारत की मुख्य फसलें

और सूखी हवा आवश्यक है। बीज बोने के समय अथवा जब पौधा छोटा हो, साधारण वर्षा लाभदायक है, परन्तु फसल काटने के समय वर्षा होना अत्यन्त हानिकारक है।

भारत में गेहूँ, रबी की मुख्य फसल है। देश का कोई ऐसा भाग नहीं है जिसमें यह थोड़ा-बहुत पैदा न होता हो, किन्तु पूर्वी पञ्जाब, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश तथा मध्य भारत में इसकी पैदावार विशेष रूप से होती है।

नवम्बर के मध्य में गेहूँ बोया जाता है। उसकी तीन या चार बार सिंचाई होती है और अप्रैल तथा मई में जब अनाज खूब पक जाता है, फसल काट ली जाती है।

भारत में दो तरह का गेहूँ होता है—एक कड़ा और दूसरा नरम। कड़ा गेहूँ सूजी बनाने के और नरम आटा बनाने के काम आता है। भिन्न-भिन्न प्रदेशों में भिन्न-भिन्न जाति का गेहूँ उत्पन्न किया जाता है, किन्तु अब तो पूर्वी
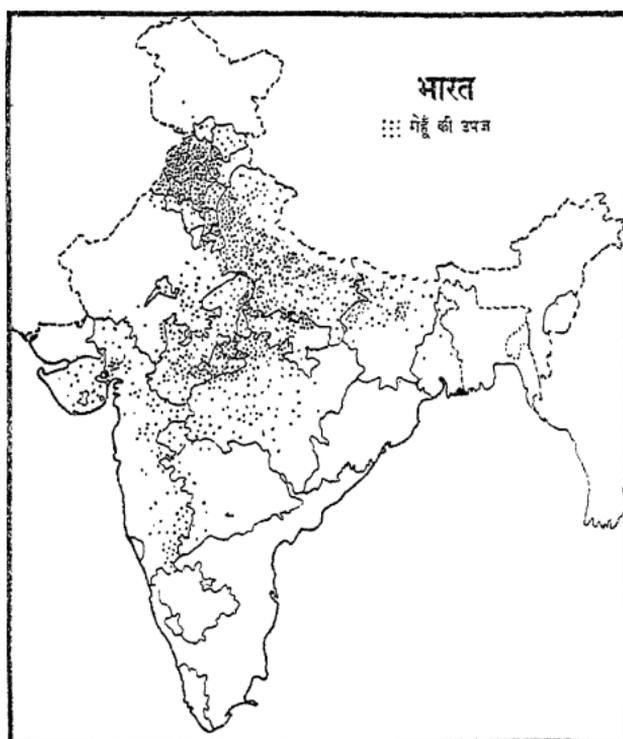
भारत की उपजें

पञ्जाब, उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश में पूसा रिसर्च इंस्टिट्यूट द्वारा उत्पन्न किये गये अच्छे बीजों का खूब प्रचार हो गया है और किसान अधिकतर उत्तम बीज बोते हैं।

भारत में लगभग दो करोड़ ४० लाख एकड़ भूमि पर गेहूँ की खेती होती है और लगभग ८५ लाख टन गेहूँ उत्पन्न होता है। गेहूँ की खेती भिन्न-भिन्न प्रदेशों में नीचे लिखे अनुसार है :—

		क्षेत्रफल	
पूर्वी पंजाब	...	३४,४७,०००	एकड़
उत्तर प्रदेश	...	७७,५०,०००	,,
मध्य प्रदेश	...	१६,३१,०००	,,
बम्बई	...	२०,३३,०००	,,
बिहार	...	११,६०,०००	,,
मध्य भारत	...	१२,६६,०००	,,
राजस्थान	...	१४,१८,०००	,,
हैदराबाद	...	२,००,०००	,,

भारत में गेहूँ का आटा बनाने का मुख्यतः ग्रामीण धन्धा है। गाँव की स्त्रियाँ प्रतिदिन (यदि वे गेहूँ का आटा खा सकती हैं) हाथ की चक्की से आटा पीस लेती हैं। बड़े-बड़े व्यापारिक तथा औद्योगिक केन्द्रों में उदाहरण के लिए इलाहाबाद, अम्बाला, देहली, कानपुर तथा चन्दौसी इत्यादि में अवश्य बड़ी-बड़ी आटा पीसने की मिलें हैं परन्तु आयल इंजन तथा बिजली से चलने वाली चक्कियाँ शहर और कस्बों में बहुत हैं।

चावल

चावल उष्ण कटिबन्ध की पैदावार है। एशिया के पूर्वी देशों में जहाँ मानसून से वर्षा होती है, यह अत्यधिक उत्पन्न होता है। संसार में चावल पर निर्वाह करने वालों की संख्या सब से अधिक है। एशिया के पूर्वी देशों का तो यह मुख्य भोजन ही है।

चावल की फसल के लिये उर्वरा भूमि आवश्यक है। यही कारण है कि चावल अधिकतर नदियों के डेल्टों तथा उनकी घाटियों और मैदानों में उत्पन्न किया जाता है क्योंकि नदियाँ प्रतिवर्ष नई मिट्टी लाकर उन खेतों में

जमा कर देती हैं जिससे खेतों की उपज बढ़ जाती है। अच्छी भूमि के साथ-साथ चावल के लिए पानी और गरमी की खूब आवश्यकता होती है। यदि
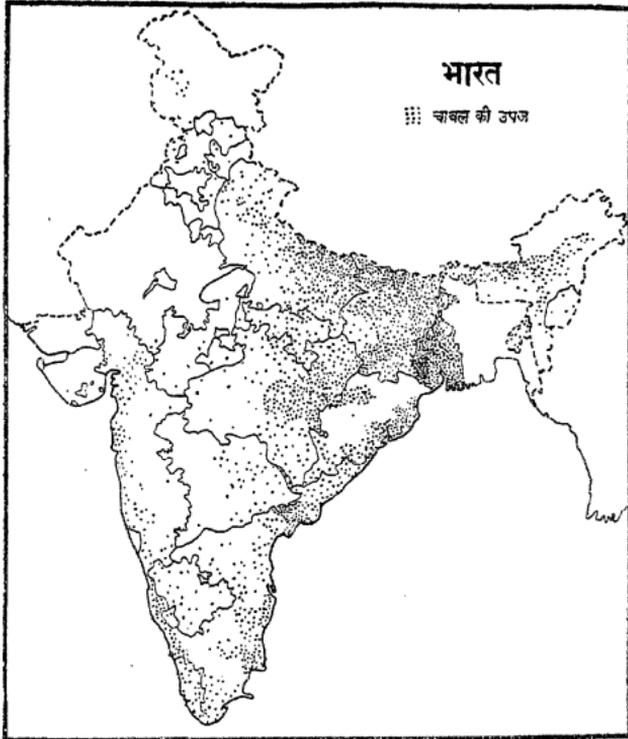
भारत की उपजें

चावल के पौधे आरम्भ में पानी में डूबे रहें तो पैदावार अच्छी होती है। जिन प्रदेशों में वर्षा ६० इञ्च के लगभग और तापक्रम ८० फै० तक रहता है वे प्रदेश चावल के खेती के योग्य हैं। एक ही खेत से एक वर्ष में चावल की दो या तीन फसलें तक पैदा की जा सकती हैं। चावल की खेती दो प्रकार से होती है - एक बीज बोकर और दूसरी पौधे लगाकर। छोटी क्यारियों में धान बो दिया जाता है और जब पौधा कुछ बड़ा हो जाता है तो उसे जड़ सहित उखाड़ कर खेत में रोप देते हैं। चावल पहाड़ों पर भी उत्पन्न हो सकता है, किन्तु गरमी और वर्षा नितान्त आवश्यक है।

चावल उत्पन्न करने वाले प्रदेश बहुधा घने आबाद हैं। क्योंकि चावल की पैदावार प्रति एकड़ और अनाजों से अधिक होती है। चीन तथा अन्य पूर्वी देशों में असंख्य जनसंख्या केवल चावल और कढ़ी पर ही निर्वाह करती है। किन्तु चावल गेहूँ की भाँति पुष्टिकारक नहीं है।

भूसी सहित चावल धान कहलाता है। धान को चावल बनाने में बहुत परिश्रम पड़ता है। गाँव में किसान हाथ से ही कूटकर धान से चावल बना लेते हैं किन्तु बंगाल, आसाम तथा बर्मा में धान कूटने और उन पर पालिश करने के लिये बहुत-सी मिलें खुल गई हैं। वैज्ञानिकों का कहना है कि हाथ का कुटा हुआ चावल पालिश किए हुए मिल के चावल से अधिक पौष्टिक होता है। किन्तु शहरों में अधिकतर पालिश किया हुआ चावल ही खाया जाता है।

भारत के पूर्वी प्रदेशों में चावल अधिक उत्पन्न होता है तथा वहाँ के निवासियों का वह मुख्य भोजन है। पश्चिमी बंगाल, आसाम, मद्रास, आंध्र, तथा पश्चिमी घाट चावल अधिक उत्पन्न करते हैं। यों तो उत्तर प्रदेश, बिहार, बम्बई, पञ्जाब, मध्य प्रदेश तथा अन्य प्रदेशों में भी थोड़ा चावल उत्पन्न होता है किन्तु वहाँ की यह मुख्य पैदावार नहीं है।

भारत के पूर्वी प्रदेशों में तथा आंध्र और मद्रास में चावल की तीन फसलें होती हैं जो क्रमशः पतझड़, शीतकाल तथा गरमी में तैयार होती हैं। मध्य भारत, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश इत्यादि में केवल एक फसल होती है।

भारत के भिन्न-भिन्न प्रदेशों में चावल की उत्पत्ति नीचे लिखे अनुसार है :—

		क्षेत्रफल	
पश्चिमी बङ्गाल	...	७९,६३,०००	एकड़
बिहार	...	९७,३८,०००	”
आंध्र तथा मद्रास	...	२,०२,०३,०००	”
मध्य प्रदेश	...	६०,७१,०००	”
आसाम	...	४०,७८,०००	”
उड़ीसा	...	५१,५६,०००	”
उत्तर प्रदेश	...	७०,४५,०००	”

भारत में चावल सात करोड़ पचास लाख एकड़ भूमि पर उत्पन्न होता है और २७० लाख टन की उत्पत्ति होती है।

यद्यपि भारत में इतना अधिक चावल उत्पन्न होता है, परन्तु यह चावल की दृष्टि से स्वावलम्बी नहीं है। इसे प्रतिवर्ष लगभग २५ लाख टन चावल मुख्यतः बर्मा से मँगाना पड़ता है। कुछ चावल थाइलैंड तथा हिन्द चीन से भी आता है। अब प्रथम पंच वर्षीय योजना के फलस्वरूप चावल की उत्पत्ति देश में बढ़ गई है।

जौ

जौ गेहूँ की ही जाति का अनाज है। किन्तु यह और अनाजों से अधिक कठोर होता है। साधारण भूमि पर भी जौ की अच्छी फसल उत्पन्न हो सकती है। जौ गर्मी और सर्दी खूब सहन कर सकता है। जौ की कुछ जातियाँ ऐसी हैं जो उत्तरी ध्रुव के समीप भी उत्पन्न हो सकती हैं और कुछ जातियाँ गरम देशों में भी उत्पन्न होती हैं। वैसे भूमध्य सागर की जलवायु में जौ खूब पैदा होता है। पकने के समय वर्षा जौ के लिए हानिकारक है।

भारत में जौ की खेती अधिकतर पूर्वी पञ्जाब, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश तथा मध्य भारत में होती है। गेहूँ के साथ ही जौ की भी फसल पैदा की जाती है। जौ ग्रामों में निर्धन जनता का मुख्य भोज्य पदार्थ है। यहाँ जौ का उपयोग खाने के लिए ही होता है न कि शराब बनाने में। भारत से बहुत कम जौ ` `` को जाता है। भारत में ७५ लाख एकड़ भूमि पर जौ उत्पन्न होता है। लगभग २२ लाख टन जौ की उत्पत्ति है। उत्तर प्रदेश सबसे अधिक जौ उत्पन्न करता है।

ज्वार

भारत के उन भागों की जहाँ पानी कम बरसता है, यह मुख्य फसल है। किसी प्रदेश में किसानों के लिए ज्वार गेहूँ से अधिक महत्वपूर्ण है। ज्वार की फसल अनाज के अतिरिक्त किसानों के पशुओं को चारा भी देती है। पूर्वी प्रदेशों को छोड़कर ज्वार सभी प्रदेशों में उत्पन्न होती है। ज्वार कमजोर जमीन पर भी पैदा होती है। ज्वार की फसल को अधिक पानी की आवश्यकता नहीं होती। किन्तु रेगिस्तान में यह अच्छी तरह पैदा नहीं हो सकती है। चावल पैदा करने वाले प्रदेशों को छोड़कर अन्य प्रदेशों के निर्धन किसानों का यह भोजन है।
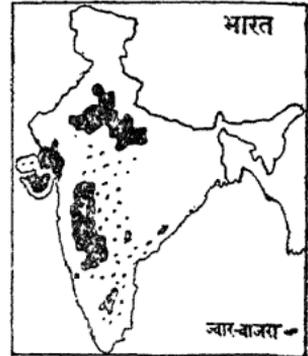
भारत में ४ करोड़ ३५ लाख एकड़ भूमि पर ज्वार उत्पन्न होती है। कुल उत्पत्ति लगभग ७५ लाख टन है। बम्बई, मद्रास, आंध्र, मध्य प्रदेश तथा हैदराबाद में भारत की आधी से अधिक ज्वार उत्पन्न होती है। इनके अतिरिक्त पूर्वी पञ्जाब, राजस्थान, मध्य भारत तथा उत्तर प्रदेश के पश्चिमी जिलों में भी ज्वार उत्पन्न होती है। ज्वार की फसल केवल इसलिए ही महत्वपूर्ण नहीं है क्योंकि यह अधिकतर जनता का मुख्य भोजन है, परन्तु चारे की दृष्टि से भी यह बहुत महत्वपूर्ण है।

बाजरा

भारत के अत्यन्त सूखे प्रदेशों का बाजरा मुख्य आधार है। बाजरा के लिए रेतीली भूमि चाहिये। बाजरे की फसल को सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती। इस कारण पूर्वी पञ्जाब, बम्बई, आंध्र मद्रास, राजस्थान तथा मध्य भारत के लिए यह सर्वथा उपयुक्त है। इन प्रदेशों के अतिरिक्त उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भाग तथा हैदराबाद में भी बाजरा खूब पैदा होता है। भारत

में २ करोड़ ८० लाख एकड़ भूमि पर बाजरा उत्पन्न होता है। कुल उत्पत्ति ४० लाख टन है।

चना

चना रबी की फसल है और गेहूँ, जौ और सरसों के साथ भी बोया जाता है। चने के लिए सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती, किन्तु बोते समय भूमि में नमी होना आवश्यक है। चने के लिए मटियार भूमि आवश्यक है। उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश तथा दक्षिण में यह खूब उत्पन्न होता है। भारत में १ करोड़ ७५ लाख एकड़ भूमि पर इसकी खेती होती है तथा ४० लाख टन उत्पत्ति है।

मकई

मकई की फसल के लिए लम्बी गर्मी तथा कई बार वर्षा आवश्यक है। मकई की अच्छी पैदावार के लिए रेत मिली हुई मटियार भूमि की आवश्यकता होती है। एक साथ अधिक वर्षा मकई के छोटे पौधों को हानि पहुँचाती है परन्तु पौधे के बड़े होने पर अधिक वर्षा से उसे हानि नहीं पहुँचती। संसार में सबसे अधिक मकई उत्पन्न करने वाले संयुक्त राज्य अमेरिका में मकई का उपयोग पशुओं को खिला कर मोटा करने के लिए होता है, क्योंकि वहाँ मांस का धन्धा बहुत उन्नति कर गया है। किन्तु भारत में तो वह निर्धन मनुष्यों का मुख्य भोजन है।

भारत में ८८ लाख एकड़ भूमि पर मकई उत्पन्न होती है तथा लगभग २८ लाख टन अनाज उत्पन्न होता है।

उत्तर प्रदेश, बिहार, पूर्वी पञ्जाब तथा दक्षिण राजस्थान और मालवा में मकई खूब होती है।

दालें

भोज्य पदार्थों में दालों का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। भारत में दाल भोजन का एक आवश्यक अंग है। अरहर, चना, मटर, मसूर, मूँग तथा उर्द मुख्य दालें हैं जो अधिकतर उष्ण कटिबन्ध तथा शीतोष्ण कटिबन्ध में उत्पन्न

होती हैं। दालों को पैदा करने से खेतों की मिट्टी अधिक उपजाऊ हो जाती क्योंकि दालों के पौधे मिट्टी में नत्रजन जमा कर देते हैं।
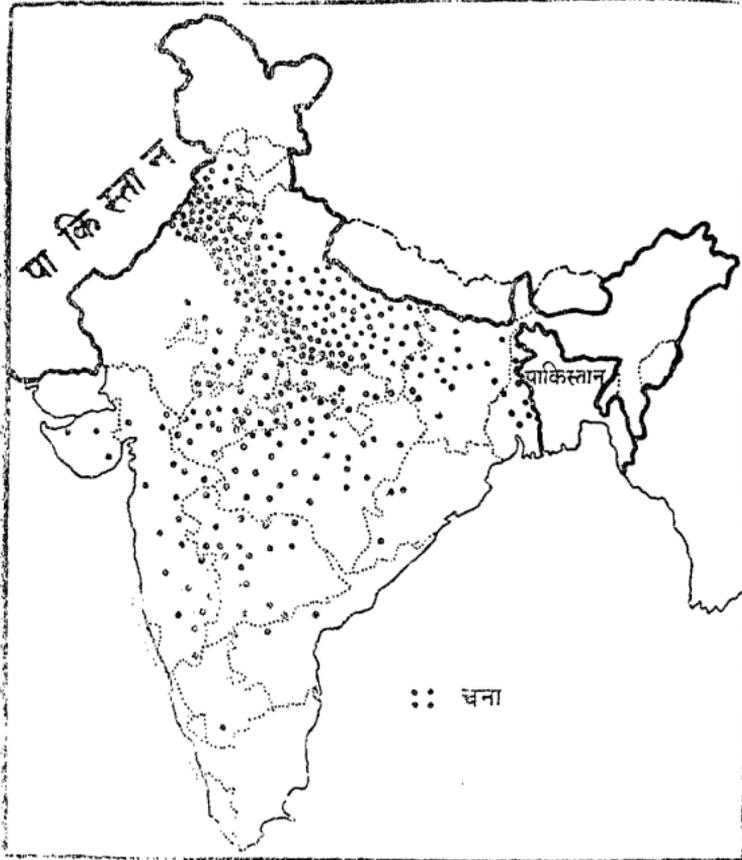
भारत की उपजें

भारत में लगभग पाँच करोड़ एकड़ भूमि पर दालें उत्पन्न होती हैं। लगभग १ करोड़ ८८ लाख एकड़ भूमि पर चालीस लाख टन चना उत्पन्न होता है।

मसूर मुख्यतः मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश तथा आंध्र और मद्रास में उत्पन्न होती है यद्यपि अन्य प्रदेशों में भी इसकी पैदावार होती है। अरहर उत्तर प्रदेश, पूर्वी पंजाब, मध्य प्रदेश में खूब उत्पन्न होती है।

दालों की उत्पत्ति

नाम	क्षेत्रफल (हजार एकड़)	उत्पत्ति (हजार टन)
तूर (अरहर)	५५८२	१८००
उरद	२६३०	३०५
मूँग	२५२०	१८२
मोठ	४२७	३७
मसूर	१०६६	१६१
कुल्थी	२७७१	१८६
मटर	२२४२	६१२
दाल खेसारी	१७७८	२४६
अन्य दालें	६८४३	१३५४

सब्जी और फल

भारत में अधिकतर हिन्दू शाकाहारी हैं और जो लोग मांस खाते भी हैं उन्हें भी इतना कम मांस खाने को मिलता है कि वे यथार्थ में मांसाहारी नहीं कहे जा सकते। जो लोग मांस खा सकते हैं उन्हें भी यह कभी-कभी ही खाने को मिलता है। इस कारण भारत में हरी शाक या सब्जी किसी न किसी रूप में प्रतिदिन खाई जाती है।

सब्जी को उत्पन्न करने के लिए बहुत उर्वरा भूमि, यथेष्ट खाद और जल की आवश्यकता होती है। किन्तु सब्जी के शीघ्र ही खराब हो जाने के कारण शहर तथा समीपवर्ती कस्बों के लिये ही सब्जियाँ उत्पन्न की जाती हैं क्योंकि भारत में शीत भण्डार (Cold Storage) की सुविधायें नहीं हैं और रेलें भी सब्जी को एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजने के लिये कुछ विशेष प्रबन्ध नहीं करतीं। संयुक्त राज्य अमेरिका में सब्जियों, और फलों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक भेजने के लिये प्रतिदिन प्रातःकाल फल और सब्जी की एक्सप्रेस ट्रेनें दौड़ती हैं। यही कारण है कि भारत में सब्जियों की

पैदावार शहरों के आसपास ही होती है। जैसे-जैसे गमनागमन के साधन अधिक उपलब्ध होते जावेंगे वैसे ही वैसे सब्जी का व्यापार बढ़ता जावेगा और जहाँ की मिट्टी और जलवायु सब्जी उत्पन्न करने के उपयुक्त हैं वहाँ इसकी पैदावार बढ़ती जावेगी।

फलों को उत्पन्न करने का धंधा भारत में अभी उन्नत दशा में नहीं है। यदि प्रयत्न किया जावे और फलों की माँग बढ़ जावे तो लगभग सब प्रकार के फल इस देश में उत्पन्न किये जा सकते हैं, क्योंकि यहाँ सब तरह की भूमि मौजूद है। यहाँ गर्म और सर्द जलवायु भी पाई जाती है। यही कारण है कि भारत में जहाँ आम और केला इत्यादि उष्ण कटिबन्ध के फल उत्पन्न होते हैं वहाँ सेब, अंगूर इत्यादि शीतोष्ण कटिबन्ध के भी फल उत्पन्न होते हैं।

भारत में कुछ ऐसे स्थान हैं जहाँ फलों की पैदावार वैज्ञानिक ढंग से बड़ी मात्रा में की जाती है। पंजाब की कूलू और कांगड़ा की घाटियाँ, उत्तर प्रदेश का कुमायूँ पहाड़ी प्रदेश, मध्य प्रदेश तथा आसाम के वे भाग जहाँ नारंगियाँ और संतरे उत्पन्न होते हैं और बम्बई का कोकण प्रदेश जो आम बहुतायत से पैदा करता है, फल उत्पन्न करने में मुख्य हैं। आम तथा बेर देश के बहुत बड़े भाग में पाये जाते हैं और उत्तर प्रदेश, बिहार तथा बंगाल में खूब उत्पन्न होते हैं।

नारंगी और संतरा

नारंगी और संतरे के लिए नवम्बर से अप्रैल तक साधारण सरदी की आवश्यकता होती है। भारत में केवल सिलहट, सिक्कम, देहली और नागपुर तथा मध्य प्रदेश के कुछ अन्य जिले ही ऐसे स्थान हैं जहाँ कि संतरे के बड़े-बड़े बगीचे हैं। भारत में संतरे बहुत बढ़िया नहीं होते। संयुक्त राज्य अमेरिका के बीज रहित संतरे यहाँ उत्पन्न हो सकते हैं, किन्तु अभी तक उस जाति के संतरे उत्पन्न करने का प्रयत्न नहीं किया गया।

केला

केला उष्ण कटिबन्ध का फल है। अफ्रीका और दक्षिणी अमेरिका के कुछ जंगली प्रदेशों में तो केला इतनी बहुतायत से उत्पन्न होता है कि वह
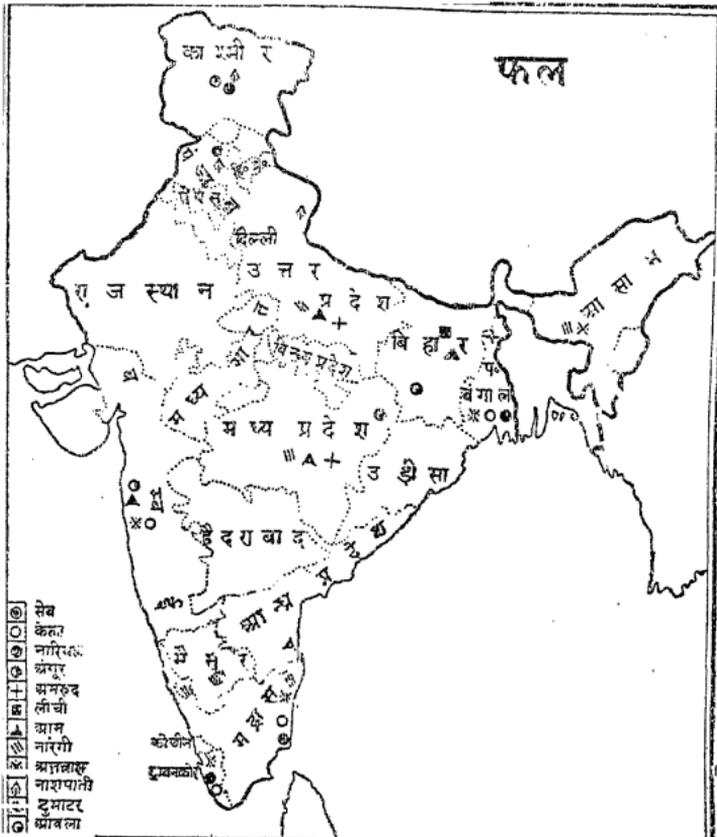
वहाँ का मुख्य भोज्य पदार्थ है। केला अन्य सब फलों से प्रति एकड़ अधिक उत्पन्न होता है। भारत में पश्चिमी बंगाल, आसाम और दक्षिण में केला

बहुतायत से उत्पन्न होता है। केला पौष्टिक होता है; उसको सुखाकर उसका आटा तैयार किया जाता है, परन्तु अभी तक लोग इस आटे को बहुत कम खाते"

सेव, नासपाती और अंगूर

ये फल शीतोष्ण कटिबन्ध की जलवायु में बहुत उत्पन्न होते हैं। सेव का वृक्ष बड़ा होता है और फसल में एक मन से डेढ़ मन तक फल उत्पन्न करता है। अंगूर बहुत स्वादिष्ट फल है। अधिकतर इसका उपयोग शराब बनाने में होता है। अंगूर की खेती के लिए गरमी बहुत जरूरी है। जिन देशों में सितम्बर तक कड़ी गरमी पड़ती है वहाँ अंगूर की पैदावार बहुत अच्छी होती है। अंगूर की खेती सूखी भूमि पर भी हो सकती है क्योंकि अंगूर की जड़ें जमीन के अन्दर दूर तक चली जाती हैं और वहाँ से जल प्राप्त करती हैं। अंगूर के लिये अधिक जल हानिकारक है। वर्षा अधिक होने से अंगूर की पैदावार अधिक नहीं हो सकती। यही कारण है कि भारत में अंगूर अधिक उत्पन्न नहीं होता क्योंकि यहाँ गर्मियों में वर्षा अधिक होती है। सेव और नासपाती कांगड़ा और कुलू की घाटियों तथा काश्मीर में ही उत्पन्न होती हैं। पेशावर तथा चमन के पाकिस्तान में चले जाने के कारण भारत में अंगूर बिलकुल नहीं होता।

आलू

आलू भारत की एक मुख्य सब्जी है। इसकी पैदावार आसाम, बिहार, पश्चिमी बंगाल, उत्तर प्रदेश, पूर्वी पञ्जाब तथा दक्षिण में बहुत होती है। यह शीतकाल में उत्पन्न होता है। आलू के लिये गेहूँ उत्पन्न करने वाली भूमि उपयुक्त है। यदि उसमें कुछ रेत अधिक हो तो और भी अच्छी पैदावार होगी। आलू को सिंचाई की बहुत आवश्यकता होती है। इतनी सिंचाई और किसी भी सब्जी की फसल के लिए जरूरी नहीं है। जर्मनी, आयरलैंड तथा अन्य योरोपियन देशों में आलू मुख्य भोज्य पदार्थ है। यहाँ तक कि यदि वहाँ आलू

की फसल मारी जाती है तो अकाल पड़ जाता है। योरप में आलू का आटा और शराब भी बनाते हैं किन्तु भारत में तो यह केवल सब्जी के रूप में खाया जाता है।

आलू का उपयोग भारत में शाक के रूप में बहुत अधिक होता है। मैदानों में तो यह जाड़े की फसल है परन्तु हिमालय के पर्वतीय प्रदेश में यह गर्मियों में भी खूब उत्पन्न होता है। भारत में आलू ६ लाख एकड़ से अधिक क्षेत्रफल पर उत्पन्न किया जाता है और कुल उत्पत्ति १७ लाख टन है।

भारत में खाद्य पदार्थों की कमी

सन् १९४२ ई० के भारत में साधारण व्यक्ति यह कल्पना भी नहीं कर सकता था कि भारत में खाद्य पदार्थों की कमी है। जब १९४२ ई० में बंगाल का भीषण दुर्भिक्ष पड़ा और उसमें २० से २५ लाख मनुष्य मर गये तो खाद्य पदार्थों की भयङ्कर कमी का देश को अनुभव हुआ। आज तो प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि देश में खाद्य पदार्थों की कमी है। भारत को कभी-कभी संयुक्त राज्य अमेरिका, आस्ट्रेलिया या कनाडा से खाद्यान्न मँगाकर काम चलाया जाता है।

सन् १९५२ ई० के उपरांत खाद्यानों की उत्पत्ति बढ़ी है और अब देश में अनाज की पहले जैसी कमी नहीं है। प्रथम 'पंचवर्षीय योजना' के अन्तर्गत देश में ७६ लाख टन अधिक अनाज उत्पन्न करने का ध्येय निश्चय किया गया था। हर्ष की बात है कि सिंचाई की योजनाओं, खाद के अधिक उत्पादन तथा भूमि-सुधार के उपायों के फलस्वरूप पिछले वर्षों में अनाज की पैदावार बढ़ी है। ऐसा अनुमान है कि अब देश खाद्यान्नों की दृष्टि से स्वावलंबी हो गया है। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में सर्व साधारण को अधिक पौष्टिक भोजन मिले इसकी व्यवस्था की गई है।

खाद्य पदार्थों की कमी के कारण

भारत में खाद्य पदार्थों की कमी के नीचे लिखे मुख्य कारण थे :—

(१) भारत में प्रति वर्ष ३५ या ३६ लाख मनुष्य बढ़ जाते हैं किन्तु

खाद्य पदार्थों की उत्पत्ति उस अनुपात से नहीं बढ़ी, इसी कारण खाद्य पदार्थों की कमी हो गई।

(२) द्वितीय महायुद्ध के फलस्वरूप खेती की पैदावार का मूल्य बहुत ऊँचा हो गया। किन्तु किसान का व्यय (लगान, सिंचाई तथा कर्ज) जो रुपयों में निश्चित था, नहीं बढ़ा। इस कारण किसान कम पैदावार बेंचकर उस खर्च को पूरा कर सकता था। किसान स्वयं पहले से अधिक मात्रा में गेहूँ इत्यादि उत्तम अनाज खाने लगा। इस कारण भी अनाज की कमी बढ़ गई।

(३) भारत में खेती की स्थिति अत्यन्त खराब है, अन्य देशों की तुलना में यहाँ प्रति एकड़ पैदावार बहुत कम होती है।

(४) बर्मा के भारत से पृथक् हो जाने के कारण चावल की कमी हो गई। बर्मा से भारत को प्रतिवर्ष लगभग १५ लाख टन चावल आता था।

(५) भारत के विभाजन के फलस्वरूप खाद्यान्नों के बाहुल्य वाले प्रदेश पाकिस्तान में चले गये और भारत में खाद्यान्नों की और भी कमी हो गई।

(६) भारत में कपास, जूट, तिलहन, गन्ना इत्यादि औद्योगिक कच्चे माल की पैदावार अधिक होने से भी खाद्यान्न की कमी हो गई।

उपाय

खाद्य पदार्थों की कमी को पूरा करने के लिये सरकार नीचे लिखे उपाय कर रही है :—

(१) भारत सरकार ने एक केन्द्रीय ट्रैक्टर विभाग स्थापित किया है जिसमें खेती के यंत्र तथा ट्रैक्टर बहुत बड़ी संख्या में मँगाकर रक्खे गये हैं। इन ट्रैक्टरों की सहायता से उत्तर प्रदेश की तराई में, मध्य भारत, मध्यप्रदेश, राजस्थान तथा अन्य राज्यों में बंजर और परती भूमि को खेती योग्य बनाया जा रहा है।

(२) बड़ी-बड़ी सिंचाई-योजनाओं (दामोदर, भाखरा-नांगल, हीराकुंड इत्यादि) के द्वारा करोड़ों एकड़ अधिक भूमि को सींचने की योजना है। इसके अतिरिक्त नए तालाब और कुएँ खोदकर भी कई करोड़ एकड़ भूमि पर और

सिंचाई होगी। सिंचाई की सुविधा होने से इस भूमि पर दो फसलें उत्पन्न की जा सकेंगी और पैदावार अधिक होगी।

(३) किसानों को अधिक खाद तैयार करके खेतों में देने को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। गड्ढों में खाद बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त बिहार में सिंदरी में खाद का एक बहुत बड़ा कारखाना स्थापित किया गया है जो ३६ करोड़ रुपये की लागत से बना है और प्रतिवर्ष ३० लाख टन खाद तैयार करता है। ऐसे तीन कारखाने और खोलने की योजना है।

(४) अच्छे बीजों का प्रचार किया जा रहा है। खेती के वैज्ञानिक तरीकों के प्रचार का भी प्रयत्न किया जा रहा है।

प्रथम पञ्चवर्षीय योजना की समाप्ति पर देश खाद्यान्न की दृष्टि से स्वावलंबी हो गया है। द्वितीय पञ्चवर्षीय योजना का ध्येय प्रति व्यक्ति १८ औंस खाद्यान्न उत्पन्न करना है।

गन्ना

गन्ना एक प्रकार की घास है जिससे शक्कर तैयार होती है। प्रतिवर्ष फूलने के पहले ही गन्ना काट लिया जाता है परन्तु जड़ छोड़ दी जाती है। उसी जड़ से दूसरे वर्ष भी फसल तैयार हो सकती है। इस प्रकार एक बार गन्ना बोने से वह सात वर्ष तक फसल दे सकता है। परन्तु पेड़ी से तैयार की गई फसल कमजोर होती जाती है। इस कारण दूसरे या तीसरे वर्ष फिर नया गन्ना बोया जाता है। कहीं-कहीं प्रति-वर्ष नई फसल बोई जाती है। बीज की जगह गन्ने के छोटे-छोटे टुकड़े करके खेत में रख दिये जाते हैं।

गन्ने की फसल के लिए गरमी की बहुत आवश्यकता है। लम्बी गर्मियाँ गन्ने की फसल के लिए लाभदायक होती हैं। गन्ने का पौधा ७५° फै० और

८०° फ़ै० गरमी में खूब पनपता है। केवल गरमी ही से फसल अच्छी नहीं हो सकती, इसके लिए जल की भी आवश्यकता बहुत होती है। कम से कम ६० इंच वर्षा तो इसके लिए आवश्यक है। जहाँ वर्षा ६० इंच से कम होती है वहाँ सिंचाई करनी पड़ती।
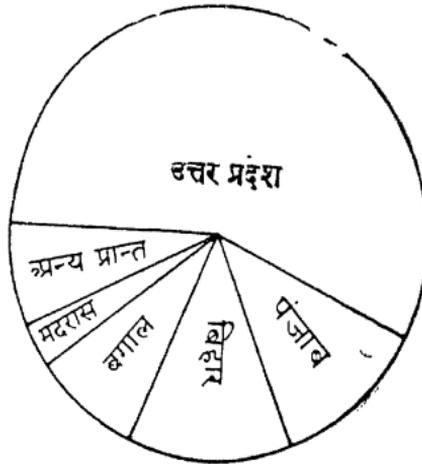
भारत में गन्ने की उपज का प्रादेशिक विभाजन

गन्ना मार्च और अप्रैल में बोया जाता है और फरवरी में काटा जाता है। अब शक्कर की मिलें बहुत खुल जाने से दो प्रकार की फसलें तैयार की जाती हैं। एक तो जल्दी पकने वाला गन्ना जो नवम्बर-दिसम्बर में तैयार हो जाता है; दूसरा जो फरवरी, मार्च और अप्रैल में तैयार होता है। संसार में भारत सबसे अधिक गन्ना उत्पन्न करता है। सन् १६३१ ई० में जब से विदेशों से आने वाली शक्कर पर संरक्षण कर लगाया गया तब से भारत में सैकड़ों शक्कर के कारखाने खुल गए और गन्ने की पैदावार भी बढ़ गई।

भारत में लगभग ४० लाख एकड़ भूमि पर गन्ना उत्पन्न होता है और लगभग ५० लाख टन गन्ने की उत्पत्ति होती है।

भारत केवल गन्ने का ही मूल स्थान नहीं है बल्कि भारत में संसार का सबसे अधिक गन्ना उत्पन्न होता है। यद्यपि थोड़ा बहुत गन्ना सभी प्रदेशों में

उत्पन्न होता है किन्तु गन्ने की पैदावार मुख्यतः उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल, पूर्वी पञ्जाब, बम्बई आंध्र तथा मद्रास में होती है। उत्तर प्रदेश में भारत का आधे से अधिक गन्ना उत्पन्न होता है।

यद्यपि भारत में संसार का सबसे अधिक गन्ना उत्पन्न होता है परन्तु प्रति एकड़ यहाँ उत्पत्ति संसार में सबसे कम होती है। हवाई, जावा तथा क्यूबा द्वीपों में प्रति एकड़ भारत की अपेक्षा ६ से ८ गुने तक गन्ना उत्पन्न होता है। भारत में भी उत्तरी भारत की अपेक्षा दक्षिणी भारत में गन्ने की उत्पत्ति प्रति एकड़ बहुत अधिक है। पहली पञ्चवर्षीय योजना के अन्तर्गत सात लाख टन अधिक गुड़ उत्पन्न करने का ध्येय निश्चित किया गया था, जो पूरा हो गया। द्वितीय पञ्चवर्षीय योजना के समाप्त होने पर १३ लाख टन अधिक गुड़ उत्पन्न होगा।

चाय

चाय एक प्रकार की झाड़ी की सूखी पत्ती है। सम्भवतः इसका मूल निवास स्थान चीन है। चीन में तो चाय का प्रचार बहुत पुराने समय से था किन्तु योरप में इसका प्रवेश अट्ठारहवीं सदी में हुआ। तब से इसकी माँग बराबर बढ़ती जा रही है।

चाय का वृक्ष उष्ण कटिबन्ध में उत्पन्न हो सकता है। इसकी पैदावार के लिये गरमी और जल की बहुत आवश्यकता है। परन्तु यदि जल वृक्ष की जड़ के पास देर तक रहे तो वृक्ष को हानि पहुँच जाती है। इस कारण चाय ढालू पृथ्वी पर ही अच्छी तरह पैदा हो सकती है। पहाड़ी प्रदेश की ढालू भूमि जहाँ वर्षा खूब होती हो चाय की पैदावार के उपयुक्त है। चाय की खेती के लिए कम से कम ४५° फै० तथा अधिक से अधिक ८०° फै० गरमी की आवश्यकता है। अच्छी पैदावार के लिए ६० इञ्च वर्षा ठीक है, परन्तु यदि ढाल

अच्छा हो तो अधिक वर्षा भी लाभदायक हो सकती है। चाय की खेती के लिए केवल जलवायु और भूमि ही महत्वपूर्ण नहीं है, कुलियों की समस्या इनसे भी अधिक महत्वपूर्ण है। कारण यह है कि चाय की खेती में बड़ी संख्या में कुलियों की आवश्यकता होती है। जिन देशों में कुली सस्ते दामों पर नहीं मिल सकते वहाँ जलवायु के अनुकूल होने पर भी चाय की खेती नहीं हो सकती।

चाय की झाड़ी लगभग पाँच वर्षों में चाय उत्पन्न करने के योग्य हो जाती है और तीस वर्ष तक पत्तियाँ देती रहती हैं। झाड़ी की ऊँचाई लगभग आठ फ़ीट होती है। कोहरा और ठंडक पत्तियों को हानि पहुँचाते हैं परन्तु वृक्ष नष्ट नहीं हो सकता है। चाय के लिए वनों को साफ़ करके निकाली हुई भूमि, जिसमें वनस्पति का अधिक अंश मिला हो उपयोगी होती है।

चाय बहुत तरह की होती है। भिन्नता केवल पत्तियों के छाँटने और चाय तैयार करने के ढङ्ग पर निर्भर है। भिन्न-भिन्न जाति की झाड़ी की पत्ती की लम्बाई भिन्न-भिन्न होती है। लुशाई और कछार की पत्ती एक फुट लम्बी होती है और आसाम की केवल ६ इञ्च लम्बी होती है।

वर्ष में पत्तियाँ कई बार तोड़ी जाती हैं। चाय का अच्छा और बुरा होना पत्ती को तोड़ने के समय पर निर्भर है। बरसात के मौसम में तोड़ी हुई पत्ती की चाय सबसे खराब होती है। पत्तियाँ बड़ी सावधानी से तोड़ी जाती हैं जिससे मुलायम पत्तियाँ दब कर खराब न हो जावें। यही कारण है कि पत्तियों को तोड़ने के लिए विशेषकर स्त्रियों को रक्खा जाता है।

जब पत्तियाँ तोड़कर इकट्ठी कर ली जाती हैं तब उन्हें बीस घंटे तक छाया में सुखाया जाता है। यदि वायु में बहुत नमी होती है तो जिन कमरों में चाय सुखाई जाती है उन्हें गरम किया जाता है। इसके उपरान्त पत्तियों को रोलिङ्ग मशीन में डाल कर गोल-गोल किया जाता है। अन्त में पत्तियों को बड़े कमरों या कड़ाही में रखकर भूना जाता है। भूनने में बड़ी सावधानी की जरूरत होती है। यदि आग तेज जला दी जाय तो चाय खराब

हो जाती है । भुन जाने के उपरांत उसको डिब्बों में भर कर भेज दिया जाता है। इस प्रकार तैयार की हुई चाय को हरी चाय कहते हैं। एक काली चाय भी होती है। काली चाय तैयार करने में उसे भूना नहीं जाता। पत्तियों को सुखा कर कुली उन्हें पैरों से कुलचते हैं, फिर हाथों से मल कर पत्तियों को सूखने के लिए डाल दिया जाता है। सूख जाने पर काली चाय तैयार हो जाती है।

भारत संसार की ४६ प्रतिशत चाय उत्पन्न करता है। आसाम, बंगाल और दक्षिण भारत में चाय बहुतायत से पैदा होती है। उत्तर प्रदेश में भी चाय उत्पन्न होती है। भारत प्रतिवर्ष सवा सौ करोड़ रुपये से अधिक की चाय विदेशों को, मुख्यतः ब्रिटेन को भेजता है जहाँ पर संसार में सबसे अधिक चाय की खपत है। कुछ दिनों से भारत की चाय संयुक्त राज्य अमेरिका तथा रूस इत्यादि देशों को भी जाने लगी है।

भारत में चाय की खेती

आसाम	३६६,००० एकड़
पश्चिमी बंगाल	१६६,०००
बिहार	४ ०००
मद्रास	७८,०००
पूर्वी पंजाब	१०,०००
उत्तर प्रदेश	६,०००
मैसूर	४,०००
ट्रावंकोर-कोचीन	७६,०००
त्रिपुरा	११,०००

कुल क्षेत्रफल ७ लाख २७ हजार एकड़

भारत में जितनी चाय उत्पन्न होती है उसको ७२ प्रतिशत केवल आसाम और पश्चिमी बंगाल में उत्पन्न होती है। कुछ दिनों से दक्षिण भारत में चाय की उत्पत्ति बहुत होने लगी है और वहाँ लगभग १८ प्रतिशत चाय उत्पन्न होती है। भारत में चाय की उत्पत्ति ६४ करोड़ ५० लाख पौंड है। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के समाप्त होने पर ७० करोड़ पौंड के उत्पादन का लक्ष्य निर्धारित किया गया है।

कहवा

कहवा एक झाड़ी के फल से तैयार होता है। कहवे के लिये बहुत उपजाऊ भूमि की आवश्यकता होती है। कहवे का वृक्ष गरमी और अधिक जल चाहता है। किन्तु जब कहवे का पौधा छोटा होता है वह सूर्य की तेज धूप को सहन नहीं कर सकता है। इस कारण उसको बड़े-बड़े पेड़ों की छाया में उत्पन्न किया जाता है। कहवे का पेड़ कोहरा पड़ने से नष्ट हो जाता है। इस कारण वह ठंडे देशों में उत्पन्न नहीं हो सकता। पहाड़ों की ढाल पर ही कहवे की पैदावार होती है। एक हजार से पाँच हजार फीट तक की ऊँचाई पर यह पैदा किया जाता है और चालीस वर्ष तक फल देता रहता है। कहवे का पौधा जब नर्सरी में एक वर्ष का हो जाता है तब उसको बाग मे लगाया जाता है। एक वर्ष और बीत जाने पर उसको ऊपर से छांट देते हैं जिससे कि वह अधिक न बढ़े। इसके तीन वर्ष उपरान्त वृक्ष में फल लगते हैं और प्रति वर्ष अक्टूबर से जनवरी तक फल इकट्ठे किये जाते हैं।

कहवे के फल (जिसे 'चेरी' कहते हैं) में गूदे के अन्दर दो बीज होते हैं। इन बीजों का कहवा बनता है। सबसे पहले मशीन की सहायता से गूदा हटा दिया जाता है और बीज निकाल लिये जाते हैं। गूदा अलग हो जाने पर उन बीजों को भूना जाता है जिससे उनके ऊपर वाला एक ऐसा पदार्थ नष्ट हो जाता है जो बीज को सूखने नहीं देता है। फिर बीज को तालाबों में खूब साफ किया जाता है और सूर्य की तेज धूप में सूखने के लिये डाल दिया जाता है। एक सप्ताह तक सूख चुकने के उपरान्त बीज की भूसी मशीन के

द्वारा साफ कर दी जाती है। भूसी साफ करने के उपरान्त बीजों को फिर सुखाया या गरम किया जाता है और अन्त में उनको चक्की में पीसा जाता है। पिसे हुये कहवे को साफ करके बाजार में बिकने के लिए भेज दिया जाता है।

दक्षिण के नीलगिरि पहाड़ी प्रदेश में कहवा खूब पैदा होता है। मैसूर, कुर्ग, मद्रास, ट्रावंकोर-कोचीन में मुख्यतया यह उत्पन्न होता है। अधिकतर भारत से कहवा ब्रिटेन को जाता है। पहले अंग्रेज व्यवसायियों ने लंका में बहुत से कहवे के बाग लगाये थे किन्तु कहवे के वृक्षों में कीड़ा लग गया और सारे बाग नष्ट हो गये। तब लंका में कहवे के स्थान पर चाय के बाग लगाये जाने लगे।

भारत में लगभग दो लाख एकड़ भूमि पर कहवे की खेती होती है और लगभग ५½ करोड़ पौंड कहवा उत्पन्न होता है। भिन्न-भिन्न प्रदेशों में कहवे की उत्पत्ति नीचे लिखे अनुसार है :—

मैसूर	१०१,०००
मद्रास	५४,०००
कुर्ग	४२,०००
ट्रावंकोर-कोचीन	३,०००

भारत में ७० प्रतिशत कहवे के बाग भारतीयों के हाथ में हैं और ३० प्रतिशत बाग अंग्रेजों के हाथ में है।

अफीम

अफीम की खेती के लिये उपजाऊ भूमि की आवश्यकता होती है। अक्टूबर के महीने में बीज बोया जाता है और मार्च में अफीम इकट्ठी की जाती। है शुरू से आखिर तक फसल को सींचने की आवश्यकता पड़ती है। किसानों को सारी अफीम सरकार को बेचनी पड़ती है। कुछ वर्ष पूर्व भारत बहुत अधिक मूल्य (सात करोड़) रुपये की अफीम चीन को भेजता था किन्तु चीन से सम-

भौता हो जाने के कारण वहाँ अफीम भेजना बिल्कुल बन्द कर दिया गया और इस कारण अफीम की खेती बहुत कम हो गई। अब थोड़ी सी अफीम उत्तर प्रदेश, बिहार, बङ्गाल और मध्य भारत के मालवा प्रदेश में उत्पन्न होती है।

तम्बाकू
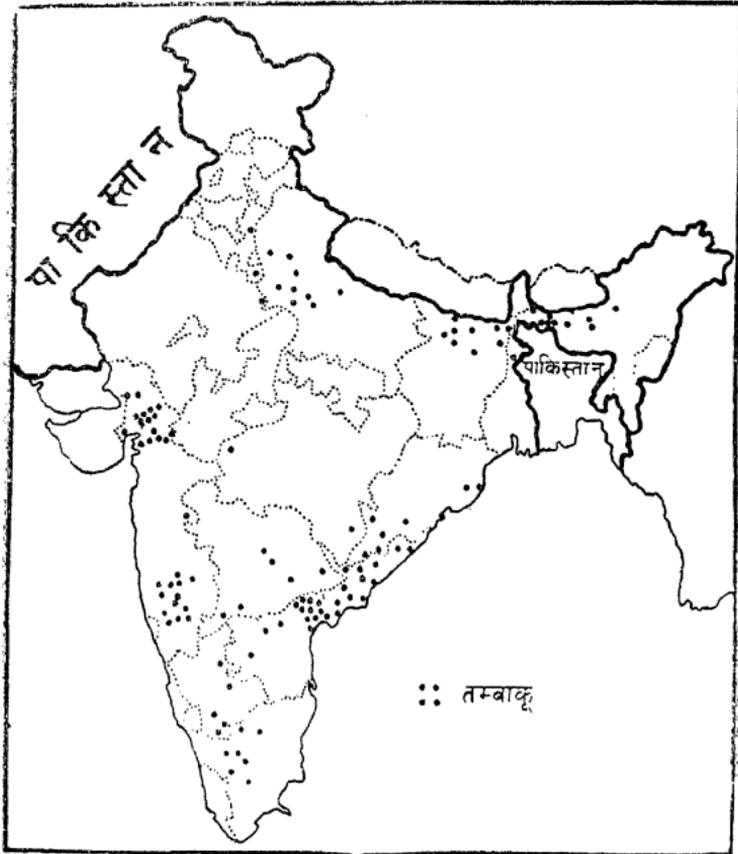
तम्बाकू का सर्वत्र प्रचार है। तम्बाकू का उपयोग पीने, खाने और सूंघने में होता है। गरीब और अमीर सभी तम्बाकू पीते हैं।

तम्बाकू की पैदावार के लिये भूमि बहुत उर्वरा होनी चाहिये। तम्बाकू की फसल के लिये खाद और सिंचाई की बहुत आवश्यकता होती है। तम्बाकू यद्यपि उष्ण कटिबन्ध की पैदावार है परन्तु वह बहुत प्रकार की जलवायु में उत्पन्न होता है।

बङ्गाल में तम्बाकू बहुतायत से पैदा होती है, परन्तु उत्तर प्रदेश, बिहार मध्यप्रदेश, मध्य भारत, गुजरात, आंध्र और मद्रास में इसकी अच्छी पैदावार होती है। फसल तैयार होने पर पत्तियों को काट लिया जाता है और फिर उनको दो महीने तक छाया में सुखा लिया जाता है। सूख जाने पर उनको बाजार में बेच दिया जाता है।

तम्बाकू में शीरा मिलाकर हुक्के के लिये तम्बाकू तैयार की जाती है। हाल में बीड़ियों का भी बहुत प्रचार हो गया है और मध्यप्रदेश, मध्यभारत,
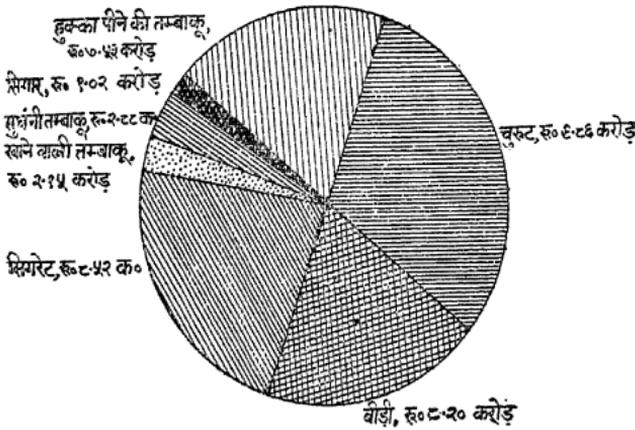
भारत में तम्बाकू का उपयोग

आंध्र और मद्रास में बीड़ी बनाने का धन्धा खूब पनप रहा है। मध्यप्रदेश और मद्रास में बीड़ी बनाने के बड़े-बड़े कारखाने हैं ही, किन्तु जहाँ भी पलास मिलता है वहाँ यह धन्धा छोटे रूप में चलता है। बीड़ी के अतिरिक्त सिगरेट बनाने के कारखाने भी कहीं-कहीं स्थापित हो गए हैं। डिंडीगुल, मद्रास, त्रिचनापली, कोकोनाडा, कालीकट तथा पांडीचेरी में सिगरेट बनाने के कार-

खाने हैं। अभी तक भारत में अच्छी सिगरेट नहीं बनती है क्योंकि यहाँ की तम्बाकू बहुत अच्छी नहीं होती। अधिकतर तम्बाकू को देश में ही खपत हो जाती है, और थोड़ी सी ही विदेशों को भेजी जाती है। भारत में लगभग आठ लाख एकड़ भूमि पर तम्बाकू की खेती होती है और कुल लगभग २ लाख ५० हजार टन तम्बाकू उत्पन्न होती है और लगभग ५० हजार टन बाहर जाती है।

खजूर

खजूर से शक्कर तैयार की जाती है। बंगाल, आंध्र, मद्रास, मध्यप्रदेश तथा मध्यभारत में खजूर बहुतायत से पाया जाता है। जासौर में खजूर की शक्कर तैयार करने का एक बहुत बड़ा कारखाना खोला गया है। खजूर का वृक्ष सात साल में तैयार होता है। जब वृक्ष तैयार हो जाता है तब पेड़ में खांचे काटकर रस निकालना शुरू किया जाता है और प्रतिवर्ष रस निकाला जाता है। एक पेड़ एक रात्रि में पाँच सेर रस देता है। रस को इकट्ठा करके उसे बड़े-बड़े कड़ाहों में औटाया जाता है और गुड़ तैयार हो जाता है। गुड़ से शक्कर तैयार की जाती है। किन्तु इस प्रकार शक्कर तैयार करने से बहुत सा रस व्यर्थ नष्ट हो जाता है। यदि वैज्ञानिक ढंग से शक्कर तैयार की जाय तो अधिक और अच्छी शक्कर तैयार हो सकती है।

कपास

कपास एक झाड़ी का फूल है जिसके रेशे से सूत तैयार होता है। मनुष्य कपास का जितना उपयोग अपने कपड़ों के तैयार करने में करता है, शायद उतना उपयोग किसी दूसरी चीज का नहीं करता।

कपास उष्ण कटिबन्ध की पैदावार है। कपास की पैदावार के लिये गरमी और धूप की बहुत जरूरत होती है, परन्तु अधिक गर्मी उसके लिये हानिकारक है। गरमी के दिनों में साधारण वर्षा की आवश्यकता होती

है, किन्तु अधिक वर्षा पैदावार कम करती है। पाला कपास को नष्ट कर देता है। कपास के लिये हल्की मटियार भूमि, जिसमें चूना हो, उपयुक्त है। जिन देशों में समय पर वर्षा नहीं होती वहाँ सिंचाई के द्वारा फसल उत्पन्न की जाती है। संसार में संयुक्त राज्य अमेरिका, भारत और मिस्र कपास उत्पन्न करने वाले देशों में मुख्य हैं।
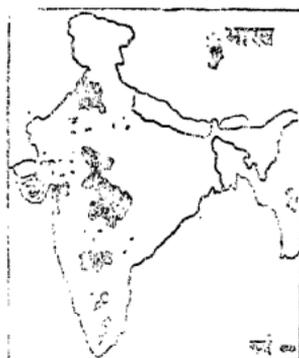
भारत की कपास अच्छी जाति की नहीं होती। फूल बहुत छोटा होता है जिससे बारीक सूत तैयार नहीं हो सकता। अब भारत में भी अच्छी कपास (भड़ौंच, सूरत इत्यादि जिलों में) उत्पन्न करने का प्रयत्न किया जा रहा है। यदि यहाँ अच्छी कपास उत्पन्न होने लगे तो बढ़िया कपड़ा अधिक तैयार होने लगेगा।

कपास उत्पन्न करने वाले प्रदेशों में बरार, खानदेश, मध्यभारत, मध्य-प्रदेश, गुजरात तथा बम्बई का उत्तरी-पश्चिमी भाग तथा राजस्थान मुख्य हैं। उत्तर प्रदेश, पूर्वी पञ्जाब, और मद्रास तथा हैदराबाद में भी कपास पैदा होती है।

कपास की उत्पत्ति

प्रदेश	कुल उत्पत्ति का प्रतिशत
बम्बई ...	११ प्रतिशत
पूर्वी पञ्जाब ...	४ प्रतिशत
मध्य प्रदेश ...	२० प्रतिशत
हैदराबाद	१७ प्रतिशत
आंध्र तथा मद्रास ...	१८ प्रतिशत
अन्य प्रदेश (उत्तर प्रदेश इत्यादि)	३० प्रतिशत

यह तो हम पहले ही कह आये हैं कि भारत में बहुत छोटे फूल वाली कपास उत्पन्न होती है। बढ़िया और बारीक सूत बनाने के लिये लम्बे फूल वाली कपास की आवश्यकता पड़ती है। जब भारत में वस्त्र-व्यवसाय की उन्नति हुई और बम्बई, अहमदाबाद, शोलापुर तथा अन्य केन्द्रों की मिलें बढ़िया बारीक कपड़ा बनाने लगीं तब से भारत में लम्बे फूल वाली कपास की आवश्यकता का अनुभव होने लगा। भारत मिस्र से लम्बे फूल वाली कपास मँगाने लगा। देश में ही लम्बे फूल वाली कपास उत्पन्न करने का प्रयत्न किया गया। केन्द्रीय कपास कमेटी ने पञ्जाब के नहर उपनिवेशों तथा सक्खर बाँध से सिंचने वाले सिन्ध प्रदेश में लंबे फूल वाली कपास को उत्पन्न करने का प्रयत्न किया। भारत के विभाजन के फलस्वरूप पंजाब का पश्चिमी भाग तथा सिन्ध पाकिस्तान में चला गया। इस दृष्टि से भारतीय मिलों के लिये लंबे फूल वाली कपास का टोटा हो गया। अब भारत सरकार इस बात का प्रयत्न कर रही है कि लंबे फूल वाली कपास यथेष्ट राशि में भारत में ही उत्पन्न हो जिससे भारत कपास के लिये बाहरी देशों पर निर्भर न रहे।

भारत में यदि फूल एक इञ्च लंबा होता है तो उसे लंबे फूल वाली कपास कहते हैं।

छोटे फूल वाली कपास उत्पन्न करने वाले प्रदेश :—

मध्यप्रदेश, बरार, खानदेश, मध्य-भारत, राजस्थान तथा उत्तर प्रदेश।
लंबे फूल वाली कपास उत्पन्न करने वाले प्रदेश :—

गुजरात, काठियावाड़ का कुछ भाग, दक्षिणी बंबई प्रदेश, आंध्र तथा मद्रास।

भारत सरकार ने जो केन्द्रीय कपास कमेटी स्थापित की है वह लंबे फूल की कपास के उत्पादन को बढ़ाने का प्रयत्न कर रही है।

विभाजन से पूर्व भारत संसार में संयुक्तराष्ट्र अमेरिका के बाद कपास उत्पन्न करने वाला दूसरा देश था। उस समय भारत बहुत अधिक राशि में कपास जापान को भेजता था। कुछ कपास ब्रिटेन, इटली और चीन को भी भेजी जाती थी। विभाजन के फलस्वरूप भारत में कपास का टोटा पड़ गया।

इसके विपरीत पाकिस्तान कपास बाहर भेजने वाला देश बन गया। अब प्रयत्न किया जा रहा है कि भारत में कपास की पैदावार को अधिक बढ़ाया जावे।

१९५०—५१ में भारत में केवल २९ लाख गाँठ कपास उत्पन्न होती थी। पहली पंचवर्षीय योजना की समाप्ति पर कपास की उत्पत्ति बढ़कर ४२ लाख गाँठ हो गई। द्वितीय पञ्चवर्षीय योजना की समाप्ति पर कपास की पैदावार बढ़कर ५५ लाख गाँठ हो जायगी।

जूट

जूट एक प्रकार के लंबे पौधे का छिलका होता है। इस रेशेदार छिलके को कातकर सूत तैयार करते हैं और इसी सूत से कैनवैस और टाट बुने जाते हैं। अनाज भरने के बोरे जूट के ही बने होते हैं।

जूट की खेती भारत के अधिकांश पश्चिमी बंगाल में ही होती है। जूट की खेती के लिए बहुत ज्यादा पानी और गरमी की जरूरत होती है। जूट की खेती से भूमि बहुत जल्दी कमजोर हो जाती है। इस कारण जूट की खेती उन्हीं स्थानों पर की जाती है जहाँ हर साल नदियाँ उपजाऊ मिट्टी लाकर खेतों पर जमा कर देती हों। जो भूमि हर साल प्रकृति की सहायता से उपजाऊ मिट्टी पा जाती है वह जूट की खेती के लिए उपयुक्त होती है। बङ्गाल में गंगा की बाढ़ से खेतों पर नई मिट्टी बिछ जाती है। यही कारण है कि बङ्गाल ही अधिकतर जूट उत्पन्न करता है। देश के विभाजन के कारण जूट की मिलें तो भारत में रह गई हैं और जूट की अधिकांश पैदावार पाकिस्तान में होती है। आपस में मेल न होने के कारण हमको जूट की कमी पड़ रही थी। यों विदेशों में जूट की खपत भी घट गई है। अमेरिका, जर्मनी, जापान आदि देशों में कागज तथा एक प्रकार के बनावटी जूट के बारे का उपयोग जोर पकड़ता जा रहा है। पश्चिमी बङ्गाल के कृषि-विभाग ने जूट की खेती को बढ़ाने का प्रयत्न किया है।

यह तो हम पहले ही लिख चुके हैं कि भारत के विभाजन के फलस्वरूप सारे जूट के कारखाने (९७) भारत में रह गये थे। पाकिस्तान में एक भी

जूट का कारखाना नहीं गया और अधिकांश कच्चा जूट पूर्वी पाकिस्तान में चला गया। अनुमानतः ७३ प्रतिशत जूट पूर्वी पाकिस्तान में उत्पन्न होता है और
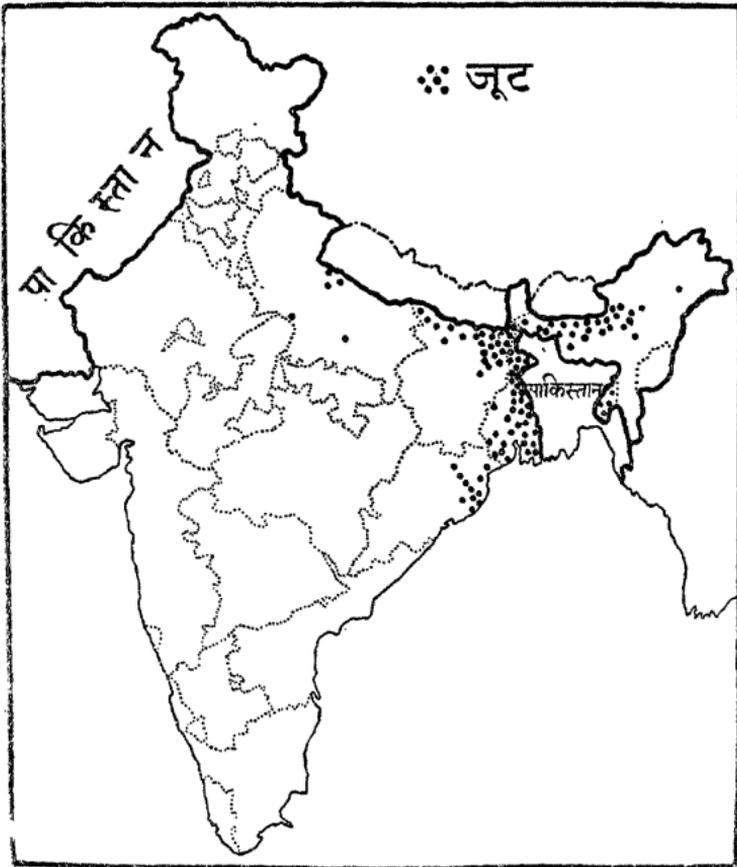
भारत में जूट उत्पन्न करने वाले प्रदेश

केवल २७ प्रतिशत कच्चा जूट भारत में उत्पन्न होता है। इस विभाजन से एक बहुत बड़ी कठिनाई उपस्थित हो गई है कि भारतीय मिलों को कच्चा जूट कैसे मिले। आज भारत तथा पाकिस्तान के सम्बन्ध खराब हैं और दोनों देशों का व्यापार बन्द है। अस्तु, भारत सरकार इसका प्रयत्न कर रही है कि शीघ्राति-

शीघ्र भारत में ही जूट को अधिक उत्पन्न किया जाय जिससे भारत को पाकिस्तान पर अवलम्बित न रहना पड़े। उड़ीसा, बिहार, मालावार तथा दक्षिण के अन्य स्थानों पर जूट की खेती को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। इसी उद्देश्य से एक जूट बोर्ड स्थापित किया गया है। जूट के अतिरिक्त अन्यान्य रेशेदार पदार्थों को भी काम में लाने का प्रयत्न किया जा रहा है।

भारत में जूट उत्पन्न करने वाले प्रदेश

		क्षेत्रफल	
पश्चिमी बङ्गाल	...	१६८,०००	
बिहार	...	१५६,०००	
उड़ीसा	...	२०,०००	,,
आसाम	...	१७३,०००	,,
कूच बिहार	...	२०,०००	,,

१६५१ में भारत में १८ लाख एकड़ भूमि पर जूट की खेती होती थी और ३३ लाख गाँठें उत्पन्न होती थीं। अब भारत में जूट को अधिक उत्पन्न करने का प्रयत्न किया जा रहा है। प्रथम पंचवर्षीय योजना की समाप्ति (१६५६ में) पर ५० लाख गाँठ जूट उत्पन्न होने की आशा थी परन्तु जूट उत्पादन में आशाजनक वृद्धि नहीं हुई। जूट की उत्पत्ति केवल ४० लाख गाँठ हुई। द्वितीय पञ्चवर्षीय योजना की समाप्ति पर ५० लाख गाँठ जूट उत्पन्न होगा।

सन

सन के लिए बहुत उपजाऊ भूमि की आवश्यकता नहीं है, और इसकी विशेषता यह है कि जहाँ जूट नहीं उत्पन्न हो सकता है वहाँ सन उत्पन्न होता है। भारत में बम्बई, आंध्र, मद्रास और मध्यप्रदेश में सन बहुतायत से उत्पन्न होता है। इनके सिवा पूर्वी पञ्जाब, उत्तर प्रदेश और पश्चिमी बङ्गाल में भी इसकी अच्छी पैदावार होती है। सन का उपयोग रस्से, जल और कागज बनाने

में होता है, किन्तु भारत में सन भी बहुत अच्छी जाति का नहीं होता। यहाँ सन के बीज की तरफ अधिक ध्यान दिया जाता है और छिलके की तरफ कम। सन की एक विशेषता यह है कि दोनों चीजों अर्थात् बीज और छिलके की अच्छी पैदावार एक ही पौधे से नहीं हो सकती। यदि ऐसा बीज बोया जावेगा जिससे बीज अधिक उत्पन्न हो तो छिलका कम उत्पन्न होगा और यदि छिलका अधिक उत्पन्न करने वाला पौधा पैदा किया जावेगा तो सन का बीज कम उत्पन्न होगा।

तिलहन

भारत संसार में तिलहन उत्पन्न करने वाले देशों में मुख्य है और प्रति वर्ष करोड़ों रुपये का तिलहन यह विदेशों को—मुख्यतः फ्रांस को—भेजता है। तिलहन की मुख्य फसलें निम्नलिखित हैं:—सरसों, लाही, सन का बीज, बिनौला, तिल, अंडी और मूँगफली। इनके अतिरिक्त नारियल और महुआ के फलों से भी तेल तैयार होता है।

तिलहन और लाही

सरसों बङ्गाल, बिहार, उड़ीसा, पञ्जाब और उत्तर प्रदेश में बहुतायत से उत्पन्न होती है। अधिकतर सरसों, गेहूँ और जौ के साथ उत्पन्न की जाती है। सरसों सबसे महत्वपूर्ण तिलहन है। यह फ्रांस, ब्रिटेन, इटली तथा बेलजियम को भेजी जाती है।

सन का बीज

इसकी पैदावार अधिकतर बङ्गाल, बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश और दक्षिण में होती है।

तिल

तिल दो प्रकार का होता है—काला और सफेद। तिल की खेती कम उपजाऊ भूमि पर हो सकती है। तिल और गेहूँ के योग्य एक सी भूमि की आवश्यकता होती है।

तिलहन के अन्तर-राष्ट्रीय व्यापार में भारत का भाग

महुआ	...	१०० प्रतिशत
अंडी	...	१०० ,,
सरसों	...	३६ ,,
मूँगफली	...	२६ ,,
तिल	...	१३ ,,
बिनौला	...	१ ,,
पोस्ता	...	७५ ,,

१६५१ में भारत में ५१ लाख टन तिलहन उत्पन्न हुआ। प्रथम पञ्चवर्षीय योजना की समाप्ति पर (१६५६ में) ५५ लाख टन तिलहन की पैदावार हुई और द्वितीय पञ्चवर्षीय योजना की समाप्ति पर (१६६१ में) ७१ लाख टन तिलहन उत्पन्न होने की आशा है।

अंडी

अंडी के पेड़ पर अंडी (रेशम) के कीड़े पाले जाते हैं और अंडी के तेल से साबुन, तथा मशीनों को चिकना करने वाले तेल (Lubricating oil) तैयार किये जाते हैं। अंडी के लिए गरमी की आवश्यकता होती है और साधारण वर्षा की जरूरत होती है। इसकी ऊँचाई १५ से २५ फीट तक होती है। अंडी आंध्र, मद्रास, हैदराबाद, बम्बई तथा मध्य-प्रदेश में बहुत पैदा होती है। लगभग १३ लाख एकड़ भूमि पर अंडी उत्पन्न की जाती है। भारत में अंडी की कुल उत्पत्ति १ लाख १० हजार टन है।

मूंगफली

मूंगफली के लिये रेतीली भूमि और सूखी जलवायु चाहिये। मूंगफली की पैदावार बढ़ती जा रही है। मूंगफली की खेती के लिए सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती और न अधिक मेहनत ही करनी पड़ती है। मूंगफली अधिकतर फ्रांस को भेजी जाती है।

संसार में भारत सबसे अधिक मूंगफली उत्पन्न करता है। यह उष्ण प्रदेश की पैदावार है। फसल मई से अगस्त तक बोई जाती है और नवम्बर से जनवरी
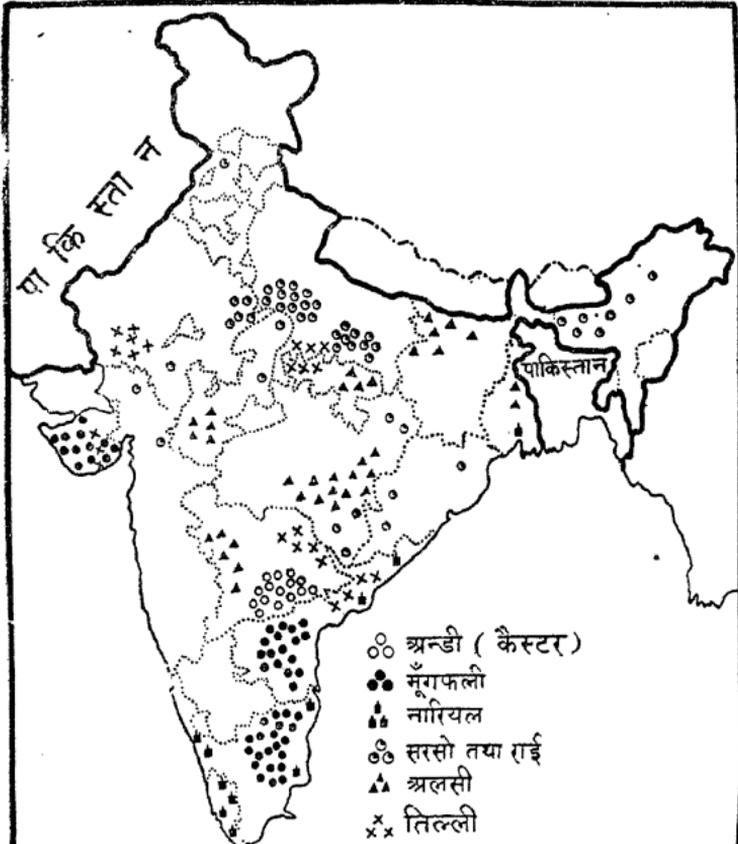
भारत में तिलहन की उपज

तक काटी जाती है। यह मुख्यतः आंध्र, मद्रास, बम्बई और हैदराबाद में उत्पन्न की जाती है। कुछ वर्षों से मध्यप्रदेश में भी मूंगफली खूब उत्पन्न होने लगी है। थोड़ी मूंगफली मैसूर में भी होती है।

भारत में लगभग १ करोड़ १६ लाख एकड़ भूमि में मूंगफली की उत्पत्ति होती है और वार्षिक उत्पत्ति २६ लाख टन है।

अधिकतर मूंगफली फ्रांस, बेलजियम, आस्ट्रिया, हंगरी, जर्मनी, इटली और ब्रिटेन को जाती है।

बिनौला

बिनौला कपास का बीज होता है जिससे तेल निकाला जाता है। बम्बई, पूर्वी पञ्जाब, मध्यभारत, हैदराबाद, मध्यप्रदेश, आंध्र तथा मद्रास में यह उत्पन्न होता है। भारत में लगभग पौने तीन लाख टन बिनौला उत्पन्न होता है।

नारियल

नारियल की पैदावार दक्षिण भारत में बहुत होती है। भारत बीस लाख गैलन नारियल का तेल विदेशों को (मुख्यतः इंगलैंड को) भेजता है। नारियल की जटाओं के रस्से बनते हैं जो विदेशों को भेजे जाते हैं। नारियल भी बहुत बड़ी मात्रा में बाहर जाता है।

भारत में लगभग २५ लाख एकड़ भूमि पर नारियल उत्पन्न होता है। आंध्र मद्रास, ट्रावंकोर-कोचीन तथा मैसूर मुख्यतः इसको उत्पन्न करते हैं। इनके अतिरिक्त, उड़ीसा पश्चिमी बंगाल और आसाम में भी इसकी अच्छी पैदावार होती है। आंध्र तथा मद्रास में इसकी पैदावार मुख्यतः मालाबार, दक्षिण कनारा तथा पूर्वी गोदावरी जिलों में होती है।

भारत में कच्चे नारियल का उपयोग उसका जल पीने के लिए होता है। पक्के नारियल की गरी निकाली जाती है जिससे तेल निकलता है। भारत में नारियल देव-पूजा में भी बहुत काम आता है। गरी खाने तथा मिठाई इत्यादि बनाने के भी काम आती है। भारत में कुल नारियल की उत्पत्ति इतनी है कि उससे १ लाख ३० हजार टन तेल निकल सकता है। द्वितीय पंच-वर्षीय योजना के अंतर्गत इसमें ६२% की वृद्धि की जाएगी।

महुआ

महुआ का पेड़ तराई के प्रदेश, सारे मध्यभारत और बंगाल के उस भाग में पैदा होता है जहाँ वर्षा कुछ कम होती है।

भारत अधिकतर तिलहन ही विदेशों को भेजता है; तेल नहीं भेजता, क्योंकि तेल निकालने का धन्धा यहाँ अभी उन्नत नहीं हुआ है।

रबर

भारत संसार का दो प्रतिशत रबर उत्पन्न करता है। रबर दक्षिणी भारत में उत्पन्न होता है। मद्रास, कुर्ग, मैसूर, ट्रावंकोर और कोचीन में रबर उत्पन्न होता है। ट्रावंकोर सबसे अधिक रबर उत्पन्न करता है। भारत में उत्पन्न होने वाले रबर इंगलैंड, लंका, हालैंड, स्ट्रेटसैटिलमैंट को भेजा जाता कोचीन रबर को बाहर भेजने वाला मुख्य बन्दरगाह है द्वितीय महायुद्ध के फलस्वरूप भारत में रबर की उत्पत्ति बहुत बढ़ गई है।

प्रति वर्ष भारत २०,००० टन रबर उत्पन्न करता जो संसार की कुल उत्पत्ति का केवल दो प्रतिशत है।

भारत में रबर की उत्पत्ति

मद्रास	१०%
ट्रांवकोर-कोचीन	६८%
कुर्ग	२%
मैसूर	२०%

प्रश्न

१—गेहूँ की पैदावार के लिये कैसी भूमि और जलवायु चाहिये ? गेहूँ भारत में कहाँ अधिक पैदा होता है ?

२—चावल उत्पन्न करने वाले देश घने आवाद क्यों हैं ?

३—चावल की पैदावार के लिये भूमि और जलवायु कैसा होनी चाहिये ? भारत में चावल कहाँ पैदा होता है ?

४—फलों की पैदावार के लिये कैसी जलवायु की जरूरत होती है ? भारत में कौन-कौन से फल होते हैं और कहाँ-कहाँ पैदा होते हैं ?

५—चाय कैसे तैयार की जाती है ? उसका वर्णन कीजिये ?

६—चाय के बगीचे लगाने के लिये किन-किन बातों की आवश्यकता है? हमारे देश में चाय के बाग कहाँ-कहाँ हैं? (१९५३)

७—भारत में कहवा कहाँ उत्पन्न होता है? कहवा के उपयुक्त जलवायु कैसी होनी चाहिए?

८—कपास, तम्बाकू और जूट की खेती के लिए किस प्रकार की भूमि और जलवायु चाहिए?

९—भारत में कपास, तम्बाकू और जूट की पैदावार कहाँ अधिक होती है और क्यों?

१०—भारत के रेगिस्तान और सूखे प्रदेशों में खेती की मुख्य पैदावार कौन सी है?

११—पाकिस्तान के बन जाने से भारत में कपास और जूट की जो कमी प्रतीत होती थी उसके सम्बन्ध में संक्षेप में लिखिये।

१२—यदि आप 'अधिक खाद्य उत्पादन योजना' के अफसर नियुक्त किए जाएं तो उस योजना को किस प्रकार चलाएँगे? (१९५३)

१३—निम्नलिखित में से किन्हीं तीन की उपज और वितरण के बारे में लिखिए :—
चाय, गेहूँ, तिलहन, गन्ना, कपास (१९४२)। कपास, तिलहन, चावल, कहवा, मकई (१९४५)।

पाँचवाँ अध्याय

पशु, जन्तु और उनसे उत्पन्न होने वाली वस्तुयें

मनुष्य का पशु-पक्षियों तथा अन्य जन्तुओं से घनिष्ठ सम्बन्ध है। बहुत सी चीजों के लिए तो हम लोग पशुओं पर बिल्कुल निर्भर हैं। प्राचीन काल में हमारे पूर्वजों ने कुछ पशुओं को पालतू बना लिया था जिनका उपयोग हम आज भी करते हैं। प्राचीन काल में हमारे पूर्वजों ने इस बात को समझ लिया था कि केवल शिकार पर भोजन के लिए निर्भर रहना बुद्धिमानी नहीं है। अतएव उन्होंने पशुओं को पालतू बनाकर उनकी अच्छी नस्ल को उत्पन्न करना शुरू किया था। परन्तु मनुष्य केवल घास खाने वाले पशुओं को ही अधिकतर पालतू बना सका क्योंकि वे कैद में रहकर भी फलते-फूलते हैं और स्वभाव से हिंसक नहीं होते।

बाद को मनुष्य ने पशुओं का दूसरे उत्पादन-कार्यों में भी उपयोग करना शुरू किया। खेती, माल को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना, तथा अन्य कार्यों में पशुओं ही का उपयोग किया जाने लगा। यद्यपि यह बिजली और स्टीम से चलने वाले यंत्रों और मशीनों का युग है, फिर भी खेती का काम पशुओं की सहायता के बिना नहीं हो सकता। यद्यपि रेल और मोटर ने घोड़ों के उपयोग को बोझ ढोने और सवारी ले जाने में कम कर दिया है, फिर भी पहाड़ी स्थानों में जहाँ रेल नहीं होती वहाँ आज भी घोड़ों और खच्चरों का ही उपयोग होता है। रेगिस्तान में तो ऊँट आज भी उपयोगी है। इसके अतिरिक्त पशुओं से हमें भोजन-सामग्री और बहुत प्रकार का कच्चा माल मिलता है।

यह तो हम पहले अध्याय में ही कह आये हैं कि जहाँ पशुओ से हमें बहुत से लाभ हैं वहाँ बहुत से पशुओं और कीड़ों से हमें खतरा और

हानि भी है। वन के हिंसक जन्तु और सांप इत्यादि प्रति वर्ष भारत में हजारों की जान ले लेते हैं और इनसे भी भयंकर वे कीड़े हैं जो मलेरिया, प्लेग, हैजा तथा अन्य रोगों को फैलाते हैं, जिनसे मनुष्य जीवन का नाश होता है। इनके अतिरिक्त बन्दर, चूहे, फसलो के कीड़े तथा दूसरे जानवर भी जो फसलों को नष्ट कर देते हैं, मनुष्य के शत्रु हैं।

अब हम उन पशुओं के सम्बन्ध में यहाँ लिखते हैं जिनका व्यापारिक महत्व है और जिनसे मनुष्य को भोज्य पदार्थ अथवा औद्योगिक कच्चा माल मिलता है।

भारतीय पशुओं की संख्या

आर्थिक दृष्टिसे जो पशु महत्वपूर्ण हैं उनकी संख्या हम नीचे देते हैं :

गाय-बैल	१५½ करोड़
भैंस-भैंसा	४ करोड़ ३० लाख
बकरी	५ करोड़
भेड़	१.५ करोड़
घोड़े	१.५ करोड़
खच्चर	१.५ करोड़
ऊँट	६० लाख

गाय और बैल

भारत खेतिहर देश है जहाँ किसान छोटे-छोटे खेतों पर खेती करता है। अस्तु, यहाँ मशीनों का अधिक उपयोग हो नहीं सकता और न बिजली अथवा स्टीम का अधिक उपयोग हो सकता है। यही कारण है कि बैल खेती के लिये अत्यन्त आवश्यक है। खेत जोतने से लेकर फसल को मंडी में बेचने के लिये ले जाने तक सारी क्रियायें बैल की ही सहायता से होती हैं। भारत

में लगभग उन्नीस करोड़ से अधिक गाय बैल और भैंस हैं। संसार में जितने गाय-बैल हैं उनके एक चौथाई भारत में ही हैं।

यद्यपि भारत में गाय को बहुत पूज्य मानते हैं और गाय तथा बैल दूध और खेती के लिये अत्यन्त आवश्यक हैं, फिर भी गाय और बैलों की नस्ल इतनी बिगड़ गई है जिसका कुछ ठिकाना नहीं। कुछ नस्लों को छोड़कर (जो आज भी अच्छी हैं) साधारण गाय और बैल इतने निर्बल और छोटे होते हैं कि वे किसी भी काम के नहीं रहे। भारत में साधारण गाय एक दिन में सेर-डेढ़ सेर दूध देती है जब कि डेनमार्क में साधारण गाय अठारह सेर से कम दूध नहीं देती। सोलह सेर से कम दूध देने वाली गाय डेनमार्क में पालना लाभदायक नहीं समझा जाता और वह मांस के कारखाने को बेच दी जाती है। भारत में साधारण बैल इतने छोटे और कमजोर होते हैं कि भारी हल तथा अन्य खेती के नये अच्छे यन्त्रों को खींच ही नहीं पाते।

भारत में पशुओं की नस्ल बिगड़ने के मुख्य तीन कारण हैं—(१) चारे की कमी, (२) नस्ल पैदा करने का गलत तरीका, (३) पशुओं की बीमारियाँ। अब हम इन समस्याओं पर विचार करेंगे।

चारा

गाय और बैलों की नस्ल को ही क्या, सभी पशुओं को यथेष्ट चारा मिले बिना उनकी नस्ल अच्छी नहीं रह सकती। भारत में आजकल चारे की कमी है। जनसंख्या के बढ़ जाने से चरागाह जोत डाले गये। फल यह हुआ कि चरागाहों की कमी हो गई। भारत में गर्मियों के तीन महीने पशुओं के लिये कठिन होते हैं। मैदानों में घास नष्ट हो जाती है और पशु आधे भूखे रहते हैं। बिना चारे के गाय और बैलों की नस्ल का सुधार नहीं हो सकता। इसलिये किसान को अपने खेतों पर चारे की फसल भी उत्पन्न करनी चाहिये। जंगल विभाग भी अपने नियमों को सरल करके तथा मैदानों में छोटे-छोटे क्षेत्रों में जंगल लगाकर इसमें सहायता कर सकता है। साथ ही

चारा किस प्रकार सुरक्षित रह सकता है, किसानों में इसका प्रचार कृषि-विभाग को करना चाहिये।

इस सम्बन्ध में पञ्चवर्षीय योजना के अन्तर्गत यह सुझाव दिया गया है कि जंगलों तथा पहाड़ों पर जहाँ चारे की बहुतायत हो वहाँ सूखी तथा वृद्ध गायों को रखने की व्यवस्था की जावे। इससे यह लाभ होगा कि मैदानों तथा गाँवों में जहाँ चारे की कमी है वहाँ पशुओं की संख्या आवश्यक रूप से अधिक नहीं होगी।

नस्ल को सुधारने का उपाय

चारे की समस्या को हल कर लेने के बाद हमें गाय की नस्ल को सुधारने की ओर ध्यान देना होगा। इस समय जिस प्रकार नस्ल बिगड़ती जा रही है उसको देखकर तो यही कहना होगा कि भविष्य में अच्छी नस्ल के पशु नहीं मिलेंगे। नस्ल के बिगड़ने का मुख्य कारण यह है कि हमारे शहरों और गाँवों में जो बेकार खराब जाति के सांड़ घूमा करते हैं उनसे ही सन्तानोत्पत्ति होती है। यही निर्बल और रद्दी सांड़ गाय की नस्ल को खराब कर रहे हैं। यदि इसको रोका नहीं जावेगा तो गाय की नस्ल नहीं सुधर सकती, इसके लिये आवश्यकता इस बात की है कि निर्बल और रद्दी सांड़ों को नपुंसक कर दिया जावे और सरकारी बुल-फार्म पर अच्छे सांड़ तैयार करके गाँवों को दिये जायँ।

भारत में कुल दस लाख अच्छे साँड़ों की आवश्यकता है और इस समय ४० लाख साँड़ मौजूद हैं। प्रतिवर्ष हमें दो लाख उत्तम साँड़ चाहिए जो मरने वाले तथा वृद्ध साँड़ों का स्थान ले सकें।

प्रश्न यह है कि प्रतिवर्ष २ लाख उत्तम सांड़ किस प्रकार उत्पन्न किए जायँ। इसके लिये सरकार दो उपाय करने जा रही है। पहला उपाय तो यह है कि सरकार कुछ गाँवों के समूहों को उत्तम जाति के साँड़ देगी और उनके संसर्ग से जो बछड़े उत्पन्न होंगे, उनको सरकारी बुल फार्मों पर पाला जावेगा। जब वे तैयार हो जावेंगे तो उनको एक दूसरे गाँव समूह को बाँट दिया जावेगा

इसी प्रकार उत्तम जाति के सांड़ उत्पन्न किये जावेंगे। दूसरी पञ्चवर्षीय योजना में १२५८ नये गाँवों में यह योजना लागू होगी।

दूसरा उपाय कृत्रिम रूप से गायों के गर्भ स्थापित करने का है। जहाँ एक सांड़ वर्ष में ६० से ८० गायों को प्राकृतिक रूप से गर्भ धारण करा सकता है वहाँ कृत्रिम रूप से एक सांड़ से ५०० गायों को गर्भ धारण करवाया जा सकता है। भारत में अब कृत्रिम रूप से गायों को गर्भवती करने के केन्द्र स्थापित किये जा रहे हैं। दूसरी पञ्चवर्षीय योजना में ऐसे २४५ नये केन्द्र स्थापित किए जावेंगे।

पशुओं की बीमारियाँ

अन्त में हमें इस बात का भी प्रयत्न करना होगा कि जो बहुत से पशुओं के रोग देश में फैलते हैं और जिनसे लाखों की संख्या में पशु प्रतिवर्ष मरते हैं उनको रोका जावे। इसके लिए हमें पशु-चिकित्सालयों का प्रबन्ध करना होगा। प्रथम पञ्चवर्षीय योजना में एक हजार नये पशु चिकित्सालय खोले गये। दूसरी पञ्चवर्षीय योजना के समय में १६०० नये पशु चिकित्सालय खोले जावेंगे।

विभाजन के फलस्वरूप भारत की कुछ बहुत बढ़िया नस्लें पाकिस्तान में रह गईं। उदाहरण के लिये शाहीवाल, सिंधी, और थारपारकर जो दुधारू जातियाँ थीं वे पाकिस्तान में रह गईं। इनके अतिरिक्त धारी, भगनारी और धन्नी जाति जो खेती के लिये बढ़िया बैल उत्पन्न करती हैं वह भी पाकिस्तान में चली गईं। इससे भारत की स्थिति पर बहुत बुरा असर पड़ा।

फिर भी भारत में कुछ अच्छी नस्लें रह गई हैं। अमृत महल, हालीकर, कंगयाम नस्ल बोझ ढोने वाले अच्छे बैल उत्पन्न करती हैं। ये नस्लें मैसूर और मद्रास में पाई जाती हैं। इनके अतिरिक्त हिसार, हरियाना, पूर्वी पञ्जाब, नागौरी और राजस्थान की नस्लें भी अच्छे बैल उत्पन्न करती हैं। कांकरेज, गुजरात की तथा गिर, काठियावाड़ की अच्छी नस्लें हैं।

भारत में गाय की नस्ल इतनी बिगड़ गई है कि वह दूध देने योग्य नहीं रही है। भैंस ने उसका स्थान ले लिया है। गाय तो बछड़े उत्पन्न करने के लिए पाली जाती है। भैंस के दूध से घी अधिक होता है और वह अधिक दूध देती है। किन्तु भैंसे का खेती में उपयोग नहीं होता। इस कारण उसकी ओर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता और न कोई उसे अच्छी तरह रखता ही है। परन्तु भैंसा बोझ ढोने का काम बहुत अच्छी तरह से करता है।

बकरी

बकरी गरीबों की गाय है। हर एक चीज वह खा लेती है। इस कारण इसको पालने में खर्च बहुत कम होता है। जितनी चरागाह की भूमि पर एक गाय रह सकती है उस पर बारह बकरियों का निर्वाह हो सकता है। बकरों का मांस के अतिरिक्त और कोई उपयोग नहीं होता है। हाँ, किसी-किसी जाति के बकरे रेशम के समान मुलायम ऊन उत्पन्न करते हैं।

ढोरों से होने वाली वार्षिक आमदनी

भारत में गाय और बैलों का खेती के लिये जो महत्व है वह तो किसी से छिपा नहीं है, लेकिन यह बहुत कम लोग जानते हैं कि खेती के बाद गाय और बैलों को पालने का ही धन्धा सबसे अधिक धन उत्पन्न करता है।

गाय बैलों के द्वारा होने वाली आय का अनुमान इस प्रकार है :—

दूध और दूध से तैयार होने वाले पदार्थ का मूल्य तीन अरब रुपये (भारत में दूध की वार्षिक उत्पत्ति १ करोड़ ८० लाख टन है); खाल, चमड़ा, हड्डी इत्यादि ४० करोड़ रुपये; खेती में बैल जो काम करते हैं उसका मूल्य ३ अरब और चार अरब रुपये के बीच कूता गया है। खाद का मूल्य लगभग तीन अरब रुपये कूता गया है। इस प्रकार पशुओं से होने वाली आय का अनुमान लगभग दस अरब रुपया किया गया है जो खेती से होने वाली आय का आधा है। इससे गाय और बैलों का महत्व स्पष्ट हो जाता है। लेकिन आज

हमारे पशुओं की दशा अत्यंत गिरी हुई है। यदि इसमें किसी प्रकार की उन्नति हो सके तो देश की आर्थिक स्थिति में सुधार हो सकता है।

घी-दूध-मक्खन का धन्धा

भारत जैसे देश में, जहाँ बहुत सी जनसंख्या मांस नहीं खाती, दूध सब उम्र के स्त्री-पुरुष और बच्चों के लिए सबसे अधिक पौष्टिक भोजन है। देश के लिये दूध का इतना अधिक महत्व होते हुए भी देश में दूध का अकाल है। गाँव में साधारण किसान को अपने कुटुम्ब के लिये दूध नहीं मिलता। शहरों में दूध की बहुत कमी है। ठीक दामों में अच्छा दूध मिलता ही नहीं, क्योंकि दूध-घी-मक्खन का धन्धा बड़ी मात्रा में हमारे शहरों में भी नहीं होता इसका मुख्य कारण यह है कि गाय तो बहुत कम दूध देती है। दूध देने वाला जानवर भैंस है, किन्तु गाय को पालना इसलिये आवश्यक है कि वह बैल उत्पन्न करती है। साधारण किसान गाय और भैंस दोनों को नहीं पाल सकता, इसलिये वह बिना दूध के ही रहता है। जिन किसानों की दशा कुछ अच्छी होती है वे भैंस पालते हैं और पास वाली मंडियों में घी बेचते हैं। इसका फल यह होता है कि गाँवों में दूध का अभाव रहता है और घी का धंधा अधिक महत्वपूर्ण बन गया है।

बड़े-बड़े नगरों में भी डेयरी का धंधा बड़ी मात्रा में नहीं होता। हाँ, जहाँ छावनियाँ हैं वहाँ यह धंधा बड़ी मात्रा में होता है, नहीं तो अधिकतर नगरों में या तो पास वाले गाँवों से दूध आता है या फिर शहरों में रहने वाले ग्वाले अपनी गाय-भैंसों का दूध बेचते हैं। मक्खन का धंधा तो देश में नाम मात्र का ही होता है और लाखों रुपये का मक्खन विदेश से आता है।

भारतीय किसान साल में ४ से ६ महीने तक बेकार रहता है क्योंकि उसे अपने खेत पर काम नहीं रहता। यदि सहकारी दूध-घी और मक्खन समितियों का संगठन किया जावे तो कोई कारण नहीं कि गाँवों में यह धन्धा न चमक उठे। यदि प्रयत्न किया जावे तो भारत डेनमार्क और आयरलैंड की तरह ही मक्खन तथा दूध की अन्य वस्तुओं को विदेशों में भेज सकता है। इस

धन्धे की उन्नति हो जाने से गाँव के किसानों की दशा सुधर सकती है क्योंकि यह धन्धा गाँवों के उपयुक्त है।

दूध और घी के धंधे की हालत

यह तो पहले ही बताया जा चुका है कि भारत में लगभग ८० करोड़ मन दूध प्रति वर्ष उत्पन्न होता है। जनसंख्या के हिसाब से फी आदमी पीछे एक दिन में ५.२ औंस का औसत आता है जब कि योरोप, अमेरिका तथा आस्ट्रेलिया इत्यादि महाद्वीपों के किसी भी देश में एक दिन में फी आदमी ३० औंस दूध से कम का औसत (खाने का) नहीं है। इससे यह तो साफ ही मालूम हो जाता है कि भारत में दूध की उत्पत्ति बहुत कम है। मनुष्य के शरीर को तन्दुरुस्त रखने के लिए डाक्टरों की राय में १६ औंस दूध तो एक दिन में आदमी को पीना चाहिये। हमारे देश में गायों की संख्या संसार के सब देशों से अधिक है लेकिन यहाँ की गाय बहुत कम दूध देती है। जरूरत इस बात की है कि गाय की नस्ल की उन्नति की जाय और अधिक दूध उत्पन्न किया जाय।

भारत में जितना दूध उत्पन्न होता है उसका ५२३ फी सदी घी बनाने के काम आता है, ३१ फी सदी पीने के और बाकी दूध खोया, दही, रबड़ी, कुल्फी इत्यादि में खपता है। इससे यह ज्ञात होता है कि यहाँ घी का धन्धा किसानों के लिये विशेष महत्वपूर्ण है, परन्तु वनस्पति घी के प्रचार से इस धन्धे के नष्ट हो जाने का डर है। इसलिए इस बात की आवश्यकता है कि वनस्पति घी को सरकार कानून बनाकर रंगीन ही तैयार होने दे जिससे वह असली घी में मिलाने के काम न आ सके। दूसरी पञ्चवर्षीय योजना के अन्तर्गत प्रति व्यक्ति पीछे १५ औंस दूध उत्पादन का ध्येय निर्धारित किया गया है।

मांस का धन्धा

भारत में अधिकांश हिन्दू मांस नहीं खाते और जो हिन्दू, मुसलमान तथा अन्य जातियाँ मांस खाने से परहेज नहीं करतीं, उन जातियों के लोग भी कभी-कभी थोड़ा सा मांस खा पाते हैं, क्योंकि अधिकतर लोग निर्धन हैं और

मांस महँगा है। योरोप में साधारण व्यक्ति के भोजन में भी आधा मांस होता है। इस हिसाब से तो भारतीय बहुत कम मांस खाते हैं। यही कारण है कि मांस का धन्धा इस देश में महत्वपूर्ण नहीं है। बात यह है कि घनी आबादी वाले देशों में मांस का धन्धा हो ही नहीं सकता। इसका कारण स्पष्ट है। जितनी भूमि पर एक गाय पाली जा सकती है उतनी भूमि पर यदि फसल पैदा की जाय तो चार या पाँच मनुष्यों का निर्वाह हो सकता है। अतएव कोई घनी आबादी वाला देश अपनी भूमि का इस प्रकार दुरुपयोग नहीं करेगा। यही कारण है कि योरोप के देश जो घने आबाद हैं मांस उत्पन्न नहीं करते वरन् उत्तरी अमरीका, कनाडा तथा अर्जेंटाइना से मँगाते हैं, जहाँ आबादी बहुत कम है और भूमि बहुत है। भारत निर्धन देश है, इस कारण वह विदेशों से मांस मँगाकर भी नहीं खा सकता, और न स्वयं ही अधिक मांस उत्पन्न कर सकता है। यही कारण है कि यहाँ मांस का धन्धा महत्वपूर्ण नहीं है। बड़े-बड़े शहरों और छावनियों में मांस का धन्धा अवश्य होता है। पिछले दिनों फौजों की अत्यधिक मांस की माँग के कारण यहाँ का बहुत सा पशुधन काट डाला गया जिससे देश को बहुत हानि पहुँची और खेती के लिए अच्छे बैलों का मिलना कठिन हो गया।

मुर्गियों के पालने का धन्धा

अन्य देशों में किसान मुर्गियों को पालते हैं और अंडों को बेच कर अपनी आय बढ़ाते हैं। आमदनी के साथ-साथ उन्हें भोजन के लिये भी अंडे मिल जाते हैं। खेती मौसमी धन्धा है। कभी खेती पर बहुत काम होता है तो कभी किसान के लिये कोई काम नहीं होता। इसलिए खेती के अतिरिक्त किसान को सहायक धन्धे की आवश्यकता रहती है। मुर्गी पालने का धन्धा मुख्य सहायक धन्धा है। किन्तु भारत में हिन्दू लोग अपने धार्मिक विचारों के कारण मुर्गी को नहीं पालते। केवल मुसलमान और ईसाई ही अपने घर की आवश्यकताओं के लिए मुर्गी पालते हैं। शहरों में अवश्य अंडे बेचने के लिये कुछ लोग मुर्गियाँ पालते हैं। पशुओं की ही तरह भारत की मुर्गियों की नस्ल भी बहुत खराब हो गई है। मुर्गियों की नस्ल सुधारने के लिए यह जरूरी है कि विदेशों

से अच्छी नस्ल के मुर्गे मँगवाये जायँ और उनसे मुर्गियों की नस्ल की उन्नति की जाय। डेनमार्क और चीन में यह धन्धा बड़ी उन्नत दशा में है। वहाँ से प्रति वर्ष लाखों रुपये के अंडे विदेशों को भेजे जाते हैं। यदि भारत में यह धन्धा पनप जाय तो यहाँ से भी विदेशों को अंडे भेजे जा सकते हैं। उत्तर प्रदेश तथा अन्य प्रदेशों के उद्योग विभाग (Industries Department) मुर्गियों की नस्ल को सुधारने का प्रयत्न कर रहे हैं। भारत में लगभग पाँच करोड़ रुपये के मूल्य के अंडे प्रति वर्ष उत्पन्न होते हैं। द्वितीय पञ्चवर्षीय योजना में प्रति व्यक्ति पीछे ४ अंडे वार्षिक उत्पादन से बढ़ाकर २० अंडे प्रति व्यक्ति पीछे वार्षिक उत्पादन का लक्ष्य है।

भेड़ (ऊन का धन्धा)

भेड़ बहुत उपयोगी जानवर है। भेड़ें भिन्न-भिन्न जाति की होती हैं। कुछ अच्छा और अधिक ऊन उत्पन्न करती हैं, कुछ मांस अधिक उत्पन्न करती हैं। भेड़ शीतोष्ण कटिबन्ध में खूब फूलती-फलती हैं। बहुत गरम देश में ऊन खराब हो जाता है। वास्तव में भेड़ पहाड़ी देश का जानवर है, इसलिए उसको मैदानों की जरूरत नहीं होती। वह पहाड़ी पर ही अपना भोजन प्राप्त कर लेती हैं। इस दृष्टि से भेड़ें पालने का धन्धा बहुत सस्ता है क्योंकि उनके लिए वह भूमि खराब नहीं पड़ती जिस पर खेती नहीं हो सकती है। यही कारण है कि भेड़ें पालने का धन्धा ऐसे प्रदेशों में अत्यन्त महत्वपूर्ण है जहाँ की (भौगोलिक परिस्थिति) जलवायु तथा भूमि कृषि के लिए अच्छी नहीं है।

भारत की भेड़ें खराब नस्ल की होती हैं। आंध्र, राजस्थान, पू० पञ्जाब और काश्मीर ही भारत में ऊन पैदा करने वाले प्रदेश हैं क्योंकि यहाँ वर्षा अधिक नहीं होती। जहाँ वर्षा अधिक होती है वहाँ भेड़ रह ही नहीं सकती। इसी कारण पूर्वी प्रदेशों में भेड़ नहीं पाई जाती। भारत की भेड़ें बहुत खराब होती हैं। साल में एक भेड़ दो पौंड से अधिक ऊन उत्पन्न नहीं करती और ऊन भी बहुत खराब होता है। हाँ, राजस्थान (बीकानेर) आंध्र, मद्रास और पञ्जाब में कुछ अच्छी जाति की भेड़ें भी मिलती हैं जो कुछ अच्छा ऊन

उत्पन्न करती हैं। हिमालय प्रदेश में पट्ट नाम का एक बकरा मिलता है जिसका बाल ऊन के समान होता है। राजस्थान में ऐसे बकरे मिलते हैं जो बाल उत्पन्न करते हैं। भारत में ५ करोड़ ५ लाख पौंड ऊन उत्पन्न होता है। द्वितीय पञ्चवर्षीय योजना में ३ नये भेड़ उत्पन्न करने के फार्म तथा ३६ ऊन विकास केन्द्र खोले जायँगे।

भारत में फारस, अफगानिस्तान, मध्य एशिया, तिब्बत, नैपाल और आस्ट्रेलिया से ऊन आता है। आस्ट्रेलिया के अतिरिक्त और सब देशों से स्थल के मार्ग से ऊन आता है। आस्ट्रेलिया का ऊन बढ़िया होता है, और उसकी अधिकतर खपत भारत के ऊनी कपड़े के कारखानों में होती है।

ऊनी कपड़े का धन्धा

भारत में ऊनी कपड़े, गलीचे, कम्बल और शाल बनाने का धन्धा बहुत पुराना है। मुगल शासन-काल में गलीचे बहुत बढ़िया बनाये जाते थे, किन्तु मुगल साम्राज्य के छिन्न-भिन्न हो जाने पर वह धन्धा गिरने लगा। यद्यपि अब भी भारत से गलीचे विदेशों को जाते हैं। परन्तु बाहर सस्ते गलीचों की ही माँग है। इस कारण सस्ते और घटिया गलीचे ही तैयार किये जाते हैं। आज भी अमृतसर, श्रीनगर, जयपुर, बीकानेर, आगरा, कानपुर, मिर्जापुर और बहुत से जेलों में गलीचे बनते हैं। ये अधिकतर विदेशो को भेजे जाते हैं। शाल का धन्धा काश्मीर में गृह-उद्योग-धन्धे के रूप में बहुत अधिक प्रचलित है।

मुगलों के समय में भारत में शाल बनाने का धन्धा उन्नत दशा में था और बहुत अच्छे शाल बनाये जाते थे। उस समय भारत योरोप को बहुत कीमती शाल भेजता था, किन्तु अंग्रेजी शासन-काल में यह धन्धा भी गिरने लगा। अब तो यह धन्धा करीब नष्ट हो चुका है। केवल देश की माँग को पूरा करने के लिए काश्मीर में यह धन्धा चल रहा है।

इनके अतिरिक्त कम्बल बनाने का धन्धा तो भारत भर के गाँवों में होता है। जहाँ भी ऊन पैदा होता है वहाँ कोरी मोटे और सस्ते कम्बलों को बनाते

है। इन कम्बलों की गाँवों में बहुत माँग रहती हैं। कम्बल के अतिरिक्त काश्मीर में पट्टू बनाने का धन्धा अच्छी दशा में है। देश में पट्टू की काफी खपत होती है। ऊपर लिखे हुए गृह-उद्योग-धन्धों (हाथ से चलाने वाले धन्धे) के अतिरिक्त बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में यहाँ ऊनी कपड़ा बनाने को फैक्टरियाँ भी खुल गईं जो अच्छा ऊनी कपड़ा तैयार करती हैं। यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि भारत का ऊन इतना घटिया होता है कि उससे अच्छा कपड़ा बन ही नहीं सकता। भारत का ऊन कम्बल, रंग, गलीचा फेल्ट तथा दूसरी मोटी चीजें बनाने के काम में आता है। जो कारखाने बढ़िया कपड़े तैयार करते हैं वे आस्ट्रेलिया से ऊन मँगाते हैं। बम्बई, कानपुर और धारीवाल की ऊनी कपड़े की मिलें बढ़िया सर्ज, फलालैन, पट्टी इत्यादि तैयार करती हैं। भारत की मिलें देश की माँग को पूरा करने के लिये ही कपड़ा तैयार करती हैं। यह धन्धा अधिक बढ़ नहीं रहा है क्योंकि ऊनी कपड़े की देश में गरम जलवायु होने के कारण माँग कम है। जो कुछ माँग उत्तर भारत में होती है वह अधिकतर हाथ से बुने हुए मोटे ऊनी कपड़े से पूरी हो जाती है। यही कारण है कि ऊनी कपड़े के कारखाने देश में अधिक नहीं हैं। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत इस धन्धे के विकास का प्रयत्न किया जा रहा है।

आधुनिक ढंग के ऊनी कपड़े बनाने के कारखाने नीचे लिखे स्थानों पर केन्द्रित हैं (१) पूर्वी पञ्जाब में धारीवाल का कारखाना, (२) अमृतसर के ऊनी कारखाने, (३) उत्तर प्रदेश में कानपुर में लाल इमली का प्रसिद्ध कारखाना, (४) बंगलौर का कारखाना, (५) बम्बई के कारखाने।

रेशम के कीड़े पालने का धन्धा

रेशम को एक कीड़ा उत्पन्न करता है। ये रेशम के कीड़े बहुत तरह के होते हैं। भारत में यह चार तरह के होते हैं; रेशम (जो शहतूत की पत्ती पर रहता है), टसर, अंडी और मूँगा। शहतूत पर पलने वाला रेशम का कीड़ा फ्रांस, जापान और चीन में बहुत पाया जाता है।

रेशम के कीड़ों को दो-तरह से पाला जाता है, एक बाहर पेड़ों पर, दूसरे मकानों के अन्दर कमरों में। बाहर पेड़ों पर कीड़ों को पालने के लिए रेशम के कीड़ों का बीज व्यापारियों से ले लेते हैं। रेशम का कीड़ा सो जाता है और अपने चारों तरफ एक रेशम की झिल्ली (Cocoon)* पैदा कर लेता है तब उसे मौथ (moth) अर्थात् रेशम के कीड़े का बीज कहते हैं। ये सोये हुए रेशम के कीड़े (बीज) मौसम आने पर अपनी झिल्ली (Cocoon) काटकर बाहर निकलते हैं और बहुत थोड़े समय में असंख्य अंडे उत्पन्न कर देते हैं। अंडे पत्तियों में रख दिये जाते हैं। नवें दिन अंडे से बच्चे निकलते हैं और वे तुरन्त शहतूत के पेड़ की पत्तियों और डालों पर रख दिये जाते हैं। कीड़े पालने वाले, कीड़ों की बहुत चौकसी रखते हैं नहीं तो चिड़ियाँ कीड़ों को खा जायँ। पेड़ के तने को साफ रक्खा जाता है जिससे कि कोई दूसरे कीड़े पेड़ पर न चढ़ जाएँ। जब कीड़े एक पेड़ की पत्तियों को खाकर खतम कर देते हैं, तो पेड़ की डालियाँ काट ली जाती हैं। इन्हीं डालियों पर कीड़े होते हैं; ये कीड़े वाली डालियाँ नई पत्ती वाले पेड़ में बाँध दी जाती हैं। कीड़े डालियों पर से रेंग कर पत्तियों पर पहुँच जाते हैं। इसी प्रकार पेड़ बदले जाते हैं जब तक कि कीड़े रेशम का ककून (Cocoon) नहीं बना देते।

जो कीड़े कमरे में पाले जाते हैं उनका मौथ (बीज) बाँस की डालों अथवा बाँस की चटाई पर रखा जाता है। लगभग १० दिनों में कीड़े ककून (झिल्ली) को काटकर निकल आते हैं और अगले १० दिन में असंख्य अंडे पैदा कर देते हैं। जब अंडों से बच्चे निकलते हैं तो कोमल शहतूत की पत्तियाँ उन पर डाल दी जाती हैं। कुछ समय बाद कीड़े पत्तियों सहित मचान पर रख दिये जाते हैं। कीड़े पालने वाले को दिन में पाँच बार नई पत्तियाँ रखनी पड़ती हैं, और पहले की पत्तियों को फेंक देते हैं। मकान में सफाई, हवा और

*कुछ बड़े होने पर कीड़े अपने मुँह से रेशम उत्पन्न करते हैं। यह रेशम उनको चारों तरफ से ढँक लेता है और कीड़ा सुप्त अवस्था में पहुँच जाता है। इस रेशम सहित कीड़ों को ककून (Cocoon) कहते हैं।

रोशनी का ठीक प्रबन्ध होना चाहिये नहीं तो कीड़ों में बीमारी फैल जाने का डर रहता है। जब कीड़े रेशम उगलने वाले होते हैं तो वे खाना बन्द कर देते हैं, बेचैन हो जाते और रेशम उगलने लगते हैं। उसी समय पालने वाले मचान से हटाकर कीड़ों को एक पर्दे पर रख देते हैं। जब ककून बन जाते हैं तो उन्हें इकट्ठा करके बाजार में या तो बेच दिया जाता है अथवा भाप से कीड़ों को मार डाला जाता है।

रेशम के कीड़ों को पालने के लिए शहतूत का पेड़ बहुत जरूरी है, क्योंकि रेशम का कीड़ा केवल शहतूत की पत्ती पर ही पाला जा सकता है। काश्मीर से लेकर आसाम तक हिमालय के साथ-साथ शहतूत का पेड़ जंगली अवस्था में पैदा होता है और उस पर जंगली रेशम का कीड़ा मिलता है। बंगाल, मैसूर और काश्मीर में शहतूत के बड़े-बड़े बाग (Plantation) लगाये गये हैं। भारतीय शहतूत के वृक्ष अन्य देशों के वृक्षों से किसी तरह भी खराब नहीं होते वरन् अच्छे होते हैं। एक बार पेड़ लग जाने पर फिर उसकी अधिक देख-माल करने की जरूरत नहीं रहती। वर्ष में दो बार पत्तियाँ तोड़ी जाती (फरवरी-मार्च और अक्टूबर-नवम्बर में)। रेशम के कीड़े पालने वाले इन बागों की पत्तियों को मोल ले लेते हैं। हर तीसरे वर्ष पेड़ों को कलम कर दिया जाता है जिससे कि और अधिक पत्तियाँ निकलें।

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि ककून (Cocoon) इकट्ठा कर लेने पर उन्हें भाप दी जाती है, फिर रीलिंग (reeling) अर्थात् रेशम के तार को निकालने की क्रिया की जाती है। भारत में रेशम के कीड़े की नस्ल खराब हो गई है, और भाप देने तथा रीलिंग की क्रिया भी आधुनिक ढंग से नहीं की जाती। इस कारण भारत का रेशम घटिया होता है।

मैसूर तथा काश्मीर में विदेशों से अच्छे रेशम के कीड़ों के बीज मँगवा कर रेशम के धन्धे की उन्नति करने का प्रयत्न किया गया है।

आजकल देश में रेशम का धन्धा बहुत गिरी हुई दशा में है। विदेशों में भारतीय रेशम की बहुत कम पूछ होती है। विदेशी व्यापारी भारत से

रेशम मँगाने के बजाय, ककून मँगाना अधिक पसन्द करते हैं, क्योंकि यहाँ रीलिंग खराब होती है। यहाँ तक कि भारत के रेशम बुनने वाले भी चीन और जापान के रेशम को काम में लाते हैं। प्रतिवर्ष चीन, इटली और जापान से बहुत सा रेशम भारत में आता है और उसका रेशमी कपड़ा तैयार होता है।

भारत में कच्चा रेशम यथेष्ट उत्पन्न होता है। कई जाति के कीड़े यहाँ पाले जाते हैं। उनमें शहतूत के वृक्ष पर पाला जाने वाला रेशम का कीड़ा, टसर रेशम का कीड़ा, अंडी और मूँगा मुख्य है। भारत में तीन प्रदेशों में मुख्यतः रेशम उत्पन्न होता है। मैसूर का दक्षिणी पठारी प्रदेश और मद्रास का कोयम्बटूर का जिला; दूसरा क्षेत्र पश्चिमी बङ्गाल का मुर्शिदाबाद, वीरभूमि; तीसरा क्षेत्र काश्मीर और जम्मू तथा पूर्वी पञ्जाब का है।

टसर रेशम का कीड़ा छोटानागपुर, उड़ीसा तथा मध्य प्रदेश के कुछ भागों में पाया जाता है। अंडी और मूँगा आसाम में बहुत होता है। उत्तर बिहार में भी रेशम उत्पन्न होता है।

भारत में रेशम की उत्पत्ति

शहतूत पर पाला जाने वाला रेशमी कीड़ा	पौंड	टसर रेशम	पौंड
पश्चिमी बङ्गाल	१०,००,०००	बिहार उड़ीसा	२,४०,०००
मैसूर	७,४०,०००	मध्य प्रदेश	१,६०,०००
काश्मीर	२,३२,०२	उत्तर प्रदेश	१,०००
मद्रास तथा आंध्र	६०,०००	आसाम मूँगा	१,००,०००
आसाम	६,४००	आसाम अंडी	५०,०००
पूर्वी पञ्जाब	१,०००		

रेशम का कपड़ा तैयार करने का धन्धा मुख्यतः घरेलू धन्धा है। अधिकांश रेशमी कपड़ा हाथ कर्घों पर ही बनता है। यों भारत में ६० कारखाने हैं जहाँ रेशम का कपड़ा तैयार होता है। किन्तु देश में केवल तीन

में शक्ति संचालित करघों (पावरलूम) से कपड़ा तैयार होता है। उनमें से एक मैसूर में, एक पश्चिमी बङ्गाल में और एक बम्बई में है।

हाथ करघों पर रेशमी कपड़ा तैयार करने वाले नीचे लिखे केन्द्र मुख्य हैं :—अमृतसर और जालन्धर पूर्वी पञ्जाब में; बनारस, मिर्जापुर और शाहजहाँपुर उत्तर प्रदेश में; मुर्शिदाबाद, बाँकुरा, और विशनपुर पश्चिमी बङ्गाल में; नागपुर मध्य प्रदेश में; भागलपुर बिहार में; अहमदाबाद, पूना, बेलगाँव, धारवार, हुबली और शोलापुर बम्बई में; बङ्गलौर, मैसूर में; बहरामपुर, त्रिचनापली, सलेम और तञ्जौर मद्रास में और श्रीनगर काश्मीर में।

आसाम और बङ्गाल सरकार ने अपने-अपने प्रदेशों के रेशम के धन्धे की उन्नति करने का प्रयत्न किया है। दो स्कूल इस धन्धे की शिक्षा देने के लिये खोले गये हैं। मैसूर राज्य ने जापान से रेशम के कीड़े पालने के विशेषज्ञ बुलाये थे। काश्मीर राज्य ने फ्रांस से विशेषज्ञ बुलाये जो काश्मीर की राजधानी श्रीनगर में एक बहुत बड़ी सिल्क फैक्टरी में काम करते हैं। मुर्शिदाबाद, ढाका, बनारस, शान्तीपुर तथा कुछ अन्य स्थानों पर हाथ के करघों पर रेशमी कपड़ा आज भी बुना जाता है, परन्तु इस धन्धे की दशा बहुत गिरी हुई है। अब तो नकली रेशम का कपड़ा विदेशों से बहुत आने लगा है। इस कारण इस धन्धे की दशा और भी खराब हो रही हैं। भारत में रेशमी वस्तु बनाने के आधुनिक ढङ्ग के कारखाने श्रीनगर, बम्बई, बङ्गलौर, कलकत्ता, तथा कोलीगाल (मैसूर) में स्थापित हैं।

मछलियों का धन्धा

मछली एक अत्यंत महत्वपूर्ण भोजन पदार्थ है और संसार के देशों में इसकी बहुत माँग है। जापान समुद्र, उत्तरी सागर, इंगलैण्ड और योरोप के बीच का समुद्र तथा संयुक्त राज्य अमरीका का पूर्वी समुद्र तट मछलियों के लिये प्रसिद्ध है। वहाँ लाखों आदमी इस धन्धे में लगे हुए हैं।

भारत की नदियों और समुद्र में भी अच्छी जाति की मछलियाँ पाई जाती हैं, परन्तु यहाँ इस धन्धे की दशा अच्छी नहीं है। इसका मुख्य कारण यह है

कि हिंदुओं में ऊँची जति के लोग तो इस धन्धे से घृणा करते हैं। केवल नीच जाति के लोग ही मछलियों को पकड़ने का धन्धा करते हैं। वे न तो शिक्षित होते हैं; और न उनके पास पूँजी ही होती है। इस कारण वे पुराने ढंग को नहीं छोड़ते। मछलियों को पकड़ने का आधुनिक वैज्ञानिक ढंग उन्हें मालूम ही नहीं है। सरकारी मछली विभाग इस ओर प्रयत्नशील है।
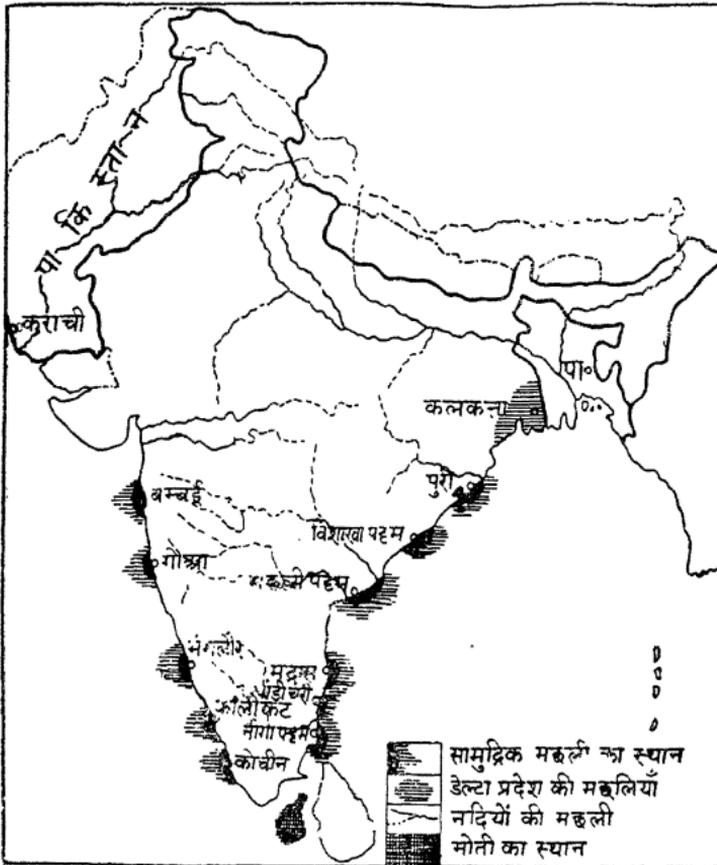
भारत में मछली व मोती का उत्पादन

भारत के पूर्वी प्रदेशों (बिहार, उड़ीसा, पश्चिमी बङ्गाल और आसाम) में मछली बहुत पाई जाती है। वहाँ ६० फी सदी लोग मछली रोज खाते हैं।

चावल और मछली उनका मुख्य भोजन है। हिसाब लगाने से यह पता चलता है कि मछली की माँग इतनी अधिक है कि वह पूरी नहीं हो सकती। पश्चिमी बङ्गाल में नदियों, झीलों और तालाबों में बहुत मछली उत्पन्न होती है। हर एक गाँव के तालाब में मछली पैदा होती है। पश्चिमी बङ्गाल में लगभग आठ लाख आदमी इस धन्धे में लगे हुए हैं। पश्चिमी बङ्गाल और बिहार में मछली पकड़ने वाले लोग जमींदारों से तालाब या झील लगान पर लेते हैं, और मछली पकड़-पकड़ कर उनको व्यापारियों के हाथ बेचते हैं। कुछ वर्षों से बङ्गाल में मछलियों की धीरे-धीरे कमी होती जा रही है। यहाँ समुद्र की मछलियाँ बहुत कम पकड़ी जाती हैं। पश्चिमी बङ्गाल की नदियों, झीलों और तालाबों में यदि आधुनिक ढंग से मछलियों को उत्पन्न किया जाय तो मछलियों की विशेष उन्नति हो सकती है। इस समय जो मछलियों की उत्पत्ति कम हो रही है उसका मुख्य कारण यह है कि भागीरथी, जेलंगी, मधुमती, मात्रभंगी तथा गंगा की धारायें रेती से पटती जा रही हैं। इसका प्रभाव झीलों पर भी पड़ता है। गाँव के जमींदार गाँवों को छोड़ गये हैं, इस कारण तालाब भी पटते जा रहे हैं। साथ ही मछली पकड़ने वाले छोटी-छोटी नवजात मछलियों को भी पकड़ लेते हैं, इस कारण उसकी उत्पत्ति कम होती जा रही है। यही नहीं, तालाबों में मछली पैदा करने का ढङ्ग भी पुराना और खराब है। यदि मछली विभाग आधुनिक ढङ्ग से तालाबों में मछली उत्पन्न करने तथा उनके पकड़ने का तरीका मछुओं को सिखा दे तो बङ्गाल में मछलियों की बहुत उन्नति हो सकती है। बंगाल में हिल्सा, रोहू, कटला, म्रिगेला, प्रांस (Prawns), श्रिम्प्स (Shrimps) नदियों में तथा बेकती, और मुलेत नदियों के मुहाने में मिलने वाली मुख्य मछलियाँ हैं।

समुद्र की मछलियों के लिए आंध्र तथा मद्रास प्रसिद्ध हैं। आंध्र-मद्रास का १७५० मील लम्बा तट छिछले समुद्र के समीप होने से मछलियों का भंडार है। समुद्र-तट पर लगभग एक लाख से अधिक मनुष्य इस धन्धे में लगे हुए हैं। सार्डिन, (Sardines), मैकेरल (Mackerel), ज्यू (Jew), प्रामफ्रेट (Promfret), कैट फिश (Cat fish), रिबन फिश (Ribbon fish),

गागिल्स (Goggles) और सफेद पेटी वाली मछलियाँ (Silver bellies), यहाँ की मछलियाँ है। सार्डिन तो यहाँ इतनी अधिक पकड़ी जाती हैं कि उनका उपयोग तेल और खाद बनाने में भी होता है।

सरकारी मछली विभाग मछुओं को मछली पकड़ने का आधुनिक ढंग, मछलियों का तेल निकालना, तथा उनको सुरक्षित रखना इत्यादि आवश्यक बातें सिखाता है। इसके लिये मछली विभाग ने समुद्रतट के गाँवों में स्कूल खोल दिये हैं। यहाँ नदियों और तालाबों की मछलियाँ बंगाल के समान महत्वपूर्ण नहीं हैं।

बम्बई के समुद्रतट पर भी बहुत से व्यक्ति मछली पकड़ने का धन्धा करते हैं। बम्बई का समुद्र तट अच्छा है और वहाँ मौसम भी अच्छा रहता है। इस कारण वहाँ मछली पकड़ने की अधिक सुविधा है।

प्रामफ्रेट्स (Promfrets), सोल्स (Soles) और सी पर्च्स (Sea-perches) वहाँ की मछलियाँ हैं। बम्बई के मछुये अपने नावों पर एक हफ्ते का खाने का सामान लेकर समुद्र में मछली पकड़ने चले जाते हैं। कभी-कभी हफ्तों समुद्र पर ही मछली पकड़ते रहते हैं। भारत में मछलियों के धन्धे की उन्नति के लिये यह भी आवश्यक है कि मछली के केन्द्रों में शीत भंडार रीति की सुविधा हो।

उड़ीसा—उड़ीसा में समुद्री तथा मीठे जल की मछलियाँ बहुतायत से मिलती हैं। बंगाल की खाड़ी के तट पर तीस हजार वर्ग मील मछली पकड़ने का क्षेत्र है परन्तु इस मछली पकड़ने के क्षेत्र को ठीक तरह से विकसित नहीं किया गया है। हाँ, चिलका झील में मछलियाँ खूब उत्पन्न होती हैं। बिहार से प्रतिवर्ष ५३,७०० मन और उड़ीसा से प्रतिवर्ष ४२,००० मन मछली अन्य प्रदेशों को भेजी जाती हैं।

उत्तर प्रदेश—उत्तर प्रदेश में मछलियाँ गंगा, जमुना, शारदा घाघरा राप्ती और बेतवा नदियों में पाई जाती हैं। इसके अतिरिक्त तालाबों में भी मछलियाँ पाली जाती हैं। नहरों में भी मछलियाँ पाई जाती हैं। उत्तर प्रदेश में रोहू, महासीर, काटला, कालाबाँस, हिल्सा तथा मुरेल मछलियाँ अधिक

पाई जाती हैं। ट्राऊट और प्रांस भी मिलती हैं। उत्तर प्रदेश में यद्यपि बहुत जाति की मछलियाँ मिलती हैं किन्तु मछली पकड़ने का धन्धा उन्नत अवस्था में नहीं है। उत्तर प्रदेश की सरकार ने एक मछली विभाग स्थापित करके राज्य में मछलियों की उन्नति करने का प्रयत्न किया है।

भारत में कुल ५ लाख बीस हजार टन मछली प्रतिवर्ष पकड़ी जाती है जिसमें ७१ प्रतिशत समुद्री और शेष नदियों और तालाबों की होती हैं। प्रथम तथा द्वितीय पञ्चवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत मछलियों के उत्पादन को बढ़ाने का प्रयत्न किया गया है।

अभ्यास के प्रश्न

१—भारत में गाय और बैलों की नस्ल क्यों खराब हो गई है? गाय और बैलों की नस्ल को सुधारने के लिये कौन से उपाय करने चाहिए? (१९५३)

२—मनुष्य को पशुओं से क्या-क्या लाभ तथा हानियाँ पहुँचती हैं? (१९५३)

३—भारत में दूध, मक्खन और घी के धन्धे की कैसी दशा है?

४—भारत में ऊन पैदा करने तथा ऊनी कपड़े बनाने का धन्धा कैसी दशा में है?

५—भेड़ किस प्रकार की जलवायु तथा प्रदेश में पनप सकती है? भारत में ऊन कहाँ पैदा होता है?

६—चमड़े के धन्धे की उन्नति के लिये किन चीजों की आवश्यकता होती है? क्या वे चीजें भारत में मिलती हैं?

७—कानपुर और मद्रास चमड़े के धन्धे के केन्द्र क्यों बन गये?

८—रेशम का कीड़ा किस प्रकार पाला जाता है?

९—रेशम के कीड़े भारत में किन प्रदेशों में पाले जाते हैं?

१०—भारत में मुर्गी पालने की कैसी दशा है और धन्धे की उन्नति किस प्रकार हो सकती है?

११—भारत के समुद्र में कौन-सी मछलियाँ पाई जाती है? मछलियों के धन्धे की दशा वहाँ कैसी है?

१२—बङ्गाल में नदियों और झीलों में पाई जाने वाली मछलियाँ क्यों अधिक होती हैं और इस धन्धे की वहाँ कैसी दशा है?

१३—भारत में पशु-धन की ऐसी हीन दशा क्यों है ? कारण सहित लिखिये और पशुओं की नस्ल का किस प्रकार सुधार हो इसके उपाय बतलाइये ।

१४—भारत में खेती के लिये पशुओं का कितना अधिक महत्व है ? संक्षेप में लिखिये ।

१५—गाय बैलों के आर्थिक महत्व पर प्रकाश डालिये ।

१६—भारत में रेशम उद्योग की कठिनाइयाँ बतलाते हुए उसकी वर्तमान दशा का वर्णन कीजिये और बतलाइए कि वे कठिनाइयाँ कैसे दूर की जा सकती है । (उ० प्र० १९४२)

१७—भारत में दूध के धन्धे की वर्तमान दशा का वर्णन कीजिए । (उ० प्र० १९४९)

१८—भारत में दूध के धन्धे के पिछड़े हुए होने के कारण बतलाइए और उसकी उन्नति के उपाय बतलाइये । (उ० प्र० १९५१)

१९—मछली-उद्योग भारत में क्यों उन्नति नहीं कर रहा है ? कारण दीजिये । (उ० प्र० १९४३)

छठा अध्याय

भारत के खनिज पदार्थ

जहाँ तक खनिज पदार्थ का प्रश्न है, भारत संसार के धनी देशों में नहीं है। फिर भी भारत में कुछ अत्यन्त उपयोगी और आवश्यक वस्तुएँ पाई जाती हैं। उनमें कोयला और लोहा प्रमुख हैं। भारत लोहे की दृष्टि से धनी देश है परन्तु कोयला केवल उसके मूलभूत धन्धों के लिए यथेष्ट है। अल्यूमीनियम, तथा चूने का पत्थर भी भारत में यथेष्ट पाया जाता है। मैंगनीज, टिटेनियम, थोरियम तथा अबरख की दृष्टि से भारत बहुत धनी है। परन्तु भारत खनिज तेल, गंधक, ताँबा, जस्ता, सीसा, टिन इत्यादि की दृष्टि से अत्यन्त निर्धन है। हम नीचे कुछ महत्वपूर्ण खनिज पदार्थों के रक्षित भंडार तथा वार्षिक उत्पत्ति के आँकड़े देते हैं।

भारत के कुछ महत्वपूर्ण खनिज पदार्थ जो भारत की आवश्यकताओं को देखते हुए यथेष्ट हैं :—

नाम	रक्षित भण्डार (लाख टनों में)	उत्पत्ति १९५१ (००० टन)	संसार की उत्पत्ति का प्रतिशत%
कोयला	२००,०००*	३४,६५७	...
कच्चा लोहा (६०%)	१००,०००	३,६५७	१
मैंगनीज ४६%	२००	१,२८३	२५
अबरख	ज्ञात नहीं	१६	४६

*[illegible]
२००,००० लाख टन है; परन्तु पहले रिपोर्ट के अनुसार ६२०,००० लाख टन है। यदि इस अनुमान को भी सत्य मान लें तो भी संसार के कुल रक्षित भण्डार की तुलना में वह नगण्य है।

नाम	रक्षित भण्डार (लाख टनों में)	उत्पत्ति १६५१ (००० टन)	संसार की उत्पत्ति का प्रतिशत%
टिटेनियम	...	...	३०
बाक्साइट	२५००	६७	...
मैगनेसाइट	११००	११७	...
क्रोमाइट	१०	३३	२
जिप्सम	६७०	२०३	...

लोहा

भारत के बहुत से प्रदेशों में लोहा पाया जाता है किन्तु प० बंगाल, बिहार और उड़ीसा लोहा उत्पन्न करने वालों में प्रधान है। सिंहभूमि,
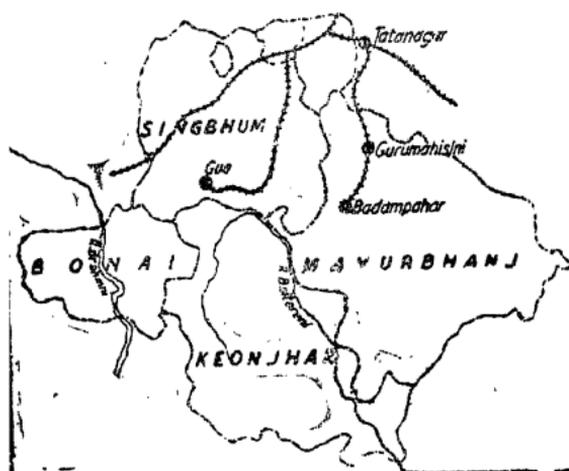
उड़ीसा की लोहे की खानें

क्योंझर, बोनाई, मयूरभंज में अनन्त राशि में लोहा भरा पड़ा है। ऊपर लिखी लोहे की खानें संसार की सबसे धनी खानों में से हैं।

लोहे और इस्पात के मुख्य केन्द्र
पाकिस्तान
१ जमशेदपुर
२ कुलटी
३ हीरापुर
४ आसनसोल - नैपुरिया
५ कलकत्ता
६ भद्रवती
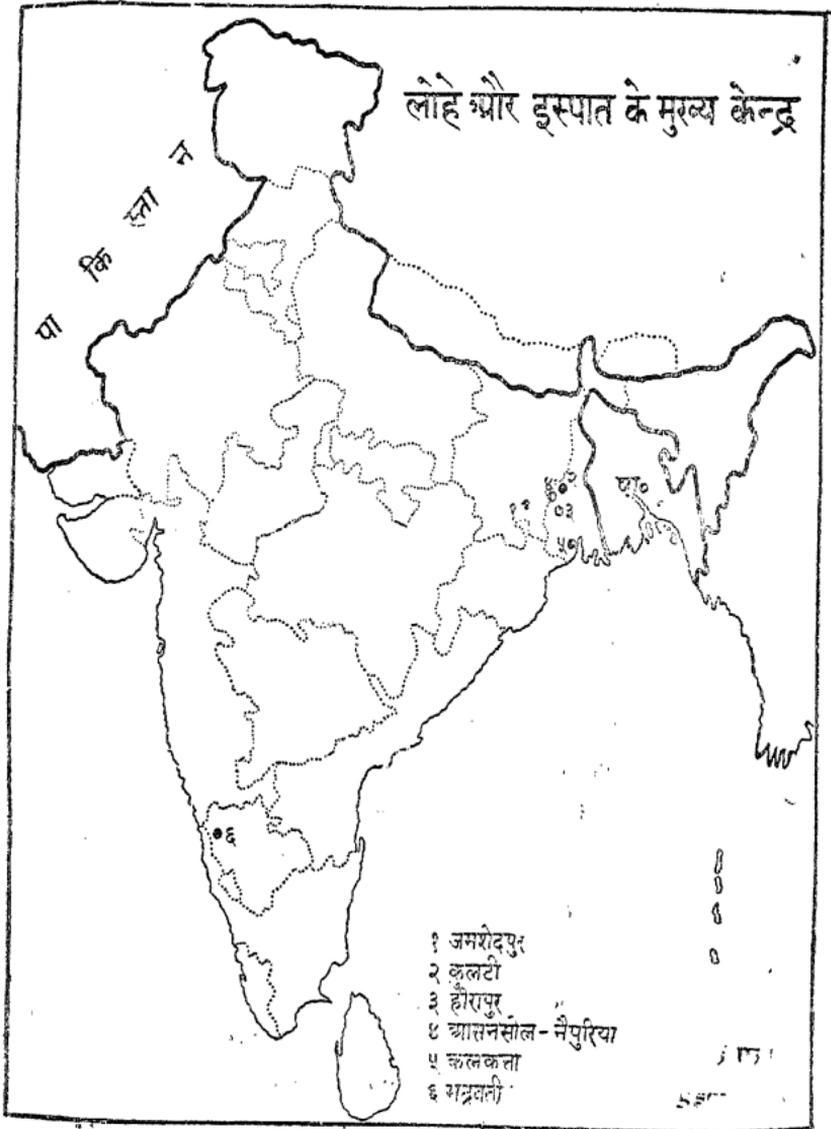
इनके अतिरिक्त मध्य प्रदेश के चाँदा और द्रुग जिलों में और बस्तर में लोहे की खानें हैं। विशेषज्ञों का मत है कि भारत, जहाँ तक लोहे का प्रश्न है, बहुत धनी है।

सिंहभूमि, क्योंझर, बोनाई तथा मयूरभंज वास्तव में भारत के लौह-प्रदेश हैं। इन खानों की गणना संसार की अत्यंत धनी खानों में होती है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि इन खानों में २,८३२ लाख टन लोहा भरा हुआ है। साथ ही इनमें बहुत अच्छी जाति का लोहा है। इन खानों में लोहा बहुधा ऊपर की सतह में ही मिल जाता है। इस कारण उसको खोद कर निकालने में कम खर्च होता है। कहीं-कहीं तो मैदान में ही लोहा निकलता है। इसके अतिरिक्त उड़ीसा में भी लोहे की खानें हैं। इनमें बोनाई की कोमपिलाई पहाड़ी अत्यंत महत्वपूर्ण है जिसको समीपवर्ती पहाड़ियों से भी बहुत अधिक लोहा निकाला जाता है। इस प्रदेश में अच्छी जाति का (हैमैटाइट) कच्चा लोहा भी पाया जाता है।

मैसूर प्रदेश में भद्रावती के कारखानों में कन्दूर जिले के मानगंदी की खानों से निकला हुआ लोहा काम में लाया जाता है। इन खानों में कच्चे लोहे में ६४ प्रतिशत शुद्ध लोहा है; वैसे मैसूर प्रदेश में बाबाबूदन की खानों में हैमैटाइट जाति का लोहा भरा है।

मध्य प्रदेश के द्रुग जिले में राझोरा की पहाड़ियों में काफी हैमैटाइट जाति का लोहा भरा है। चाँदा जिले की लहरा पहाड़ियों में लोहा पाया जाता है। किंतु मध्य प्रदेश की लोहे की खानें कोयले की खानों से दूर हैं। इसलिये उनका उपयोग नहीं हुआ। अब मिलाई के कारखाने में इसका उपयोग होगा।

मद्रास प्रदेश के सलेम और नेलोर जिले में इतना अधिक लोहा भरा पड़ा है जिसका ठीक-ठीक अनुमान ही नहीं किया जा सकता। यह लोहा मैगनेटाइट जाति का है। किंतु यहाँ भी कोयले के न होने से उनका उपयोग नहीं हो सकता। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में लिगनाइट कोयले के उत्पादन पर बल दिया गया है।

ऊपर दिये हुए विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि जहाँ तक लोहे का प्रश्न है, भारत बहुत धनी है। यहाँ का लोहा अच्छी जाति का है और कच्चे लोहे में शुद्ध लोहे का प्रतिशत ६२% से भी अधिक है। अभी तक लोहे का धन्धा पूरी तरह से यहाँ उन्नत नहीं हुआ है। इस कारण उसका पूरा उपयोग नहीं हो सका। जितना लोहा इस समय भारत में निकाला जाता है, उसका आधे के लगभग सिंहभूमि की खानों से निकाला जाता है और अधिकांश कच्चा लोहा ताता के कारखाने में काम आता है। इस समय भारत में ४३ लाख टन कच्चा लोहा उत्पन्न होता है। १९६१ में दूसरी पंचवर्षीय योजना के पूर्ण होने पर देश में १२५ लाख टन कच्चा लोहा उत्पन्न होगा।

मैंगनीज (Manganese)

भारत संसार को मैंगनीज भेजनेवालों में मुख्य है। संसार में सबसे अधिक मैंगनीज भारत में ही निकलता है। स्टील तैयार करने में मैंगनीज का उपयोग होता है। इस कारण यह धातु बहुत महत्वपूर्ण है। मैंगनीज को खानें आंध्र मद्रास, बिहार, उड़ीसा, बम्बई, मध्य भारत, मध्य प्रदेश और मैसूर में पाई जाती है। बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, तीनों प्रदेशों में फैला हुआ एक मैंगनीज क्षेत्र है जिसमें मैंजनीज भरा पड़ा है। ये तीन प्रदेश सबसे अधिक मैंगनीज उत्पन्न करते हैं। भारत में मैंगनोज की बहुत कम खपत होती है। अधिकांश मैंगनीज ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमरीका, जर्मनी, फ्रांस, इटली, जापान, बेल्जियम और हालैंड को भेजा जाता है।

मैंगनीज की खानें

आंध्र-मद्रास—गंजाम, विजगापट्टम, बेलारी और सिंदूर।

बिहार-उड़ीसा—गंगपुर, सिंहभूमि और क्योंझर।

बम्बई—नामकोट, पंच महल, छोटा उदयपुर, रत्नागिरि और धारवार।

मध्य भारत—झबुआ।

मध्य प्रदेश—बालाघाट, भंडारा, छिंदवाड़ा, नागपुर, सिवनी और जबलपुर।
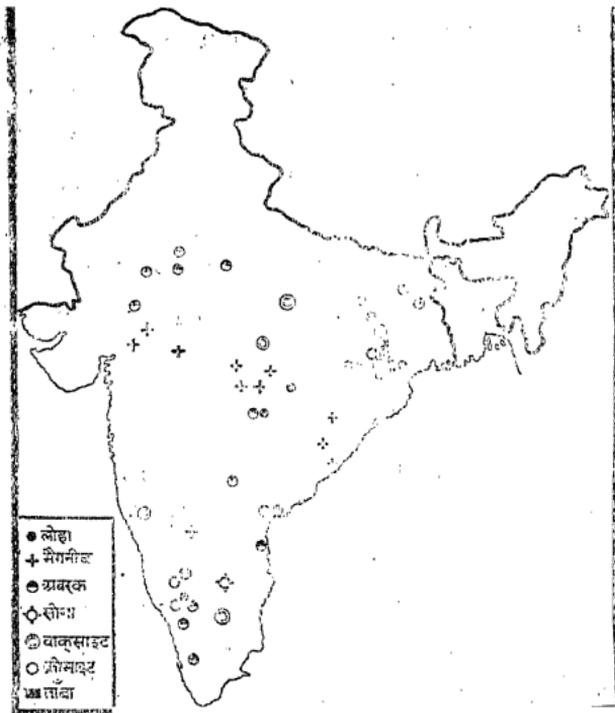
खनिज पदार्थ

मैसूर—चीतल द्रुग, कादूर, शिमोगा और तुमगुर।

भारत से अधिकतर मैंगनीज ब्रिटेन को जाता है। देश में इस समय १४ लाख टन मैंगनीज उत्पन्न होता है। दूसरी योजना के बाद २० लाख टन उत्पन्न होगा।

अबरख (Mica)

भारत संसार का लगभग आधा अबरख उत्पन्न करता है। अबरख उत्पन्न करने वाले तीन क्षेत्र हैं। बिहार में हजारीबाग, गया और मुंगेर जिलों में अबरख की बहुत खानें हैं। मद्रास का नेलोर जिला और राजस्थान में अजमेर, मेरवाड़ और उदयपुर (मेवाड़) में अबरख निकलता है। अबरख का उपयोग

बिजली के काम में होता है भारत अधिकतर अबरख संयुक्त राज्य अमेरिका और ब्रिटेन को भेजता है।

सोना

भारत में मैसूर प्रदेश की कोलार की सोना की खानों ही से अधिकतर सोना निकलता है। पाँच कम्पनियाँ वहाँ सोना निकालने का धन्धा कर रही हैं और लगभग २५,००० मजदूर इन खानों में काम करते हैं। किंतु ये खानें शीघ्रतापूर्वक खत्म हो रही हैं। इसके अतिरिक्त हैदराबाद में हुट्टी को खानों से भी सोना निकाला जाता था किन्तु अब सोना निकाला जाना बन्द कर दिया गया है, क्योंकि खानें लाभदायक नहीं रहीं। मद्रास के अनन्तपुर स्थान में भी सोने की खानें हैं। इन खानों के अतिरिक्त आसाम, बिहार, उड़ीसा और मध्य प्रदेश की नदियों के रेत में सोना मिलता है जिसको किसान रेत धोकर निकाल लेते हैं। किन्तु रेत में सोना इतना नहीं होता है कि आधुनिक ढंग से सोना निकालने का प्रयत्न किया जाय।

बाक्साइट (Bauxite)

बाक्साइट का अल्यूमीनियम बनाने में बहुत उपयोग होता है। मध्य प्रदेश की बालाघाट और कटनी की खानें भारत में सबसे अच्छी हैं और इन खानों से बहुत सा बाक्साइट प्रतिवर्ष निकाला जाता है। इनके अतिरिक्त सरगुजा तथा मंडला (मध्य प्रदेश), छोटा नागपुर (बिहार और उड़ीसा) भूपाल, मैसूर, काश्मीर और विन्ध्य प्रदेश तथा बम्बई के केरा और सतारा जिलों में भी बाक्साइट पाया जाता है, परन्तु अभी इन स्थानों से धातु निकाली नहीं जाती। भारत में अभी एलूमीनियम के बर्तनों का प्रचार कम है। साथ ही यहाँ बिजली सस्ते दामों पर नहीं मिलती जिसके बिना एलूमीनियम का धन्धा पनप ही नहीं सकता। फिर भी कुछ एलूमीनियम के कारखाने खोले गये हैं। इस समय देश में ७५ हजार टन बाक्साइट निकाला जाता है। १९६१ में द्वितीय पंचवर्षीय योजना के समाप्त होने पर एक लाख ७५ हजार टन बाक्साइट निकाला जायगा।

क्रोमियम (Chromium)

क्रोमियम का उपयोग विशेषतः इस्पात बनाने में होता है। यह धातु तीन जगह पाई जाती है—मैसूर, बिहार (सिंहभूमि जिला) तथा उड़ीसा। भारत संसार के क्रोमियम उत्पन्न करने वालों में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। अधिकतर यह धातु विदेशों को भेजी जाती है।

ताँबा

भारत में ताँबा बिहार के सिंहभूमि जिले की खानों से निकाला जाता है, और यहीं धातु गलाकर साफ किया जाता है। इसके अतिरिक्त हजारीबाग जिले, कुमायूँ डिवीजन (उत्तर प्रदेश) तथा सिक्किम में भी ताँबे की खानों का पता चलता है परन्तु अभी तक इन खानों को खोदा नहीं गया है। राजस्थान के खेतरी तथा दारिबों में ताँबे की खानें हैं तथा आंध्र में करनूल जिले की गानी की खानों की खुदाई की जा रही है।

चाँदी और जस्ता

भारत में चाँदी और जस्ता बहुत कम पाये जाते हैं। थोड़ा जस्ता उदयपुर के समीप जावर की खानों से निकाला जाता है।

वोलफ्रम (Wolfram)

टंगस्टन (Tungsten) नामक धातु वोलफ्रम से ही निकलती है। टंगस्टन आजकल बहुत महत्वपूर्ण धातु है। क्योंकि बहुत बढ़िया इस्पात जिससे लोहा काटने वाली, इस्पात में छेद करने वाली और लोहे पर रंदा करने वाली मशीनें और युद्ध के अस्त्र-शस्त्र तैयार किये जाते हैं, बिना टंगस्टन के नहीं बन सकते। सिंहभूमि (बिहार), अमरगाँव (मध्य प्रदेश) और दागाना (जोधपुर) में टंगस्टन पाया जाता है परन्तु निकाला नहीं जाता है।

इमारत का पत्थर

भारत की इमारतों में पत्थर का खूब उपयोग होता है। देश की सब प्रसिद्ध इमारतें पत्थर की बनी हुई हैं। ताजमहल, विक्टोरिया स्मारक तथा राजस्थान के राज्यों के प्रसिद्ध महल पत्थर के ही बने हुए हैं। भारत में विन्ध्य पर्वतमाला के प्रदेश से इमारतों के लिए पत्थर सबसे अधिक और उत्तम निकलते हैं। राजस्थान और मध्य भारत ही विन्ध्य पर्वतमाला का प्रदेश है और यही उत्तर भारत को पत्थर देता है। मद्रास तथा मैसूर में भी इमारत के योग्य पत्थर निकलते हैं। बम्बई, हैदराबाद और मध्य प्रदेश में बासल (Basal) पत्थर निकाला जाता है।

सगमरमर

संगमरमर विन्ध्य पर्वतमाला के प्रदेशों में पाया जाता है और इमारत के लिए सबसे उत्तम पत्थर है। जबलपुर, बैतूल, नागपुर और छिंदवाड़ा (मध्य प्रदेश) में, किशनगढ़ और अजमेर में सफेद सङ्गमरमर का पत्थर निकलता है। किशनगढ़ और जोधपुर का सङ्गमरमर भारत में मशहूर है। प्रसिद्ध ताजमहल और कलकत्ते का विक्टोरिया स्मारक जोधपुर की मकराना की खानों के निकाले हुए सङ्गमरमर के बने हैं। जैसलमेर, मेवाड़ तथा जयपुर में पीला, सफेद और काला सङ्गमरमर निकलता है। इतना पत्थर देश में होने पर भी हमारे देश में इटली से सङ्गमरमर आता है क्योंकि इटली का सङ्गमरमर सस्ता है।

कोयला और मिट्टी का तेल

यहाँ पर कोयले और मिट्टी के तेल के सम्बन्ध में इसलिए कुछ नहीं लिखा गया है क्योंकि इनके सम्बन्ध में "शक्ति के साधन" (Resources of Power) नामक अध्याय में विस्तारपूर्वक लिखा गया है।

शोरा

शोरे का बहुत धन्धों में उपयोग होता है। शीशा बनाने में भोजन को

सुरक्षित रखने में तथा बारूद और विस्फोट पदार्थ बनाने में इनका बहुत उपयोग होता है। भारत में यह धातु केवल बिहार, उत्तर प्रदेश और पञ्जाब में निकाली जाती है। पहले भारत ही संसार को यह धातु भेजता था किन्तु सरकार के अधिक कर लगा देने से इसकी माँग विदेशों में कम हो गई। अब भी दस-ग्यारह लाख रुपये के मूल्य का शोरा विदेशों को भेजा जाता है।

खनिज पदार्थ संबन्धी कुछ उद्योग-धन्धे

यों तो प्रत्येक खनिज पदार्थ एक उद्योग-धंधे का कारण बन जाता है, फिर भी खनिज पदार्थों पर निर्भर निम्नलिखित उद्योग-धंधे उल्लेखनीय हैं :—

(क) लोहा तथा इस्पात

(ख) सीमेन्ट

(ग) शीशा

(घ) अल्यूमीनियम

(च) नमक

(छ) मिट्टी के बर्तन

(ज) चीनी मिट्टी के बर्तन

(झ) ईंट का उद्योग

लोहा-इस्पात तथा शीशे के बारे में हम दसवें अध्याय में लिखेंगे। अल्यूमीनियम अति महत्वपूर्ण धातु बनती जाती है परन्तु हमारे यहाँ अभी इसका आरंभ ही है जैसा कि ऊपर बाक्साइट के बारे में लिखते समय संकेत किया गया है।

नमक

नमक एक अत्यंत आवश्यक भोज्य पदार्थ है। भारत में नमक दो तरह से निकाला जाता है। अधिकांश नमक बम्बई और मद्रास के समुद्र-तटों पर समुद्र के पानी को भाप बनाकर उड़ाने से प्राप्त होता है। राजस्थान की साँभर झील तथा अन्य छोटी-छोटी झीलों से भी नमक निकाला जाता है। नमक का धन्धा सरकार ने अपने हाथ में रख छोड़ा है।

मिट्टी के बर्तन बनाने का धन्धा

भारत में मिट्टी के बर्तनों का बहुत उपयोग होता है। हर एक घर में थोड़े-बहुत मिट्टी के बर्तन देखने को जरूर मिलते हैं। मिट्टी की सुराही, घड़ा, चिलम, हाँड़ी, कुल्हड़, तश्तरी तथा दावात भारत के घर-घर में काम में लाई जाती हैं, और हर गाँव और शहर में कुम्हार इस धन्धे द्वारा अपना जीवन-निर्वाह करते हैं। यद्यपि कहीं-कहीं के कुम्हार सुन्दर बर्तन और खिलौने बनाने के कारण प्रसिद्ध हो गये हैं, परन्तु साधारण कुम्हार तालाब या नदी की मिट्टी से अपने चाक पर इन बर्तनों को बनाकर और उन्हें आग में पका करके अपने गाँव या शहर में बेचते हैं। ये बर्तन शीघ्र टूटने वाले होते हैं और हिन्दुओं की रीति के अनुसार एक बार खाने या पीने के काम आ जाने पर फेंक दिये जाते हैं। बर्तन इतने सस्ते दामों पर बिकते हैं कि इनके बनाने के लिये बड़ा कारखाना नहीं खोला जा सकता। चुनार के मिट्टी के बर्तन भारत में विख्यात हैं।

चीनी मिट्टी के बर्तन

कुछ समय से चीनी मिट्टी के बर्तनों का भी उपयोग बढ़ने लगा है और यह धन्धा बड़े पैमाने पर चलाया जा रहा है। चीनी मिट्टी के बर्तनों (Pottery works) के लिए अच्छी मिट्टी का समीप ही पाया जाना, कोयले के मिलने की सुविधा तथा रेल की सुविधा आवश्यक है। भारत के कुछ प्रदेशों में अच्छी मिट्टी बहुतायत से मिलती है, इसी कारण बहुत से चीनी मिट्टी के बर्तन बनाने के कारखाने खुल गये हैं। कलकत्ता, रानीगंज और झरिया तथा ग्वालियर में बहुत से कारखाने हैं। कलकत्ता तथा रानीगंज और झरिया के कारखाने बहुत बड़ी राशि में बर्तन तैयार करके देश को देते हैं।

ईंट बनाने का धंधा

भारत में ईंटों का इमारतों में बहुत उपयोग होता है। हर एक शहर

और कस्बे के पास ईंटों के भट्टे दिखलाई देते हैं। इन भट्ठों में अधिकतर मजदूर ईंटें हाथ से तैयार करते हैं और उन्हें भट्ठी में पकाते हैं। बङ्गाल और बिहार के भट्ठों में अधिकतर कोयले का उपयोग होता है, किन्तु उत्तर प्रदेश तथा पञ्जाब में लकड़ी का ही उपयोग होता है। इन भट्ठों में अच्छी ईंटें नहीं तैयार हो सकतीं। चूँकि भट्टे शहर के पास ही होने चाहिये, इस कारण मिट्टी अच्छी मिल जाय यह जरूरी नहीं है। कच्ची ईंटें धूप में पड़ी रहने के कारण चटक जाती हैं और हाथ से बनाये जाने के कारण उनके किनारे ठीक नहीं होते। मशीन से बनाई जाने वाली ईंटों में यह दोष नहीं होता; किन्तु ईंट बनाने के बड़े-बड़े भट्ठे वहीं खड़े किये जा सकते हैं जहाँ अच्छी मिट्टी हो और कोयला-लकड़ी के मिलने की सुविधा हो। यह आवश्यक नहीं है कि ये सुविधायें शहर के पास ही मिल जायँ। उस दशा में ईंटों को दूर से ढोने की कठिन समस्या उठ खड़ी हो जाती है। मोटर-लारी के अधिक उपयोग में लिए जाने का यह परिणाम हो सकता है कि शहरों से दूर मशीन से ईंटें तैयार करने का धन्धा पनप उठे।

अभ्यास के प्रश्न

१—भारत में लोहा कहाँ-कहाँ पाया जाता है?

२—लोहे के धन्धे की उन्नति के लिये किन-किन चीजों की जरूरत होती है?

३—मैंगनीज भारत में कहाँ-कहाँ मिलता है और उसका क्या उपयोग होता है?

४—नमक किस प्रकार तैयार किया जाता है? नमक का धंधा भारत में कहाँ-कहाँ होता है?

५—सीमेंट किन चीजों से बनता है और किस काम आता है?

६—भारत में सीमेंट कहाँ बनता है? इस धंधे की दशा कैसी है?

७—शीशे के धन्धे का संक्षिप्त इतिहास लिखिये और उसकी वर्तमान दशा क्या है, यह बतलाइए।

८—शीशे के धन्धे की उन्नति के लिये किन चीजों की जरूरत होती है?

९—चीनी के बर्तन कहाँ बनते हैं और इस धन्धे के लिये किन चीजों की जरूरत पड़ती है?

१०—इमारत के लिये पत्थर भारत में कहाँ से मिलता है?

११—चाँदी, सोना, अबरख और वोलफ्रम भारत में कहाँ से मिलता है?

१२—क्या भारतीय खनिज सम्पत्ति देश की औद्योगिक उन्नति के लिये पर्याप्त है? कारण सहित लिखिये। (१९४८)

सातवाँ अध्याय

वन-प्रदेश

जब कि मनुष्य समाज आदिम अवस्था में था, इस पृथ्वी का अधिक भाग वनों से ढका हुआ था। जैसे जैसे मनुष्य सभ्य होता गया और उसकी
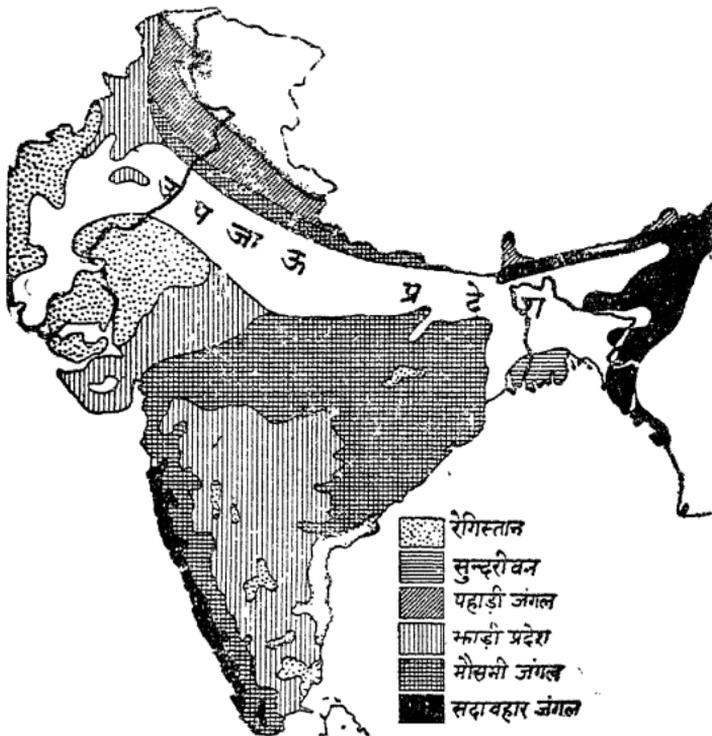
संख्या बढ़ती गई वैसे-वैसे जंगल को काट कर मैदान बनाये जाने लगे। जंगलों को इस प्रकार नष्ट करने का क्रम दो सौ वर्ष पूर्व तक बराबर चलता रहा।

आज से दो सौ वर्षों से कुछ अधिक हुए फ्रेंच तथा जर्मन वैज्ञानिकों ने अपनी खोज के आधार पर यह सत्य प्रकट किया कि आधुनिक उद्योग-धंधे वनों के ऊपर इतने अधिक निर्भर हैं कि यदि वनों को नष्ट कर दिया जाय तो ये धन्धे चल ही न सकेंगे। यही नहीं, उन्होंने इस बात का भी पता लगाया कि किसी देश की जलवायु का वहाँ के जंगलों से बहुत निकट सम्बन्ध है। यदि जंगल काट डाले गये तो उससे देश की जलवायु में हानिकर परिवर्तन होना जरूरी है। तभी से योरोप में वनों को सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया गया और प्रत्येक देश में जंगल-विभाग (Forest Department) कायम किये गये।

बात भी ठीक है। आज प्रत्येक पढ़ा-लिखा व्यक्ति यह जानता है कि जंगल हमारे लिए कितने लाभदायक हैं। जितनी आवश्यकता आज हमें जंगल की वस्तुओं की है उतनी कभी नहीं थी। बड़े-बड़े शहरों में रहने वाले आज जितना जंगलों की चीजों का उपयोग करते हैं उतना जंगल में रहने वाली जंगली जातियाँ भी नहीं करती थीं।

जंगलों से होने वाले लाभ

जंगलों से हमें बहुत लाभ हैं। बहुमूल्य लकड़ी, जिससे भिन्न-भिन्न प्रकार की वस्तुएँ बनती हैं, जंगलों की ही उपज है। कागज, दियासलाई, खिलौने (लकड़ी के), तेल और वार्निश के धन्धे जंगल में उत्पन्न होने वाली लकड़ी या घासों पर निर्भर हैं। जंगल चारे का भण्डार है, जहाँ से जरूरत पड़ने पर पशुओं के लिये चारा मिलता है और पशुओं को पालने वाले अपने पशुओं को वहाँ ले जाकर चराते हैं। लकड़ी के अतिरिक्त जंगलों की बहुत तरह की वनस्पति तथा फल दवाइयों के काम में आते हैं। जंगल के पेड़ प्रतिवर्ष बहुत सी पत्तियाँ पृथ्वी पर डाल देते हैं। वे मिट्टी में मिल जाती हैं, इस प्रकार लगातार सैकड़ों वर्षों तक पत्तियों के मिट्टी में मिलते रहने से मिट्टी में वनस्पति का अंश बढ़ जाता है और वह उपजाऊ हो जाती है। वनों में

बहुत जंगली जानवर मिलते हैं जिनकी खाल और सींग का उपयोग किया जाता है।

ऊपर लिखे हुए लाभ तो प्रत्यक्ष लाभ हैं, परन्तु जंगलों से हमें बहुत अप्रत्यक्ष लाभ हैं जो अधिक महत्वपूर्ण हैं। जङ्गल पानी के बादलों को अपनी ओर खींचते हैं। जहाँ जंगल होता है वहाँ वर्षा अधिक और निश्चित रूप से होती है। मिस्र की नील नदी के डेल्टा में पहले, वर्ष भर में वर्षा के दिनों का औसत ६ दिन था, किन्तु करोड़ों की संख्या में वृक्ष लगाने से वहाँ अब वर्ष में बरसात के दिनों का औसत चालीस है। यदि जंगल साफ कर दिये जायँ तो पानी कम बरसेगा और समय पर नहीं बरसेगा। पेड़ों की जड़ें सारे वन-प्रदेश को एक बहुत बड़े स्पंज के समान बना देती हैं। इससे लाभ यह होता है कि जब पानी बरसता है तो वनप्रदेश बरसात के पानी को खूब सोख लेता है और पृथ्वी के अन्दर बहने वाले जलस्रोत में हर साल और पानी मिलता रहता है। यदि जंगल साफ कर दिये जायँ तो पृथ्वी बहुत कम जल सोख सके और मैदान में पानी बहुत गहराई पर मिलने लगे। किसानों ने सिंचाई के लिए जो कुएँ बनवाये थे वे बेकार हो जायँ। पहाड़ों पर वन खड़े होने से एक और भी बहुत बड़ा लाभ होता है। वे बरसात के पानी को तथा नदियों को मनमाने ढङ्ग से नहीं बहने देते। यदि पहाड़ों पर वन न हो तो वर्षा का पानी बड़े वेग से मैदानों की तरफ दौड़े। इसका फल भयंकर होता है। बड़ी-बड़ी चट्टानें कट कर रास्ते रोक देती हैं, इन चटानों के लुढ़कने से बहुत हानि होती है। बहुत से आदमी मर जाते हैं। केवल यही हानि नहीं होती है, मैदानों में भीषण बाढ़ आ जाती है। पहाड़ों में नदियों के किनारे पेड़ों के न होने से मैदानों में नदियाँ मनमाने ढंग से अपनी धार बदलती हैं, कटाव करती हैं और इनमें भीषण बाढ़ आती है। चीन ने अपने पहाड़ों के जंगलों को साफ कर दिया है। उसका फल आज भी वह बाढ़ों के द्वारा त्रस्त होकर सह रहा है। हर साल लाखों स्त्री-पुरुष बे घर-बार हो जाते हैं और बहुत मर जाते हैं। वनों से एक लाभ और भी यह होता है कि वे प्रति दिन

हवा में बहुत-सा जल देते रहते हैं जिससे गर्मियों में आस-पास का प्रदेश ठंडा रहता है। एक विद्वान् ने ठीक ही कहा है कि जंगल देश की बहुमूल्य सम्सपत्ति है और हमें अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उसकी नितान्त आवश्यकता है।

भारत के वन-प्रदेश

अंग्रेजों के आने से पूर्व भारत में बहुत जंगल थे, किन्तु अंग्रेजों के शासन-काल में जनसंख्या के बढ़ने के कारण लकड़ी की माँग बढ़ गई और खेती के लिए भी अधिक भूमि की आवश्यकता हुई। अतएव बहुत से जंगल साफ कर दिये गये। १८५७ की क्रान्ति के बाद सरकार ने वनों का महत्व समझा और जंगलों की रक्षा करने की आवश्यकता का अनुभव किया। तभी जंगल-विभाग विभिन्न प्रदेशों में खोले गये। तब से हर एक प्रदेश में जंगल-विभाग जंगलों की देख-भाल करते हैं। जंगल-विभाग ने जङ्गलों को चार किस्मों में बाँटा है। १—वे जङ्गल जिनको जलवायु तथा देश की प्राकृतिक अवस्था को देखते हुये सुरक्षित रखना आवश्यक है। २—दूसरे प्रकार के वे जङ्गल हैं जिनसे बहुमूल्य व्यापारिक लकड़ी मिलती है। ३—तीसरे प्रकार के वे जंगल हैं जिनमें घटिया लकड़ी उत्पन्न होती है; यदि उसमें बढ़िया लकड़ी मिलती भी है तो बहुत कम। ४—चौथे प्रकार के जंगल केवल नाम मात्र के जंगल हैं; अधिकतर उनमें केवल थोड़े से पेड़ और घास ही होती है।

देश में लगभग १३ प्रतिशत भूमि विभिन्न प्रदेशों के जंगल-विभागों के अधीन है। परन्तु भिन्न-भिन्न प्रदेशों में जंगलों से ढँकी हुई भूमि बराबर नहीं है। किसी-किसी प्रदेश, जैसे आसाम में जंगल बहुत अधिक हैं और किसी-किसी प्रदेश में जैसे पंजाब में जंगल बहुत कम हैं। यही नहीं; बहुत सी भूमि जो जंगल मान ली गई है, केवल घास उत्पन्न करती है। इस कारण कुछ प्रदेशों में लकड़ी की बहुत कमी है।

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि जंगल-विभाग ने जंगलों को उनके उपयोग के अनुसार भिन्न-भिन्न श्रेणियों में बाँट दिया है। जो जंगल जलवायु की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं उन्हें रिजर्वड् वन कहते हैं, इनमें पशुओं को चराने नहीं दिया जाता। दूसरे प्रकार के जंगलों को रक्षित वन (Protected Forest) कहते हैं। इन जंगलों में मनुष्यों को अपने पशुओं को चराने तथा लकड़ी काटने की सुविधायें दी जाती हैं परन्तु उन पर कड़ी देखभाल रहती है, जिससे जंगलों को नुकसान न पहुँचे। शेष जंगलों को अनक्लास्ड (Unclassed) फारेस्ट कहते हैं। उनमें लकड़ी काटने और पशुओं को चराने पर कोई रोक-थाम नहीं है। केवल सरकार कुछ फीस लेती है।

भारत एक बहुत बड़ा देश है; इसलिये यहाँ बहुत तरह के जंगल मिल सकते हैं। किन्तु निम्नलिखित प्रकार के जंगल मुख्य हैं :—

सूखे वन-प्रदेश

ये वन उन प्रदेशों में पाये जाते हैं जहाँ वर्षा २० इंच से कम होती है। इस प्रकार के वन अधिकतर राजस्थान व दक्षिणी पञ्जाब में पाये जाते हैं। इन वनों में बबूल अधिक पाया जाता है।

सदा हरे रहने वाले वन (Ever-green Forest)

ये वन उन प्रदेशों में पाये जाते हैं, जहाँ वर्षा बहुत होती है। दक्षिण प्रायद्वीप का पश्चिमी समुद्र तट, पूर्वी हिमालय का प्रदेश और आसाम का वह प्रदेश, जहाँ वर्षा अधिक होती है, इन वनों से भरे हैं। इन जंगलों में वनस्पति बहुत सघन होती है। बाँस और बेंत इनमें बहुतायत से पाये जाते हैं।

पर्वतीय वन (Mountain Forest)

इन वनों में वृक्ष पहाड़ की ऊँचाई और वर्षा के अनुसार भिन्न होते हैं। मध्य तथा उत्तर पश्चिमी हिमालय में ऊँचाई के अनुसार एक से वृक्ष पाये

जाते हैं। ये उत्तर प्रदेश, पंजाब तथा काश्मीर में हैं। भारत के वन बहुत महत्वपूर्ण हैं क्योंकि ये बहुत अच्छी लकड़ी उत्पन्न करते हैं। इनमें पाये जाने वाले वृक्षों में कुछ का विवरण दिया जाता है।

देवदार

इस पेड़ की लकड़ी बहुत अच्छी होती है। इसकी लकड़ी से रेलवे स्लीपर बनते हैं, और तेल निकाला जाता है। यह ६० फीट से लेकर १२० फीट तक ऊँचा होता है और इसका तना ३० फीट मोटा होता है।

पाइन-चीड़

पाइन बहुत तरह का होता है। इसकी लकड़ी से फरनीचर बनता है, और तारपीन का तेल तथा बीरोजा (Turpentine and Resin) तैयार किया जाता है।

स्प्रूस (Spruce)

स्प्रूस का वृक्ष बहुत बड़ा होता है, उसकी ऊँचाई डेढ़ सौ फीट तक होती है। इस वृक्ष की लकड़ी संयुक्त राज्य अमेरिका तथा अन्य देशों में अधिकतर कागज बनाने के काम आती है, परन्तु भारत में अभी तक इसका उपयोग इस धन्धे में नहीं हुआ है।

सफेद सनोवर (Silver Fir)

इस वृक्ष की लकड़ी भी स्प्रूस की तरह ही होती है।

इनमें से बहुत से वनों को अभी तक छुआ भी नहीं गया। यदि इनकी लकड़ी का उपयोग किया जाय तो बहुत से धंधे इन प्रदेशों में पनप सकते हैं। इन जंगलों में देवदार के साथ बलूत (oak) के जंगल भी जाते हैं।

पूर्वी हिमालय के वन, जो आसाम में हैं, मध्य और उत्तर-पश्चिमी हिमा- के वनों से भिन्न हैं। इनमें बलूत (oak), सुनहली लकड़ी के पेड़

(Mangolias), लारेल (Laurels) और खासिया पाइन बहुत मिलता है।

पतझड़ वाले वन (Deciduous Forest)

इन वनों में ऐसे वृक्ष हैं जो वर्ष में कुछ समय के लिए बिना पत्तियों के हो जाते हैं। ये वन भारत में बहुतायत से पाये जाते हैं। हिमालय के निचले प्रदेश (Sub-Himalayan Tract) तथा दक्षिण प्रायद्वीप में इस प्रकार के वन बहुत हैं। इन वनों में नीचे लिखे हुए वृक्ष मिलते हैं :—

साल (Sal)

यह बहुत मूल्यवान वृक्ष होता है। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है, इस कारण इसका अधिकतर उपयोग इमारतों और रेल के डिब्बों को बनाने में होता है। हिमालय के निचले प्रदेश (तराई) के अतिरिक्त साल बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश और बरार के जंगलों में भी बहुत मिलता है।

सागवन

सागवन भी बहुत मूल्यवान पेड़ है, इसकी लकड़ी भी बहुत मजबूत होती है। यह अधिकतर आंध्र, मद्रास, मध्य प्रदेश और बम्बई में पाया जाता है।

हल्दू—हल्दू समस्त भारत में पाया जाता है। इसकी लकड़ी साधारण कठोर होती है और फरनीचर तथा सिंगार के संदूक बनाने के काम आती है।

शीशम—उत्तर प्रदेश, पूर्वी पंजाब तथा पश्चिमी बंगाल में बहुत अधिक उत्पन्न होता है। इसकी लकड़ी बहुत कठोर और मजबूत होती है। गाड़ी, रेल के डिब्बे, फरनीचर, नाव तथा इमारत के काम में यह लकड़ी बहुत आती है। यह पंजाब से आसाम तक पाया जाता है।

इंडियन रोज वुड—यह संसार-प्रसिद्ध लकड़ी है। यह पश्चिमी घाट के दक्षिणी भाग, मध्य प्रदेश तथा उड़ीसा के जंगलों में पाई जाती है। यह

अत्यंत मूल्यवान लकड़ी होती है और अधिकतर फरनीचर बनाने के काम आती है।

इरुल और मेसुआ—यह आंध्र तथा मद्रास में मिलता है। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है। इन लकड़ियों के रेलवे स्लीपर बहुत अच्छे बनते हैं। मेसुआ आसाम में भी मिलता है।

चंदन—चन्दन दक्षिण भारत में उत्पन्न होता है। यह अत्यन्त मूल्यवान लकड़ी है। चन्दन का सुगन्धित तेल निकाला जाता है तथा सुन्दर वस्तुएँ बनाई जाती हैं।

सेमल—सेमल बिहार और आसाम में बहुत अधिक पाया जाता है। इसका उपयोग दियासलाई, पैकिंग केस तथा खिलौने बनाने में होता है।

सुन्दरी—यह वृक्ष पश्चिमी बङ्गाल में बहुत पाया जाता है। इसकी लकड़ी कठोर और मजबूत होती है। इसका उपयोग नाव बनाने, फरनीचर, बीम और तख्ते तैयार करने में होता है।

बिजासल—यह बहुत ही कठोर तथा मजबूत लकड़ी है। यह वृक्ष बम्बई, मद्रास और बिहार में बहुत पाया जाता है।

नील देवदार—यह लकड़ी पूर्वी पञ्जाब में बहुत मिलती है और इमारत के काम आती है।

धूपा—पश्चिमी घाट में बहुत मिलती है। इससे गोंद निकलता है और चाय, सन्दूक तथा पैकिंग के काम आती है।

वेन टीक—पश्चिमी समुद्र तट पर मिलती है तथा फरनीचर, जहाज बनाने तथा कहवे के पेस्ट बनाने के काम आती है।

खैर—खैर से कत्था निकलता है। इसके वृक्ष हिमालय की तराई, उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर जिले, मध्य भारत तथा राजस्थान के उदयपुर प्रदेश में पाये जाते हैं।

समुद्रतट के वन

ये वन अधिकतर समुद्र से निकली हुई भूमि पर ही मिलते हैं। इनकी

लकड़ी अधिक उपयोगी नहीं होती, इस कारण वे केवल ईंधन के ही काम आते हैं।

भारत के वनों की विशेषतायें

ऊपर के विवरण से यह तो मालूम हो ही गया होगा कि भारत वनों की दृष्टि से धनी देश है। यहाँ के वनों में बहुमूल्य लकड़ी उत्पन्न होती है और तरह-तरह की अन्य बहुमूल्य वस्तुयें मिलती हैं। परन्तु जिस प्रकार अन्य देशों में वनों की सम्पत्ति का खूब उपयोग किया जाता है और बहुत से धन्धे उन पर निर्भर रह कर चलते हैं, यह बात भारत में नहीं है। इसका मुख्य कारण यह है कि भारत के जङ्गल अधिकतर ऊँचे पहाड़ों पर हैं। बहुत से वन तो ऐसे हैं, जिनके विषय में हमारे जंगल-विभाग भी कुछ नहीं जानते। अत्यंत ऊँचाई पर स्थित उन सघन वनों की लकड़ी खड़ी-खड़ी व्यर्थ में नष्ट हो जाती है, उनका कोई उपयोग नहीं होता। इसका कारण यह है कि हमारे वनों में गमनागमन के साधन बहुत कम उपलब्ध हैं। ऊँचे और सघन वनों की लकड़ी को नीचे मैदानों में लाने के लिए नदियों, सड़कों, ट्राम, तार के रस्सों का रास्ता, लकड़ी के शहतीरों को खींचने वाले छोटे-छोटे इंजनों का अन्य देशों में खूब उपयोग होता है। परन्तु भारत में लकड़ी को पहाड़ मैदान में लाने की सुविधायें बहुत कम हैं, इस कारण हमारे जंगलों का ठीक उपयोग नहीं हो पाता। अब सरकार इस ओर प्रयत्न कर रही है। किंतु केवल गमनागमन के साधन उपलब्ध हो जाने से ही वन-उद्योग-धन्धों की उन्नति नहीं हो सकती। जब तक व्यवसायियों और पूँजीपतियों को यह न मालूम हो जाय कि हमारे जंगलों में पाई जाने वाली लकड़ी का क्या उपयोग हो सकता है, तब तक धन्धे कैसे चलाये जा सकते हैं? अभी तक जंगल-विभाग को बहुत सी लकड़ियों के सम्बन्ध में यह भी ज्ञान नहीं था कि उनका उपयोग किस धन्धे में हो सकता है। फिर जंगल-विभाग व्यवसायियों को क्या सलाह दे सकता है? इस कमी को पूरा करने के लिए सरकार ने देहरादून में एक फारेस्ट रिसर्च इंस्टिट्यूट (Forest Research Institute) स्थापित किया है,

जहाँ विशेषज्ञ भारत के जंगलों में पाई जाने वाली लकड़ियों का क्या व्याव-सायिक उपयोग हो सकता है, इसका अनुसन्धान करते रहते हैं।

भारत में वन-प्रदेश

प्रदेश	वनों का क्षेत्रफल वर्गमील में	देश के क्षेत्रफल का प्रतिशत
मद्रास	१५,२४५	१२·२
	१२,६६८	१७·१
पश्चिमी बंगाल	६,८०३	१३·०
उत्तर प्रदेश	५,२५१	४·६
पूर्वी पञ्जाब	३,८४२	४·१
बिहार	१,७८६	२·६
उड़ीसा	१,६८५	६·२
मध्य प्रदेश	१६,४१३	१६·७
आसाम	१६,३६३	३७·६
अजमेर	१४२	५·१
कुर्ग	८३६	५२·७

अन्य वन पदार्थ—भारत के वनों में लकड़ी के अतिरिक्त अन्य उपयोगी पदार्थ भरे पड़े हैं। अभी तक इनका पूरा-पूरा उपयोग नहीं हुआ है। बाँस, चमड़ा कमाने में काम आने वाले फल और छालें, घास, तेल उत्पन्न करने वाले बीज भविष्य में महत्वपूर्ण धंधों को जन्म देंगे। ये वस्तुएँ हमारे वनों में अनन्त राशि में भरी पड़ी हैं। यों तो भारतीय वनों में अनेक वस्तुएँ हैं किन्तु नीचे लिखी मुख्य हैं, जिनका व्यापारिक उपयोग हो सकता है :—

बाँस, घास, पत्ते जिनका उपयोग बीड़ी बनाने में होता है, रेशेदार पौधे, तेल उत्पन्न करने वाले बीज, फूल, छाल, चमड़ा कमाने में काम आने वाले पदार्थ, गोंद, लाख, रबर, जड़ी बूटियाँ जिनसे दवाइयाँ बनती हैं, मसाले

इत्यादि। इनमें से अधिकांश वस्तुएँ प्रायद्वीप में मिलती हैं। बाँस उन वनों में होता है जहाँ वर्षा बहुत होती है। तेल वाले बीजों में महुआ मुख्य है। यह मध्य प्रदेश और बम्बई में बहुतायत से उत्पन्न होता है। लाख छोटा नागपुर के प्रदेश में बहुत उत्पन्न होता है। चन्दन विशेषकर मैसूर में उत्पन्न होता है। चमड़ा कमाने वाले पदार्थों में बहेड़ा तथा बबूल की छाल मुख्य हैं।

ऊपर के विवरण से यह स्पष्ट हो गया है कि भारत में वन-सम्पत्ति यथेष्ट है। लगभग एक लाख वर्ग मील पर वन खड़े हैं। यद्यपि वन-प्रदेश विस्तृत हैं किंतु जन संख्या को देखते हुए बहुत कम हैं। इसी कारण भारत सरकार ने वन-महोत्सव के द्वारा अधिकाधिक वृक्ष लगाने का प्रयत्न किया है।

वन-उद्योग-धन्धे

भारत के जंगल प्रतिवर्ष बहुत अधिक मूल्य की लकड़ी, घास, फल, बीज, पत्तियाँ तथा अन्य प्रकार की वस्तुएँ देते हैं। इनमें से कुछ का उपयोग कुछ धन्धों में होता है। हम यहाँ उन धंधों का हाल लिखते हैं जो अपने कच्चे माल के लिए वनों पर निर्भर हैं। दियासलाई और कागज के धंधों का विवरण दसवें अध्याय में दिया गया है।

तारपीन का तेल और बीरोजा

पाइन का रेजिन (Resin) पाइन के पेड़ में गहरे खाँचे काँट कर पीपों में इकट्ठा कर लिया जाता है। इसका उपयोग तारपीन का तेल निकालने तथा बीरोजा बनाने के अतिरिक्त लाख, कागज, साबुन, ग्रामोफोन रेकाड, छापने को स्याही, आयलक्लाथ तथा बिजली के काम में होता है। पाइन रेजिन गाढ़ा रस होता है। उसको साफ करके तारपीन का तेल निकालते हैं और बीरोजा बच जाता है। पहले भारत में तारपीन का टेल और बीरोजा विदेश से ही आता था। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में उत्तर प्रदेश तथा पञ्जाब के जङ्गलों में फ्रेंच पद्धति के अनुसार पाइन के जङ्गलों में रेजिन इकट्ठा किया गया और प्रादेशिक सरकारों ने तारपीन का तेल निकालने के कारखाने स्थापित

किये । इसका फल यह हुआ कि अब देश के बने हुए कारखानों से ही तारपीन की सारी माँग पूरी हो जाती है । बाहर से तारपीन का तेल लगभग नहीं के बराबर आता है। भारत में बना हुआ तारपीन का तेल बहुत अच्छा होता है । यदि विदेशों में विज्ञापन किया जाय तो भारत के बने हुए तारपीन के तेल की माँग विदेशों भी बहुत हो सकती है । ब्रिटिश कामनवेल्थ में भारत ही ऐसा देश है जो तारपीन का तेल और बीरोजा तैयार करता है । उत्तर प्रदेश में बरेली में टरपैन्टाइन फैक्टरी है जो तारपीन का तेल और बीरोजा बनाती हैं। पञ्जाब में भी तारपीन का तेल बनाने का कारखाना है ।

लाख

लाख की संसार में बहुत माँग है क्योंकि यह बहुत से धन्धों में काम आती है । लाख को उत्पन्न करने वाले छोटे-छोटे कीड़े होते हैं जो कुछ पेड़ों के रस को चूस कर लाख उत्पन्न करते हैं । लाख का कीड़ा अधिकतर कुसुम, पलास, बेर, पीपल बरगद, गूलर, फालसा, बबूल और क्रोटन की नरम डालों पर लाख उत्पन्न करता है । बहुत से स्थानों पर लाख पेड़ों पर जङ्गली अवस्था में पाई जाती है । जिन स्थानों पर लाख का कीड़ा बिना पाले हुये मिले उस स्थान को लाख के अधिक उपयुक्त समझा जाता है। परन्तु अधिकतर लाख को उत्पन्न करना पड़ता है । कहीं-कहीं लाख उत्पन्न करने के लिए ऊपर लिखे हुए पेड़ों में ऐसी छोटी-मोटी लकड़ियाँ बाँध दी जाती हैं जिनमें लाख के कीड़ों के बीज होते हैं । ये कीड़े जो लाल होते हैं शीघ्र ही सारे पेड़ पर फैल जाते हैं । जून और नवम्बर में नवीन पेड़ों पर लाख का कीड़ा फैलाया जाता है, और फसल छः महीने बाद पेड़ों पर से इकट्ठी कर ली जाती है । तब उसे पीस कर चलनियों से छान लिया जाता है जिससे यह साफ हो जाय । फिर लाख को कई बार धोया जाता है जिससे लाख का रंग धुल जाय और केवल लाख रह जाय ।

भारत ही संसार में ऐसा देश है जो लाख उत्पन्न करता है। प्रति वर्ष आठ करोड़ रुपए की लाख यहाँ से विदेशों को जाती है। सबसे अधिक लाख

उड़ीसा प्रदेश उत्पन्न करता है। लाख उत्पन्न करने वाले क्षेत्रों में उत्तर प्रदेश में मिर्जापुर, बिलासपुर, संथाल परगना, सिंहभूमि, छोटा नागपुर के जिले, मयूरभंज, सारन और मध्य प्रदेश प्रमुख हैं।

कत्था

कत्था की भारत में सर्वत्र माँग है। यह खैर नामक पेड़ की लकड़ी से बनता है। हिमालय की तराई में खैर का पेड़ बहुतायत से उत्पन्न होता है। खैर की लकड़ी से दो चीजें तैयार होती हैं—कत्था और कच। कत्था सारा का सारा भारत में ही खा लिया जाता है, क्योंकि पान खाने की आदत यहाँ लगभग सभी को है। यद्यपि पान में बहुत थोड़ा कत्था लगता है फिर भी हजारों टन कत्था प्रतिवर्ष खप जाता है। अस्तु, कत्था तो विदेशों को बिलकुल नहीं भेजा जाता किन्तु कच (खाकी कत्थे का रंग) सारा का सारा योरप भेज दिया जाता है, जहाँ उसका कपड़ा रङ्गने में उपयोग होता है।

कत्था बनाने के लिये खैर की लकड़ी के छोटे-छोटे टुकड़े कर लिए जाते हैं और उन्हें बड़े-बड़े बर्तनों में उबाला जाता है। उबले हुए पदार्थ को छान कर कत्था और कच (रङ्ग) अलग कर लिया जाता है। बरेली में कत्था बनाने का आधुनिक ढङ्ग का बड़ा कारखाना भी है। उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर जिले तथा राजस्थान के उदयपुर जिले में देशी ढंग से कत्था तैयार किया जाता है।

चमड़ा बनाने के लिए आवश्यक पदार्थ

(Tanning materials)

भारतीय जंगल चमड़ा कमाने के लिए आवश्यक चीजें भी उत्पन्न करते हैं। मेरोबोलन्स का फल चमड़ा कमाने के लिए आवश्यक है और यह फल भारत में बहुत पैदा होता है और प्रतिवर्ष लगभग सत्तर लाख रुपये के मेरो-बोलन्स, हर, बहेड़ा, आँवला विदेशों को भेजे जाते हैं। इस फल के अतिरिक्त बबूल की छाल और तुरवद पेड़ की छाल का चमड़ा कमाने में बहुत उपयोग होता है। तुरवद का वृक्ष दक्षिण और पश्चिम में पाया जाता है। मेरोबोलन्स

(हर्र, बहेड़ा, आँवला) आंध्र, मद्रास, बम्बई, पश्चिमी बङ्गाल, छोटा नागपुर, उड़ीसा तथा अन्य स्थानों पर बहुत पैदा होता है।

ऊपर के विवरण से यह ज्ञात हो गया होगा कि भारत में वन-सम्पत्ति अपार है परन्तु उसका ठीक-ठीक उपयोग नहीं हो रहा है। जब कभी इसका ठीक उपयोग होगा तब देश में बहुत से वन-उद्योग-धन्धे पनप उठेंगे।

अभ्यास के प्रश्न

१—भारत के वनों से हमें क्या-क्या मिलता है? उनसे क्या अन्य लाभ हैं?

२—भारत में वनों की विशेषताएँ क्या हैं? उनका यहाँ के उद्योग और कृषि पर क्या प्रभाव पड़ता है? (१९५३)

३—पहाड़ों पर खड़े हुए वन यदि काट डाले जायें तो उनका क्या परिणाम होगा? (१९४९)

४—भारत में सरकारी विभाजन के अनुसार कितने प्रकार के वन हैं?

५—हिमालय के वनों में कौन से पेड़ मिलते हैं और उनका क्या उपयोग होता है?

६—पतझड़ वाले वनों में कैसी लकड़ी पैदा होती है? उनके नाम लिखो।

७—भारत के वनों का ठीक उपयोग क्यों नहीं हो पाता?

८—दियासलाई के धन्धे के लिये किन चीजों की जरूरत होती है? भारत में दियासलाई के कारखाने कहाँ-कहाँ हैं?

९—लाख किस तरह पैदा की जाती है और उसका उपयोग किस काम में होता है?

१०—भारत में लाख कहाँ-कहाँ अधिक उत्पन्न होती है?

११—कत्था किस चीज से बनता है? भारत में कत्था कहाँ तैयार होता है?

१२—दियासलाई के धन्धे के विषय में तुम क्या जानते हो?

१३—भारतीय वनों की क्या विशेषताएँ हैं? कहाँ तक भौगोलिक कारण उनके लिए उत्तरदायी हैं? (उ० प्र० १९५०)

१४—भारतीय वनों के आर्थिक महत्व पर संक्षिप्त निबन्ध लिखिए। (उ० प्र० १९५१)

आठवाँ अध्याय

शक्ति के साधन

मनुष्य जैसे जैसे अपनी सभ्यता का विकास करता गया, वैसे-ही-वैसे वह प्रकृति से अधिक लाभ उठाता गया। जब मनुष्य प्रकृति के आधीन था उसे बहुत थोड़ी वस्तुओं पर ही निर्वाह करना पड़ता था। परन्तु जैसे-जैसे उसने प्रकृति पर अपना अधिकार जमाना आरम्भ किया वैसे ही वैसे उसने बहुत से पदार्थ बनाने शुरू कर दिये। किन्तु वस्तुओं को बनाने के लिए कच्चा माल और शक्ति की आवश्यकता होती है। यदि यंत्र और मशीनों को चलाने के लिए शक्ति (भाप या बिजली) न हो तो सब मशीनें बेकार पड़ी रहें। यदि मनुष्य शक्ति के नये-नये साधन (भाप, बिजली, गैस) न ढूँढ़ निकालता तो आज जो कल-कारखाने चलते हैं वे न चल सकते। किसी भी देश में कल-कारखानों की उन्नति तभी सम्भव है जब शक्ति के साधन उपलब्ध हों। आधुनिक युग में इतिहास इस बात का साक्षी है कि जिन देशों ने शक्ति की उन्नति की है उन्होंने औद्योगिक उन्नति भी की है। ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमेरिका और जर्मनी इसके उदाहरण हैं।

पशु

आरम्भ में मनुष्य स्वयं अपनी शारीरिक शक्ति के द्वारा ही सारा कार्य करता था। धीरे-धीरे उसको ज्ञात हुआ कि पशुओं की शक्ति उससे कहीं अधिक है। अतः मेहनत वाले कामों में वह पशुओं का उपयोग करने लगा। गदहा, घोड़ा, बैल, ऊँट इत्यादि पशुओं का खेती-बारी का काम करने, गाड़ियों को चलाने, चक्कियों को चलाने, बोझा ढोने तथा मनुष्य को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने के लिए उपयोग होने लगा। यद्यपि आधुनिक काल में मनुष्य

अपनी शारीरिक शक्ति तथा पशुओं की शक्ति का उपयोग पहले से कुछ कम करता है लेकिन फिर भी खेती में और माल ढोने में आज भी पशु-शक्ति का उपयोग होता है।

जल

कुछ समय के उपरान्त मनुष्य ने जल का शक्ति के रूप में उपयोग करना आरम्भ किया। बहते हुए जल में कितनी अधिक शक्ति होती है इसका अनुमान नदी की तेज धार से ही किया जा सकता है। आज कल भी जहाँ जल बराबर तेजी से बहता है वहाँ पानी की चक्कियाँ चलती हैं। भाप के आविष्कार के पूर्व जल की ही शक्ति का अधिक उपयोग होता था। प्राचीन काल में औद्योगिक केन्द्र नदियों के किनारे इसी कारण बसाये गए। परन्तु जल-शक्ति स्थायी नहीं होती। ठंडे देशों में जाड़े के दिनों में जल जम जाता है। गरम देशों में नदियाँ गर्मियों में सूख जाती हैं। किन्हीं महीनों में नदियों में पानी बहुत कम रह जाता है। इस कारण जल शक्ति के द्वारा कारखाने नहीं चलाये जा सकते। इसके अतिरिक्त पहाड़ी प्रदेश में जहाँ जल-शक्ति अधिक मिलती है रेलपथ नहीं बन सकते, इस कारण भी जल-शक्ति का अधिक उपयोग नहीं हो सकता।

हवा

मनुष्य ने केवल जल का ही उपयोग नहीं किया; हवा का भी कारखानों के चलाने में उपयोग किया। हवा में अनन्त शक्ति है। यद्यपि हवा का उपयोग सब स्थानों पर नहीं हो सकता। परन्तु जहाँ भी हवा तेज चलती है वहाँ हवा से ही कारखाने चलाये गए। जहाजों के चलाने में भी वायु का ही उपयोग होता था। कुछ देशों में आज भी वायु से चलने वाली ही चक्कियाँ चलती हैं। परन्तु हवा भी स्थायी शक्ति नहीं है। वह कभी वेग से बहती है तो कभी धीरे-धीरे बहती है और उसकी दिशा भी बदलती रहती है। इस कारण उसका भी कल-कारखानों में अधिक उपयोग नहीं हो सकता।

लकड़ी

अत्यन्त प्राचीन काल से लकड़ी का ईंधन के रूप में उपयोग होता आया है। जहाँ पत्थर का कोयला नहीं मिलता वहाँ आज भी लकड़ी के कोयले का उपयोग होता है। स्वीडन की रेलों में लकड़ी जलाई जाती है। काँगो बेसिन में स्टीम बोट लकड़ी का ही उपयोग करती हैं। परन्तु लकड़ी पत्थर के कोयले से अधिक खर्चीली है; साथ ही यदि लकड़ी का ईंधन के रूप अधिक उपयोग किया जाय तो वन समाप्त हो जायँ। कोई भी देश अपने जंगलों को इस प्रकार समाप्त नहीं कर सकता, क्योंकि वे देश की खेती तथा उद्योग-धंधों के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। इस कारण लकड़ी का भी शक्ति उत्पन्न करने के लिए अधिक उपयोग नहीं किया जा सकता।

कोयला

पत्थर का कोयला पृथ्वी से खोद कर निकाला जाता है। मनुष्य समाज पत्थर के कोयले को डेढ़ सौ वर्षों से ही काम में लाने लगा है। उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में कोयला इतना अधिक महत्वपूर्ण हो गया कि संसार के अधिकांश औद्योगिक केन्द्र कोयले की खानों के समीप ही स्थापित हुए। आज कल कोयला औद्योगिक उन्नति का मुख्य साधन बन गया है। आज बड़े-बड़े कारखाने कोयले के बल पर ही चलते हैं। आज जिन देशों के पास यथेष्ट कोयला है वे ही औद्योगिक उन्नति कर सकते हैं। यद्यपि बीसवीं शताब्दी में जल द्वारा बिजली उत्पन्न की जाने लगी है परन्तु कोयले का महत्व समाप्त नहीं हो सकता।

हजारों वर्षों में यह कोयले की खानें तैयार हुई हैं। जब पृथ्वी पर सघन वन खड़े थे तो यह वृक्ष गिर-गिर कर पृथ्वी पर जमा होते गए। यह क्रिया हजारों वर्षों तक चलती रही और अनन्त राशि में वनस्पति इकट्ठी हो गई। इसके उपरान्त इस अनन्त राशि में जमा हुई वनस्पति के ऊपर नदियों द्वारा लाई हुई मिट्टी जमा होती गई। यही वनस्पति गरमी तथा भार के कारण हजारों वर्षों में कोयला बन गई। किन्तु यह क्रिया बराबर हजारों वर्ष तक

जारी रही, इस कारण कोयले की एक तह के ऊपर दूसरी तह बनती गई। यही कारण है कि कोयले की खानों में कोयले की ये तहें हजारों फीट से भी अधिक मोटाई की मिलती हैं।

कोयला कई जाति का होता है। कोई अच्छी जाति का होता है और कोई घटिया होता है। धातुओं को गलाने के लिए बहुत उत्तम जाति का कोयला आवश्यक है क्योंकि बढ़िया कोयले से ही कठोर कोक बनाया जा सकता है जिससे लोहा तथा अन्य धातुओं को गलाया जा सकता है। बात यह है कि कच्चे पत्थर के कोयले में बहुत सी गैसें तथा अन्य पदार्थ रहते हैं जो कि धातुओं के गलने पर उनसे मिलकर धातु को खराब कर देते हैं। इस कारण बढ़िया कोयले से गैस इत्यादि निकाल कर कठोर कोक बनाया जाता है और उसका उपयोग धातुओं को गलाने में किया जाता है।

साधारण कोयला भाप बनाने के काम में आता है।

कोयले की खानों को खोदने के लिए अच्छी संख्या में कुली चाहिए और रेलवे लाइन चाहिये क्योंकि कोयले को औद्योगिक केन्द्रों में भेजना पड़ता है। और यदि कोयले की खानों के पास ही कारखाने स्थापित किए जाते हैं तो कच्चा माल यहाँ लाना पड़ता है।

भारत में कोयला

भारत में कोयले का वितरण ठीक नहीं है। भारत का नब्बे फीसदी कोयला पश्चिमी बंगाल और बिहार से मिलता है। कुल कोयले का आधा भाग झरिया से और एक-तिहाई रानीगंज से आता है। मध्य प्रदेश और मध्य भारत में छोटी खानें हैं। इनमें घटिया किस्म का कोयला निकलता है। पूर्वी पञ्जाब, आसाम, हैदराबाद में भी कोयले की खानें हैं। हैदराबाद में मध्यम किस्म का कोयला निकलता है। यह भाप बनाने के काम में बहुत बढ़िया सिद्ध हुआ है। उत्तर-पूर्वी आसाम की कुछ खानों में बहुत अच्छा कोयला निकलता है। आसाम की बहुत सी खानों तक रेल नहीं गई है।

भारत में सब प्रकार का कोयला (अच्छा और घटिया) ५४ अरब टन

है। इसमें केवल पाँच प्रतिशत कोयला कठोर कोक बनाने के योग्य है। झरिया के क्षेत्र में २० अरब टन, रानीगंज के क्षेत्र में २१ अरब टन और उत्तरी करनपुर में लगभग ९ अरब टन कोयला भरा पड़ा है। भारत में कठोर कोक बनाने योग्य बढ़िया कोयला अधिकतर झरिया की खानों से ही निकलता है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि बढ़िया कोयला १०० वर्षों में चुक जायगा और साधारण कोयला ३५० वर्ष तक चलेगा।
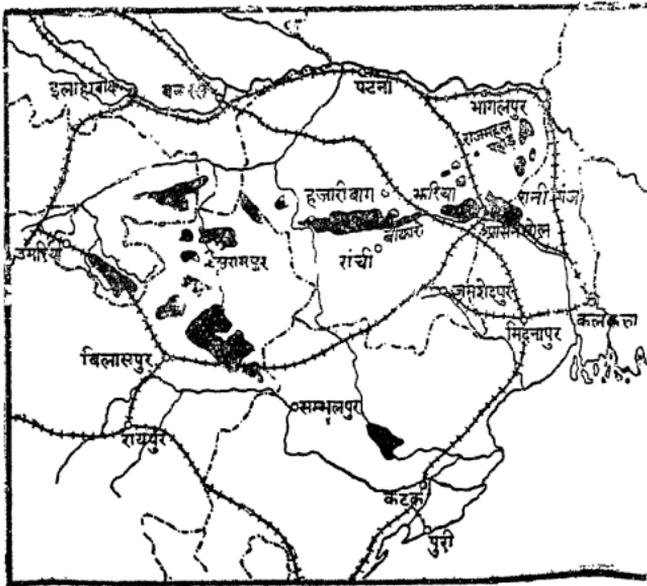
बंगाल, बिहार और मध्य प्रदेश की कोयले की खानें

भारत का ९७ प्रतिशत कोयला गोंडवाना की चट्टानों से निकलता है। ये चट्टानें बहुत पुरानी हैं। इनमें रानीगंज, झरिया, बोकारो, करनपुर तथा गिरडिह कोयले के क्षेत्र प्रमुख हैं। ये कोयले के क्षेत्र बिहार तथा पश्चिमी बंगाल में हैं। बिहार तथा पश्चिमी बंगाल के क्षेत्र से देश का ९० प्रतिशत कोयला निकलता है। गोंडवाना की चट्टानें मध्य प्रदेश में भी फैली हुई हैं जिनमें से शेष ७ प्रतिशत कोयला निकलता है। इनमें पालामऊ जिले की

डालटनगंज की खानें, गोदावरी की घाटी में सिंगरैनी, बल्लपुर तथा वारोरा की खानें और मोहपानी तथा पञ्चघाटी की खानें जो सतपुड़ा के समीप हैं गोंडवाना क्षेत्र में स्थित हैं। ये खानें मध्य प्रदेश में हैं।

गोंडवाना चट्टानों के क्षेत्र के बाहर कोयला आसाम, हैदराबाद, रीवा, तथा बीकानेर में भी पाया जाता है। आसाम में लखीमपुर जिले की खानें अधिक महत्वपूर्ण हैं। उनसे बढ़िया कोयला निकलता है। हैदराबाद की सिंगरैनी की खानें महत्वपूर्ण हैं। बीकानेर में बहुत घटिया कोयले की खानें हैं। कुछ कोयला पूर्वी पंजाब में भी पाया जाता है।

भारत का अधिकांश कोयला देश के अंदर ही खप जाता है। थोड़ा सा कोयला पाकिस्तान तथा पूर्व के देशों को जाता है।

भारत की कोयले की खानें देश के एक कोने में स्थित हैं। अन्य देशों की तरह कोयले की खानों को नदियों अथवा नहरों द्वारा कम खर्च से कोयला भेजने की सुविधा प्राप्त नहीं है। दामोदर घाटी योजना के पूरा हो जाने पर कोयले को नहरों द्वारा कलकत्ता तक भेजने की सुविधा अवश्य प्राप्त हो जायगी। रेल से कोयला देश के सुदूरवर्ती भागों तक ले जाने में व्यय अधिक होता है। इस कारण पश्चिम और दक्षिण भारत को अपनी औद्योगिक उन्नति के लिए कोयले पर निर्भर न रह कर जल-विद्युत् पर निर्भर रहना होगा।

देश के कोयले के भंडार के बारे में ऊपर लिखी हुई जानकारी प्राप्त कर लेने के उपरान्त यह स्पष्ट हो जाता है कि कोयले की दृष्टि से भारत की स्थिति संतोषजनक नहीं है। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत देश में अधिक कोयले को ढूँढ़ निकालने का प्रयत्न किया जा रहा है।

खनिज-तेल

यों तो शक्ति के साधनों में कोयले के बाद पानी ही की गिनती पहले होनी चाहिये। परन्तु पानी के साथ बिजली का सवाल पैदा होगा और बिजली तेल *से कहीं बेहतर समझी जाती है। अतएव पहले बिजली से घटिया साधन

*याद रखिये कि तेल से हमारा मतलब ज़मीन से निकलने वाले तेल से है।

को ही लेना चाहिये। फर्क केवल इतना है कि कोयला और तेल के माँ-बाप एक ही हैं। कोयला एक ठोस पदार्थ है और तेल तरल द्रव। मरे हुए जानवरों और गिरे हुये पेड़ों पर जब पृथ्वी के अन्दर की गर्मी और दबाव का जोर पड़ा तो उनमें से बहता हुआ तेल निकला। तेल निकल जाने के बाद जो अंश बचा रहता है वह कोयला कहलाता है।

मिट्टी से निकलने वाला तेल कई-कई सौ फीट जमीन के नीचे बलुई मिट्टी अथवा बलुई चट्टानों के बीच पाया जाता है। तेल के निकालने के लिए जमीन में पाइप गाड़े जाते हैं। अक्सर तेल के साथ एक प्रकार की गैस बन्द रहती है इसलिए जब पहले पहल पाइप इसके पास पहुँचता है तो यह बड़ी तेजी के साथ ऊपर उछलता है, यहाँ तक कि हवा में सौ-डेढ़ सौ फीट ऊँचा काले तेल का फव्वारा छूट जाता है। यह तेल बहुत भड़कीला होता है। दूर से ही आँच दिखाने पर यह जल उठता है।

जिस हालत में पृथ्वी से यह तेल निकलता है उस हालत में यह किसी काम के लायक नहीं रहता। इसे मिलों में साफ किया जाता है और जमीन से निकले हुए बहुत काले तेल से चार पाँच किस्म के तेल और पदार्थ निकाले जाते हैं जैसे मिट्टी का तेल, पेट्रोल, मोबिल आयल, मोम आदि। मिट्टी के तेल को आप लालटेन में जलाते हैं। खाना पकाने वाले स्टोव (Stove) में भी यही तेल काम देता है। मोम से मोमबत्तियाँ बनाई जाती हैं। बाद में एक तरह का गाढ़ा चिकना तेल (Lubricating oil) बचता है जो मशीन में दिया जाता है। परन्तु सबसे अधिक महत्व पेट्रोल का है। जितना उपयोग इसका किया जाता है उतना किसी का भी नहीं होता। मोटर तथा हवाई जहाज में पेट्रोल ही काम आता है।

पेट्रोल तथा मिट्टी के तेल की दृष्टि से भारत निर्धन राष्ट्र है। भारत में जो कुछ भी पेट्रोल निकाला जाता है वह पूर्व में ही मिलता है। आसाम के लखीमपुर जिले में डिगबोई के तेल-कूप ही प्रमुख तेल क्षेत्र हैं। डिगबोई के अतिरिक्त बायापुंग और हंसापुंग भी महत्वपूर्ण तेल-कूपों के केन्द्र हैं। सुरमा घाटी में घटिया जाति का तेल बदरपुर, मसीमपुर तथा पथरियों में

निकाला जाता है। बदरपुर में अब पहले से तेल की उत्पत्ति घटती जा रही है। आसाम में लगभग ७ करोड़ गैलन पेट्रोल की उत्पत्ति होती है।

आसाम की खानों से पेट्रोल के अतिरिक्त मशीनों को चिकना करने वाला गाढ़ा तेल (लुब्रिकेटिंग आयल) मोम तथा कैरोसीन भी निकलता है। भारत में तेल और पेट्रोल का उत्पादन बहुत कम है और उसकी माँग प्रति दिन बढ़ती जाती है। अतएव कैरोसीन तेल, पेट्रोलियम विदेशों से आता है।

भारत सरकार ने इस कमी को अनुभव करके बम्बई के समीप विदेशी कम्पनियों की सहायता से दो खनिज तेल के शोधन के लिए बड़े कारखाने स्थापित करवाये हैं जहाँ खनिज तेल विदेशों से लाकर उसको साफ किया जाता है। पश्चिमी बङ्गाल, आसाम, राजस्थान के जैसलमेर जिले तथा कच्छ में तेल निकलने की सम्भावना है और भारत सरकार विदेशी विशेषज्ञों की सहायता से खनिज तेल का पता लगा रही है। आशा है कि भविष्य में तेल का उत्पादन बढ़ जायगा।

ईंधन अर्थात् शक्ति के साधनों की कमी के कारण तथा उसका महत्व ध्यान में रखकर भारत सरकार ने—ईंधन अनुसंधान शाला (Fuel Research Institute) की स्थापना की है जिसमें वैज्ञानिक ईंधन के सम्बन्ध में अनुसन्धान करते हैं। इस अनुसन्धानशाला के प्रयोगों के परिणामस्वरूप ईंधन की समस्या को हल करने में बहुत सहायता मिलेगी।

इसके अतिरिक्त वैज्ञानिक तरीके से कृत्रिम पेट्रोल उत्पन्न करने की व्यवस्था भी की जा रही है।

एलकोहल (Alcohol)

यह तो हम ऊपर ही बतला चुके हैं कि जहाँ तक पेट्रोल का प्रश्न है भारत अत्यन्त निर्धन राष्ट्र है। आज के युग में पेट्रोल कितना महत्त्वपूर्ण है यह किसी से छिपा नहीं है। ऐसी दशा में भारत के लिए एलकोहल का धन्धा अत्यन्त महत्वपूर्ण है एलकोहल शीरा तथा आलू से तैयार होता है। भारत में शक्कर के कारखानों में अनन्त राशि में शीरा बिकता है। उसका उपयोग एलकोहल

बनाने में किया जा सकता है। भारत में सर्वप्रथम मैसूर और हैदराबाद में शीरे से एलकोहल बनाने का प्रयत्न किया गया। तदुपरांत उत्तर प्रदेश में मेरठ में एक कारखाना स्थापित हुआ। १९४६ तक उत्तर प्रदेश में ९ कारखाने स्थापित हो गए। भारत में ६० लाख मन शीरा होता है जिससे एक करोड़ गैलन एलकोहल उत्पन्न किया जा सकता है किन्तु इस समय केवल २७ लाख गैलन एलकोहल उत्पन्न होता है। उत्तर प्रदेश, ट्रावंकोर कोचीन तथा अन्य राज्यों में पेट्रोल को एलकोहल के साथ मिलाकर मोटर-गाड़ियों के काम में लाया जाता है। द्वितीय पञ्चवर्षीय योजना के अन्तर्गत एलकोहल के उत्पादन में अधिक वृद्धि की सम्भावना है।

जल-विद्युत् (Hydro-Electricity)

बिजली पैदा करने के लिये किसी साधन द्वारा डाइनमो को घुमाना पड़ता है। यह काम पेट्रोल जलाकर किया जा सकता है। यदि कोयले के जरिये पानी से भाप बनाई जाय और फिर भाप तेजी से डाइनमो के पहिये पर पड़े तब भी वह घूमने लगेगा। परन्तु सोचने की बात तो यह है कि बिजली सुविधाजनक होते हुए भी यदि बहुत महँगी पड़े तो वह किस काम की होगी। अतएव बिजली को और सस्ते दामों में तैयार करने के लिए प्रकृति के अनन्त खजाने--पानी से काम लिया जाने लगा है।

यों तो नदियों में बहने वाले पानी का उपयोग पहले भी होता था, परन्तु बिजली बनाने के लिए नहीं। अधिकतर नदियों के किनारे पनचक्कियाँ खोली जाती थीं। पनचक्की का एक पहिया पानी में रहता था। पानी के बहाव के कारण यह पहिया घूमने लगता था। इसके साथ ही साथ इस चक्की का पाट भी चलने लगता था। ऐसी पनचक्कियाँ यूरोप आदि में पाई जाती थीं और अब भी काफी तादाद में मिलती हैं। भारत में यदि किसी प्रकार पानी से शक्ति का काम लिया जाता था, तो वह नावों के चलाने में। पानी के बहाव के साथ नाव अपने आप बहती जाती थी।

जहाँ प्रकृति ने भारत को कोयले और पेट्रोल की दृष्टि से निर्धन बनाया

है वहाँ उसने भारत में जल-विद्युत् को उत्पन्न करने के साधन से संपन्न करके इस कमी को पूरा कर दिया है। भारत जल-विद्युत् की दृष्टि से अत्यंत धनी है किन्तु अभी तक यहाँ जल-विद्युत् अधिक उत्पन्न नहीं की गई है।

जल-विद्युत् उत्पन्न करने के लिए तीन बातों की आवश्यकता है :— (१) अधिक वर्षा; (२) जल-प्रपात, (३) सब मौसम में पानी की एक-सी धार का होना। भारत के बहुत से प्रदेशों में वर्षा यथेष्ट होती है। साथ ही ऊबड़-खाबड़ होने के कारण नदियाँ बहुत स्थानों में ऊँचे से नीचे तल पर गिरती हैं। अतएव जहाँ तक पहली दो आवश्यकताओं का सम्बन्ध है वे तो पूरी हो जाती हैं। परन्तु भारत में वर्षा प्रत्येक मौसम में नहीं होती है। इस कारण नदियों में किन्हीं महीनों में अत्यधिक पानी होता है और उनमें बाढ़ आ जाती है, किंतु गर्मियों और जाड़ों में नदियों में पानी बहुत कम रह जाता है। इस कारण यहाँ बड़े-बड़े बाँधों को बनाकर जल इकट्ठा करना पड़ता है। वर्षा का जल इन बाँधों में रोक लिया जाता है और उसको ऊँचाई से गिराकर बिजली पैदा की जाती है। इन बाँधों के बनाने में करोड़ों रुपये व्यय होते हैं। इस कारण अन्य देशों की अपेक्षा यहाँ बिजली उत्पन्न करने में व्यय अधिक होता है।

भारत में जल-विद्युत् उत्पन्न करने वाले कारखाने

पश्चिमी घाट के कारखाने

भारत में सबसे महत्वपूर्ण जल-विद्युत् उत्पन्न करने वाले कारखाने पश्चिमी घाट के समीप स्थित हैं। पश्चिमी घाट के समीप घोर वर्षा होती है। उस जल से बिजली उत्पन्न करने की योजना भारत के प्रसिद्ध व्यवसायी ताता के मस्तिष्क की उपज थी। ताता ने देखा कि बम्बई की मिलें कोयले की खानों से बहुत दूर हैं। इस कारण उन्होंने ताता हाइड्रो इलेक्ट्रिक कम्पनी स्थापित की। इस योजना के अनुसार 'लोनावाला', 'वलव्हान', तथा 'शिरवता' नामक तीन बड़ी झीलें बाँध बनाकर तैयार की गईं। वर्षा का जल इन झीलों में इकट्ठा

किया जाता है और १७७५ फीट की ऊँचाई से खापोली शक्तिगृह के पास गिराया जाता है। इस कारखाने की बिजली से बम्बई के सारे सूती कपड़े के कारखाने चलते हैं।

बम्बई में बिजली की माँग इतनी अधिक थी कि ताता कम्पनी उसे पूरा नहीं कर सकती थी, इसलिए उन्होंने आंध्रवैली पावर सप्लाई कम्पनी स्थापित करके अधिक बिजली उत्पन्न की। इस योजना के अनुसार तोकरेवादी के

पश्चिमी घाट के जल-विद्युत् उत्पन्न करने वाले कारखाने

पास एक बड़ा बाँध बनाकर आंध्र नदी को रोक दिया गया है। इस झील का पानी १७५० फीट की ऊँचाई से गिराया जाता है और भिवपुरी पावर स्टेशन में बिजली तैयार होती है। इससे उत्पन्न हुई बिजली को ट्राम कम्पनी तथा मध्य रेलवे काम में लाती हैं।

ताता ने एक तीसरी पावर कम्पनी स्थापित करके 'निलामुला योजना' को

भी पूरा कर दिया। मुलशी नामक स्थान पर निलामुला नदी को एक बाँध बनाकर रोक दिया गया है। इस झील से पानी भिरा के पावर स्टेशन पर गिराया जाता है और बिजली तैयार की जाती है जिसे पश्चिमी तथा मध्य रेलवे काम में लाती हैं।

निलामुला के १०० मील दक्षिण में ताता कम्पनी कोयना नदी के जल को रोक कर बिजली बनाने का प्रयत्न कर रही है।

दक्षिण में जल-विद्युत् उत्पन्न करने वाले कारखाने

दक्षिण भारत कोयले की खानों से बहुत दूर है। इस कारण यहाँ कोयला मँगाने में व्यय अधिक होता था। जब से यहाँ बिजली उत्पन्न होने लगी है उद्योग-धन्धे उन्नति कर गये हैं।

आंध्र तथा मद्रास प्रदेश में जल विद्युत्

मद्रास में कुछ स्थानों को चुनकर वहाँ पावर हाउस स्थापित किये गये हैं। इनमें नीलगिरि पहाड़ियों में स्थित 'पायकरा' विशेष महत्वपूर्ण है। पायकरा नदी को रोक कर यहाँ बिजली उत्पन्न की जाती है। इस बिजली से तामिल प्रदेश में उद्योग-धन्धे खूब पनप उठे हैं। आश्चर्यजनक गति से यहाँ मिलें और कारखाने स्थापित होते जा रहे हैं। कोयमबटूर सूती कपड़े के कारखानों का प्रमुख केन्द्र बन गया है।

पायकारा के अतिरिक्त पापनासम, पालनी पहाड़ियाँ तथा पेरियर शक्ति गृहों (Power Houses) से भी बिजली उत्पन्न की जाती है। मैटूर के समीप कपड़े के बहुत-से कारखाने स्थापित हो गये हैं। इन सभी शक्ति-गृहों से उत्पन्न होने वाली बिजली को लाइनों को जोड़ कर बिजली की एक बड़ी लाइन (Electric-Gird) बना दी गई है। दक्षिण भारत में इन शक्ति-गृहों से बिजली ले जाने वाली लाइनों का एक जाल-सा बिछा है। मद्रास, चिंगलपेट, पांडीचेरी, विलुपुरम, वैलोर, रानीपेट, सलेम, त्रिचूर, डिंडीगल, मदुरा, सादूर, तूतिकोरन, तिनवेली, कोचीन, त्रिपुरा, कोयम्बटूर, कालीकट तथा अन्य बहुत

से नगरों और कस्बों में यह बिजली पहुँचती है। इन शक्ति-गृहों के कारण दक्षिण भारत में उद्योग-धन्धों की तेजी से उन्नति हुई है।

मैसूर में जल-विद्युत्

मैसूर में कावेरी नदी पर शिवसमुन्दरम् जल-प्रपात के समीप शक्ति-गृह स्थापित किया गया है। यहाँ से उत्पन्न की गई बिजली ६२ मील दूर कोलार
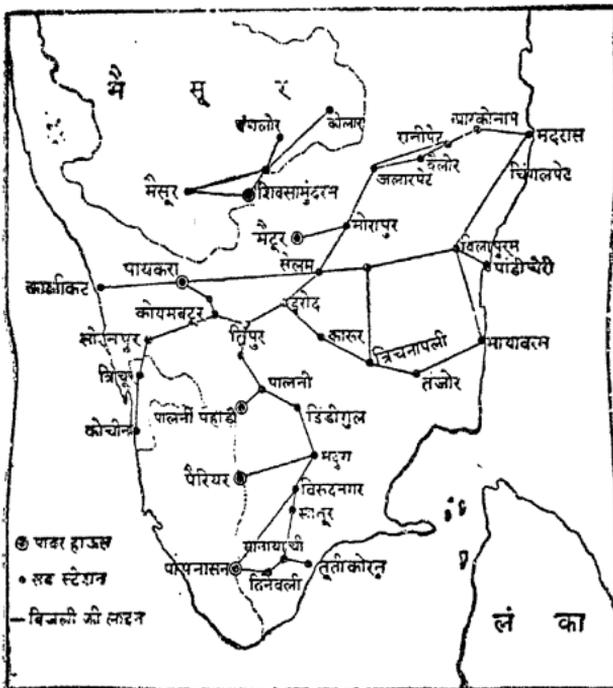
दक्षिण भारत के जल-विद्युत् उत्पन्न करने वाले कारखाने

सोने की खानों में तथा बङ्गलोर के कारखानों में काम आती है। बिजली की माँग अधिक होने के कारण कृष्णराजासागर बाँध बना कर कावेरी नदी के जल को रोक दिया गया है और इस प्रकार शिवसमुन्दरम् शक्ति-गृह से भी अधिक

बिजली उत्पन्न की जा रही है। मैसूर में जल-विद्युत् के कारण ही उद्योग-धन्धों की उन्नति हो पाई है।

इसके अतिरिक्त कावेरी के मैटूर बाँध से निकलने वाली नहरों के जल से तथा कावेरी के मुहाने के नहरों के जल से भी बिजली उत्पन्न की जाती है।

काश्मीर

काश्मीर में झेलम नदी पर बड़ामुल्ला नामक स्थान पर बिजली उत्पन्न की जाती है जो श्रीनगर को ले जाई जाती है।

पूर्वी पंजाब की जल-विद्युत्

उत्तर भारत में मंडी का जल-विद्युत् का कारखाना अधिक महत्वपूर्ण है। शिमला की पहाड़ियों के पास जोगेन्द्रनगर के समीप बिजली उत्पन्न की जाती है। यह बिजली पूर्वी पञ्जाब के लगभग २० कस्बों को दी जाती है। कालान्तर में इससे दिल्ली, मेरठ, सहारनपुर तथा करनाल को बिजली दी जायगी।

उत्तर प्रदेश

उत्तर प्रदेश में बिजली के कारखानों में गङ्गा की नहर से बिजली उत्पन्न करने की योजना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। गङ्गा की नहर के बहुत से जलप्रपातों (आसफनगर, चितौरा, सुमेरा) से बिजली उत्पन्न की जाती है। आसफनगर के समीप ही बहादुराबाद मुख्य शक्ति-गृह है। इसके अतिरिक्त गाजियाबाद के समीप 'भोला' तथा बुलन्दशहर के समीप 'पालरा' पावर स्टेशन हैं जिनमें बिजली उत्पन्न की जाती है। इन सभी शक्ति-गृहों तथा जलप्रपातों से उत्पन्न होने वाली बिजली एक बड़ी बिजली की लाइन (Electric Gird) से जोड़ दी गई है जिसके द्वारा उत्तर प्रदेश के पश्चिमी जिलों को बिजली दी जाती है। सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, मेरठ, बुलन्दशहर, एटा, अलीगढ़, आगरा, बिजनौर तथा मुरादाबाद जिलों को गंगा ग्रिड योजना की बिजली मिलती है। इस बिजली का सिंचाई के लिए बहुत उपयोग हुआ है।

ऊपर के विवरण से ज्ञात होता है कि अभी बहुत कम बिजली उत्पन्न होती है। जब तक यहाँ बिजली अधिक उत्पन्न नहीं होती तब तक यहाँ
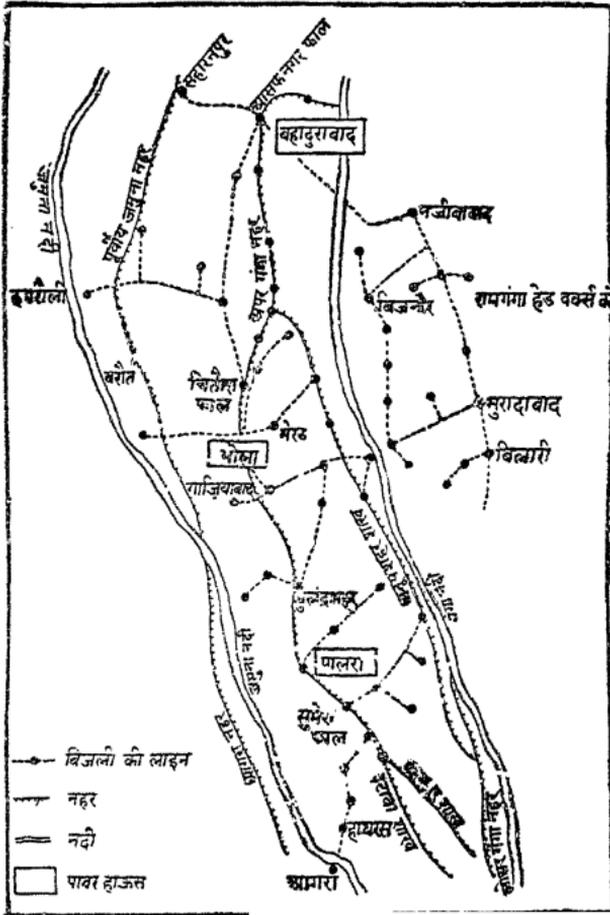
उत्तर प्रदेश के जल-विद्युत् उत्पन्न करने वाले केन्द्र

औद्योगिक उन्नति नहीं हो सकती। कोयला कम तथा घटिया होने के कारण यहाँ के धन्धों की उन्नति बिजली पर ही निर्भर होगी।

जल-विद्युत् की नवीन योजनाएँ

जल-विद्युत् से उद्योग-धन्धों की उन्नति सम्भव होने के कारण अब सरकार न नई-नई योजनायें हाथ में ली हैं और इन पर काम आरम्भ हो गया है।
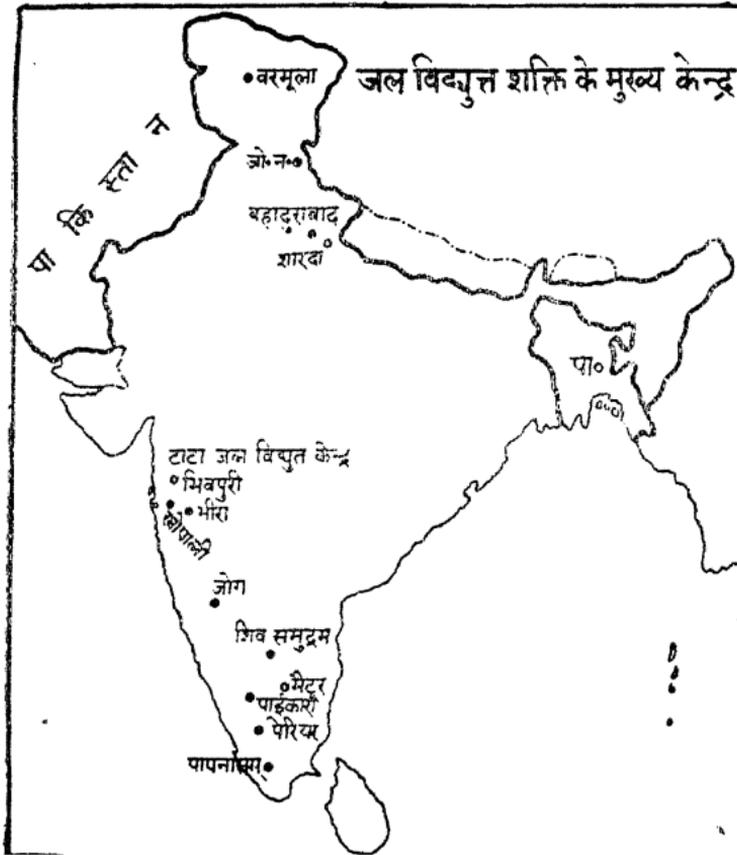
उनमें नीचे लिखी योजनायें मुख्य हैं। इन योजनाओं द्वारा जितनी जल-विद्युत् उत्पन्न होगी और जितने क्षेत्रफल की सिंचाई होगी उनके आँकड़े नीचे दिये जाते हैं।

योजना का नाम	सिंचाई का क्षेत्रफल (एकड़ों में)	बिजली (किलोवाट में)
भाखरा बाँध	४५ लाख	२ लाख
दामोदर घाटी	७$\frac{1}{2}$ लाख	३ लाख
गोदावरी	२५ लाख	१५ हजार
तुंगभद्रा	५ लाख	७ हजार
नायर बाँध		३३ हजार
रिहंड बाँध		१$\frac{1}{2}$ लाख
हीराकुड बाँध		३$\frac{1}{5}$ लाख

दामोदर घाटी योजना

दामोदर घाटी का प्रदेश कलकत्ता के औद्योगिक क्षेत्र के उत्तर पश्चिम

दामोदर घाटी योजना

में स्थित है। यद्यपि आज यह घाटी कृषि तथा औद्योगिक दृष्टि से पिछड़ी

हुई है परन्तु प्रकृति ने इस घाटी को अनन्त राशि में अपनी देन दी है जिससे भविष्य में यह संसार का अत्यन्त धनी और समृद्धिशाली प्रदेश बन सकेगा। दामोदर नदी की बहुउद्देशीय योजना को कार्यान्वित करके इस प्रदेश को समृद्धिशाली बनाने का कार्य शीघ्रता से सम्पन्न किया जा रहा है।

दामोदर नदी अभी तक बिहार का अभिशाप रही है। पिछले सौ वर्षों में इस नदी में २५ बार भयंकर बाढ़ें आईं जिससे लाखों नर-नारी बे घर हो गए और खेती की भयंकर हानि हुई। अतएव इस योजना का एक उद्देश्य इस क्षेत्र की दामोदर की भयंकर बाढ़ों से रक्षा करना भी है।

दामोदर घाटी योजना के अन्तर्गत सात बाँध बनाये जायँगे—तिलैया, कोनार, मैथान, पाँचेतपहाड़ी, ऐयर, बोकारो, और बालपहाड़ी। इन बाँधों से जहाँ दामोदर के जल को रोक लिया जायेगा और उसका उपयोग सिंचाई के लिए किया जायगा वहाँ इन सातों बाँधों पर जल-विद्युत् उत्पन्न करने के लिए शक्ति-गृह खड़े किए जायँगे जिनसे जल-विद्युत् उत्पन्न की जायगी।

इन बाँधों में से तिलैया सन् १९५२ में ही बाँध बन कर तैयार हो गया। कोनार बाँध, तथा मैथान बाँध भी बनकर तैयार हो गये हैं। पांचेत पहाड़ी बाँध निकट भविष्य में बनकर तैयार हो जायेगा।

इन बड़े बाँधों के अतिरिक्त कई छोटे-छोटे बाँध इस नदी-क्षेत्र में बाँधे गए हैं। तिलैया बाँध क्षेत्र में ६ छोटे बाँध बनाये जा चुके हैं और ४ हजारीबाग जिले में बाँधे गये हैं।

तिलैया बाँध, कोनार बाँध, मैथान बाँध, पांचेतपहाड़ी बाँध तथा इनके शक्ति-गृहों के बन जाने पर १०,२५,७६२ एकड़ भूमि की सिंचाई होगी और ३ लाख किलोवाट विद्युत् उत्पन्न होगी। जब ऐयर, बोकारो तथा बालपहाड़ी बाँध और शक्ति-गृह तैयार होंगे और दामोदर घाटी की योजना पूर्ण रूप से विकसित होगी तब सिंचाई और जल-विद्युत् और अधिक विकसित होगी।

दामोदर घाटी योजना से उत्पन्न जल-विद्युत् के द्वारा इस प्रदेश की

औद्योगिक उन्नति अत्यन्त तीव्र गति से होगी। दामोदर घाटी-योजना का क्षेत्र भारत का सबसे महत्वपूर्ण खनिज-क्षेत्र है जिससे देश की दो-तिहाई धातुएँ और खनिज पदार्थ निकाले जाते हैं। दामोदर घाटी क्षेत्र में देश का ८० प्रतिशत कोयला, ६८ प्रतिशत कच्चा लोहा, १०० प्रतिशत ताँबा, ७० प्रतिशत अबरख, १०० प्रतिशत केनाइट (Kaynite), ४५ प्रतिशत चीनी मिट्टी तथा ऐस्बस्टस, ७० प्रतिशत क्रोमाइट, ५० प्रतिशत फाइरक्ले, २० प्रतिशत लाइम स्टोन, १० प्रतिशत इमारती पत्थर और १० प्रतिशत मैंगनीज़ पाया जाता है। दामोदर-घाटी-योजना के विकसित होने पर जब यथेष्ट विद्युत्-शक्ति और जल की व्यवस्था हो जायगी तो इस क्षेत्र की तेजी से औद्योगिक उन्नति होगी।

दामोदर योजना के अन्तर्गत नौका-सञ्चालन के द्वारा जल-यातायात का भी विकास होगा। जल-मार्ग द्वारा कलकत्ता से इस प्रदेश का सम्बन्ध हो जायगा। इन नहरों के द्वारा नावें १५ लाख टन कोयला प्रतिवर्ष ढोवेंगी। इसके अतिरिक्त ५ लाख टन अन्य वस्तुएँ नावों द्वारा ले जाई जायँगी।

दामोदर-घाटी-योजना के अन्तर्गत जो सात बड़े बाँध और कई छोटे बाँध बनाये जायँगे उनके द्वारा निर्मित जलाशयों में मछलियाँ उत्पन्न की जायँगी। ऐसा अनुमान किया जाता है कि इन झीलों में प्रति वर्ष ५० हजार मन मछली उत्पन्न होगी।

इसके अतिरिक्त इस योजना के द्वारा इस प्रदेश में मलेरिया की रोकथाम होगी और मनोरञ्जन के लिए सुन्दर रमणीक स्थान उपलब्ध होंगे।

दामोदर-घाटी-योजना संयुक्त राज्य अमेरिका की टिनेसी घाटी योजना के समान एक बहुउद्देशीय योजना है। इस योजना के पूर्ण हो जाने पर इस प्रदेश में खेती, बड़े उद्योग-धंधे, गृह तथा ग्रामीण उद्योग-धंधे पनप उठेंगे और यह पिछड़ा प्रदेश शीघ्र ही समृद्धिशाली बन जायगा।

रिहंड बाँध—रिहंड बाँध की योजना भी बहुत उद्देश्य वाली एक महत्वपूर्ण योजना है। उत्तर प्रदेश के पर्वी जिलों की कृषि तथा उद्योग धन्धों की

उन्नति के लिये इस योजना को कार्यान्वित किया जा रहा है। यह मिर्जापुर जिले में स्थित है। इससे पूर्वी जिलों को बिजली दी जावेगी। इसकी बिजली
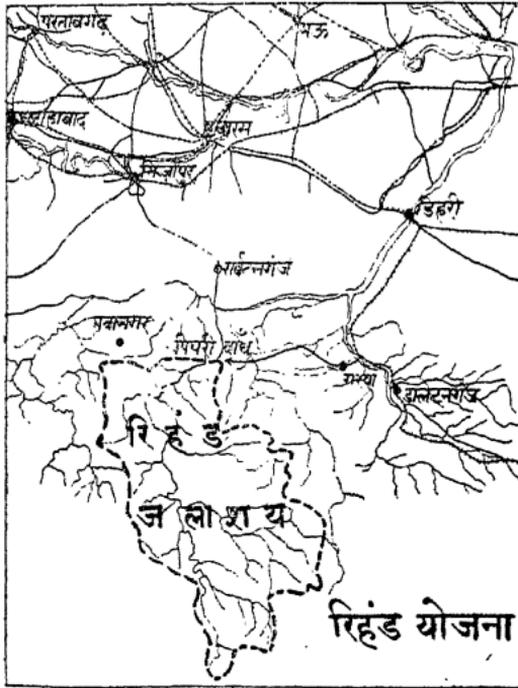
बनारस से लेकर कानपुर के औद्योगिक केन्द्र तक पहुँचेगी और वहाँ के उद्योग-धंधों की उन्नति होगी। मिर्जापुर क्षेत्र में भी इसकी शक्ति से नवीन धन्धे स्थापित होंगे। उत्तर प्रदेश सरकार ने सीमेंट का एक बड़ा कारखाना यहाँ स्थापित कर दिया है जिसका सीमेंट बाँध बनाने के काम आ रहा है।

हीराकुड बाँध— महानदी भारत की एक महत्वपूर्ण नदी है। किन्तु महानदी के जल का अभी तक सिंचाई अथवा जल-विद्युत् उत्पन्न करने के लिये उपयोग नहीं किया गया है। उड़ीसा का प्रदेश खनिज पदार्थों से भरा पड़ा है। यहाँ कोयला, लोहा, बाक्साइट, मैंगनीज, ग्रैफाइट, क्रोमाइट और अबरख

बहुत बड़ी राशि में पृथ्वी के गर्भ में भरे हुए हैं। महानदी प्रति वर्ष ७ करोड़ ४० लाख फीट पानी बहा ले जाती है। उड़ीसा का क्षेत्रफल अब ५०३६ वर्ग मील है और एक करोड़ २० लाख जनसंख्या है। संयुक्त राज्य अमेरिका की प्रसिद्ध टिनेसी घाटी से कई गुना यह प्रदेश साधन-सम्पन्न है परन्तु महानदी के ज़ल का पूरा-पूरा उपयोग न हो सकने के कारण यह प्रदेश निर्धन और अवनत दशा में पड़ा हुआ है।

इस प्रदेश को धन-धान्य तथा उद्योग-धन्धों से भरा-पूरा करने के उद्देश्य से ही हीराकुड बाँध की योजना हाथ में ली गई है। हीराकुड बाँध की योजना बहुमुखी है। उसके द्वारा सिंचाई होगी, जल-विद्युत् उत्पन्न होगी, नावों के द्वारा माल ढोने की सुविधा होगी और आज जो नदी में बाढ़ आने से विनाश होता है वह रोका जा सकेगा।
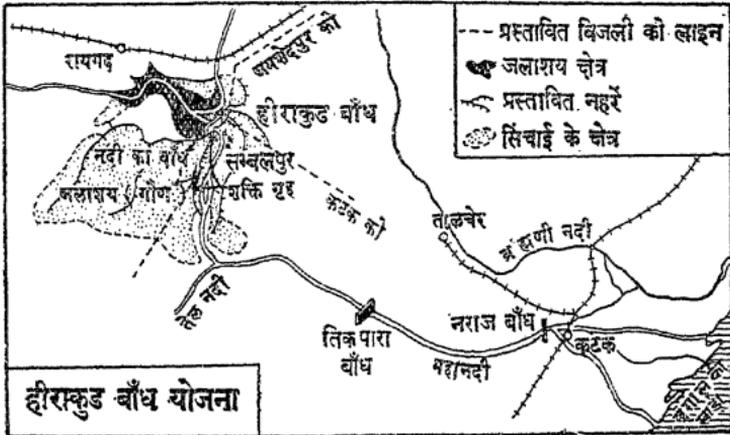
हीराकुड की योजना

हीराकुड बाँध की योजना उड़ीसा के सम्बलपुर जिले में महानदी पर कार्यान्वित हो रही है। इस योजना के पूर्ण हो जाने पर उस प्रदेश में खेती, उद्योग-धन्धों तथा खनिज-धन्धों की आश्चर्य-जनक गति से उन्नति होगी।

इस योजना के अन्तर्गत तीन बड़े बाँध बनाये जायँगे (१) हीराकुड, (२) तिकरपारा, (३) नराज। इन बाँधों के बन जाने पर केवल सिंचाई, बिजली,

नौका-संचालन, बाढ़ नियन्त्रण की सुविधायें ही प्राप्त नहीं होंगी वरन् मलेरिया के प्रकोप को रोकने, मछली के पैदावार को बढ़ाने, भूमि के कटाव को रोकने तथा मनोरञ्जन की बहुमूल्य सुविधायें प्रदान की जायँगी।

हीराकुड बाँध की योजना से लगभग १८ लाख एकड़ भूमि में सिंचाई होगी। दो शक्ति-गृह १·२ लाख किलोवाट शक्ति उत्पन्न करेंगे। यह बिजली कटक और जमशेदपुर तक दी जायगी तथा इस बिजली की लाइन मुचकंद शक्ति-गृह को भी जायेगी। ये बाँध बाढ़ों को रोक कर लगभग १२ लाख रुपये का लाभ करेंगे।

इस योजना के बन कर तैयार हो जाने पर सम्बलपुर के समीप लोहे, सीमेंट शक्कर, कागज, रासायनिक पदार्थों के कारखाने स्थापित किये जायेंगे। इस योजना के फलस्वरूप ३,४०,००० टन अनाज उत्पन्न होगा जिसका मूल्य ३½ करोड़ रुपये होगा। इस योजना के पूर्ण हो जाने पर यह प्रदेश भारत के अत्यन्त समृद्धिशाली प्रदेशों में गिना जाने लगेगा।

भाखरा नंगल बाँध—भाखरा बाँध पूर्वी पञ्जाब में सतलज नदी के जल से सिंचाई तथा जल विद्युत् उत्पन्न करने के लिए बनाया जा रहा है। यह शीघ्र ही बनकर तैयार होने वाला है। इससे ३६ लाख एकड़ भूमि पर सिंचाई होगी तथा १·४ लाख किलोवाट बिजली तैयार होगी।

कोसी योजना—बिहार की कोसी योजना सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। यह बहु-उद्देशीय योजना है। इसके बनकर तैयार हो जाने पर सिंचाई, शक्ति उत्पादन, नौका-वहन, बाढ़ों से समीपवर्ती प्रदेशों की रक्षा, भूमि के कटाव को रोकने, मलेरिया के प्रकोप को रोकने, भूमि को उपजाऊ बनाने आदि की व्यवस्था की जायगी। इसके अतिरिक्त मछली उत्पन्न करने की सुविधा प्राप्त होगी। इस योजना के अन्तर्गत चन्द्रा घाटी में ७५० फीट की ऊँचाई पर नैपाल में एक विशाल बाँध बनाया जायगा जिसमें अनन्त जल-राशि इकट्ठी की जायगी। कोसी नदी पर दो बाँध बनाये जायेंगे—एक नैपाल में दूसरा नैपाल बिहार की सीमा पर। नैपाल में इसकी नहरों से दस लाख एकड़ भूमि
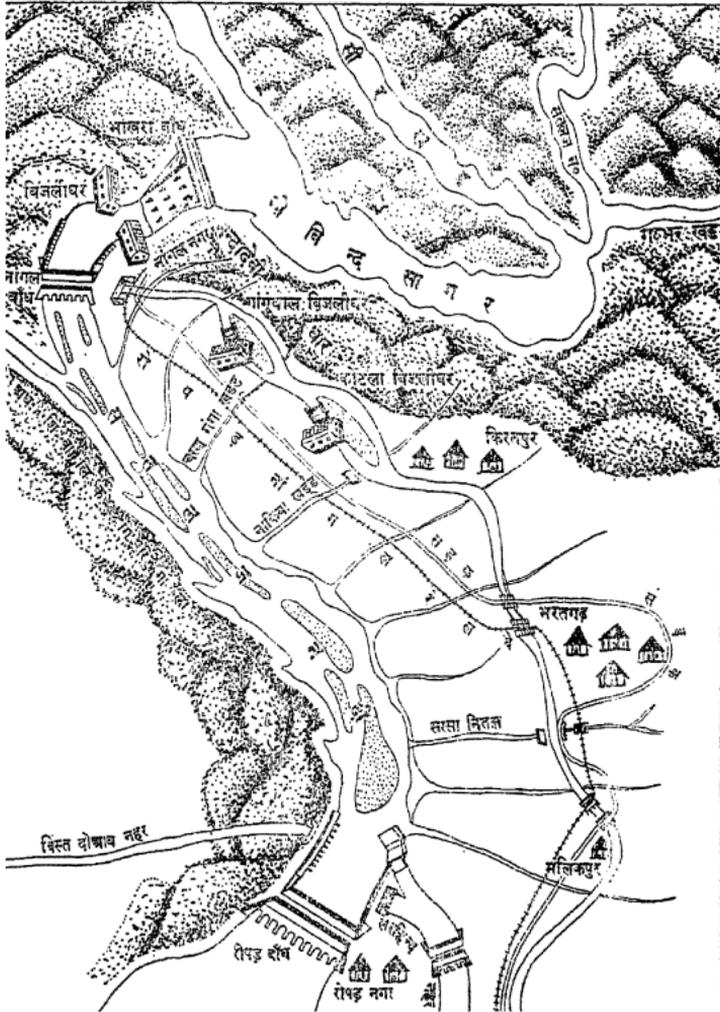
भाखरा बाँध

पर सिंचाई होगी और बिहार में पुर्निया, दरभङ्गा और मुजफ्फरपुर में बीस लाख एकड़ भूमि सींची जायेगी। इसके अतिरिक्त इस योजना से ४० हजार

किलोवाट बिजली उत्पन्न होगी। इसके बनाने में १० करोड़ रुपया व्यय होगा। इस पर कार्य आरम्भ हो गया है।
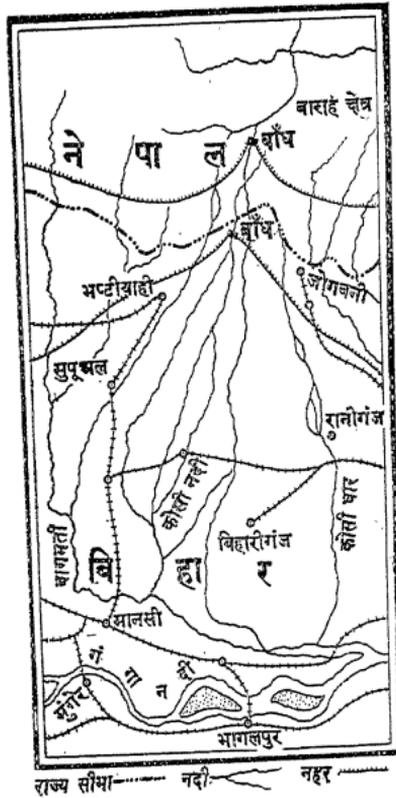
कोसी योजना

तुङ्गभद्रा योजना—तुङ्गभद्रा नदी कृष्णा की सहायक नदी है। इस नदी पर एक बाँध बनाया जा रहा है।

यह योजना हैदराबाद और मद्रास राज्यों के सहयोग से तैयार की गई है। वास्तव में इस योजना का मुख्य उद्देश्य रायलासीमा के दुर्भिक्ष पीड़ित प्रदेश की स्थिति में सुधार करना है। इस योजना के अन्तर्गत तुङ्गभद्रा नदी

को एक ३६४२ फीट लम्बा और १६० फीट ऊँचा बाँध बनाकर रोक दिया
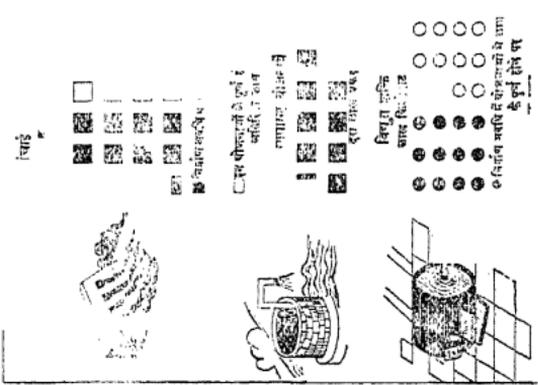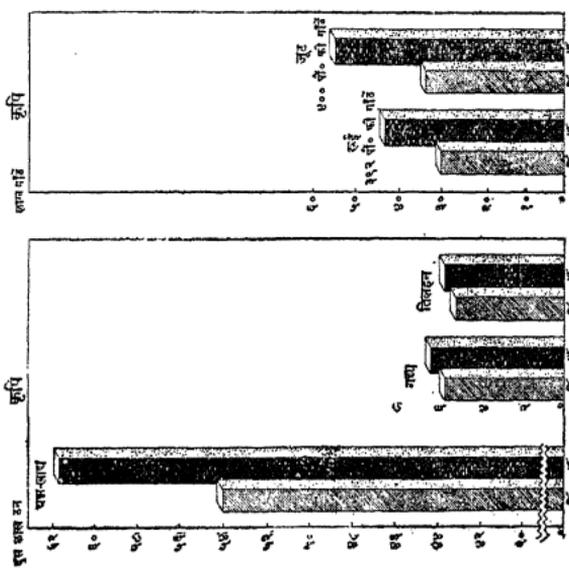
प्रथम पंचवर्षीय योजना का लक्ष्य

गया है। यह बाँध मद्रास राज्य के हौसपेट नामक नगर के समीप बनाया गया है। यह बाँध २१ लाख एकड़ फीट जल एकत्रित कर सकता है। इस बाँध के दोनों ओर दो नहरें निकाली गई हैं। बाईं ओर की नहर हैदराबाद राज्य को सींचती है। इस नहर के द्वारा हैदराबाद के शुष्क प्रदेश में ४½ लाख एकड़ भूमि सींची जायगी और दाहिनी ओर की नहर मद्रास और आंध्र राज्यों के रायलसीमा के शुष्क प्रदेश में २½ लाख एकड़ भूमि सींचती है। इन नहरों के फलस्वरूप १४०,००० टन खाद्यान्न पैदा होगा, ८० हजार टन व्यापारिक फसलें उत्पन्न होंगी। यह योजना १६५४ में पूर्ण हो गई। इस योजना से अभी २२ हजार किलोवाट विद्युत उत्पन्न की जा रही है परन्तु आगे चलकर ४५ हजार किलोवाट शक्ति उत्पन्न होगी। इस सम्पूर्ण योजना की लागत ४२ करोड़ रुपये हैं। अब इस योजना द्वारा रायलासीमा का प्रदेश हरा-भरा और समृद्धिशाली बन जायेगा।

चम्बल घाटी योजना

चम्बल घाटी योजना राजस्थान और मध्य-भारत में धन-धान्य उत्पन्न करने वाली और इन दो पिछड़े राज्यों में नव जीवन लाने वाली है। इस योजना पर कार्य तेजी से चल रहा है। इस योजना में गाँधी सागर बाँध, गाँधी सागर बिजली घर, राणा प्रताप सागर बाँध, राणा प्रताप सागर बिजली-घर, कोटा बैरेज तथा उसकी नहरें सम्मिलित हैं। यह लगभग ५२ करोड़ रुपये की लागत की होगी। यह योजना १६६१ में पूरी हो जायेगी।

इस योजना के पूरा हो जाने पर १२ लाख एकड़ भूमि की नहरों द्वारा सिंचाई होगी जिससे सवा करोड़ मन अतिरिक्त खाद्यान्न उत्पन्न होगा और ८० हजार किलोवाट बिजली उत्पन्न होगी।

चम्बल योजना से उत्पन्न होने वाली बिजली उज्जैन, कोटा, सवाई माधोपुर, जयपुर, देवास, भूपाल, रतलाम, नागदा और इंदौर को आलोकित करेगी।

जल-विद्युत् के विकास का प्रभाव

हम ऊपर कह आये हैं कि भारत में जल-विद्युत् के विकास को बहुत

अधिक सम्भावना है। जितनी बिजली आज उत्पन्न की जा रही है वह केवल २ प्रतिशत है अर्थात् ६८ प्रतिशत जल व्यर्थ बह जाता है। देश के उद्योग-धन्धों तथा खेती-बारी की उन्नति के लिये यह आवश्यक है कि देश में अधिकाधिक जल-विद्युत् उत्पन्न की जाय। इसी उद्देश्य से भारत सरकार ने बहुत सी सिंचाई और जल-विद्युत् योजनाओं को अपने हाथ में ले लिया है। जब योजनायें पूरी हो जायँगी और देश में सर्वत्र बिजली उपलब्ध हो सकेगी तो खेती तथा उद्योग-धन्धों पर भी इसका विशेष प्रभाव पड़ेगा।

खेती—जल-विद्युत् के विकास से खेती अधिक यांत्रिक हो सकेगी तथा कुओं, तालाबों से सिंचाई करने और गन्ना पेरने, चारा काटने तथा तेल पेरने में बिजली का उपयोग हो सकेगा। यही नहीं, जल-विद्युत् के विकास के फलस्वरूप गाँवों में गृह-उद्योग-धन्धों की उन्नति हो भी सकेगी। आटे की चक्कियाँ, वस्तु उत्पादन का कार्य तथा मोजे इत्यादि बनाने का कार्य बिजली की सहायता से हो सकेगा। मैसूर जल-विद्युत् के विकास से गृह-उद्योग-धन्धों का खूब ही विकास हुआ है।

बिजली के विकास में रेलें बिजली की शक्ति से चलने लगेंगी और कोयले की बचत हो जायेगी। हम यह पहले ही कह आये हैं कि भारत में कोयले की कमी है। अस्तु, बिजली के उपयोग से कोयले की बचत हो जायेगी और व्यय भी कम होगा।

पानी की बिजली के विकास का फल यह भी होगा कि धन्धे एक स्थान पर केन्द्रित न होकर विकेन्द्रित हो जायँगे। इससे कि कच्चे माल को लाने तथा बाज़ारों तक पहुँचाने में जो व्यय होता है उससे बचत होगी। इसमें कोयले की बचत होगी क्योंकि मालगाड़ियों पर उतना भार नहीं रहेगा।

बिजली के विकास से बहुत से विद्युत् रासायनिक धन्धे जैसे खाद, नाइट्रोजन, पोटास, कास्टिक-सोडा, ताँबा, जस्ता तथा अन्य धातुओं के धन्धे पनप उठेंगे।

जब सभी बहु-उद्देशीय योजनायें बनकर तैयार हो जायँगी तब समस्त देश को एक बिजली लाइन (ग्रिड) से जोड़ना सम्भव हो जायगा। सारा देश बिजली के प्रकाश से जगमगा उठेगा और खेती तथा अन्य धन्धों का विस्तार हो सकेगा।

अभ्यास के प्रश्न

१—शक्ति के साधनों का क्या महत्त्व है ?

२—शक्ति के मुख्य साधन क्या हैं ? वर्तमान युग में उनका क्या महत्त्व है ? (१६५३)

३—क्या अब वह जमाना आ गया है जब हम बिना कोयले के काम कर सकते हैं ? विस्तार-पूर्वक विवेचना कीजिये ।

४—भारत में कोयला कहाँ-कहाँ तथा किस किस्म का पाया जाता है ? भारतीय उद्योग-धन्धों की स्थिति का निश्चय करने में कोयले का क्या स्थान है ?

५—कोयले और तेल में क्या सम्बन्ध है ? तेल के मुख्य उपयोग क्या हैं ?

६—भारत में तेल कहाँ पाया जाता है ? एलकोहल का तेल के स्थान में उपयोग किये जाने की आशङ्का कहाँ तक ठीक है ?

७—पानी की बिजली किस प्रकार तैयार की जाती है ? भारत में इसका भविष्य क्या होगा ?

८—भारत में शक्ति और साधनों की भरमार है । आवश्यकता केवल इस बात की है कि उनका उचित लाभ उठाया जाय । आपका क्या मत है ?

६—भारत में कहाँ-कहाँ पानी से बिजली बनाई जाती है ? इससे देश की उन्नति तथा ग्राम-सुधार में किस प्रकार सहायता मिलेगी ?

१०—मनुष्य शक्ति के भिन्न-भिन्न साधनों का उपयोग क्यों करता है ? उत्तर प्रदेश के कुछ भाग में जल-विद्युत् के कारण किसान को क्या लाभ हुए हैं ? (उ० प्र० १६४४-४५)

११—उत्तर प्रदेश के जल-विद्युत् के विकास का वर्णन कीजिये । इसका किन कार्यों में उपयोग होता है ? (उ० प्र० १६४४)

१२—उत्तर प्रदेश में शक्ति के मुख्य साधन क्या है ? जल-विद्युत् शक्ति द्वारा किस प्रकार किसान को सुख प्रदान किया गया है ? विस्तारपूर्वक समझाइये । (उ० प्र० १६४७)

१३—भारत की प्रमुख जल-विद्युत् योजनाओं के नाम बताइये । ऊपरी गंगा जल-विद्युत् योजना का वर्णन लिखिये और समझाइये कि इस योजना का पश्चिमी उत्तर प्रदेश की खेती और उद्योग-धन्धों पर क्या प्रभाव पड़ा है ? (उ० प्र० १६५१)

१४—जब भारत की सभी प्रमुख जल-विद्युत् योजनाएँ पूर्ण हो जायँगी तो इसका भारत की खेती तथा उद्योग-धन्धों पर क्या प्रभाव पड़ेगा ? समझाकर लिखिये ।

१५—भारत में कहाँ-कहाँ बिजली (Hydro-Electricity) पैदा की जाती है ? इससे देश की उन्नति तथा ग्राम-सुधार में किस प्रकार सहायता मिलेगी ? (उ० प्र० १६५२)

नवाँ अध्याय

उद्योग-धन्धों का स्थानीयकरण

(Localisation of Industries)

जब कोई व्यवसायी किसी उद्योग-धन्धे का काम शुरू करना चाहता है, तब उसके सामने बहुत सी समस्याएँ आ खड़ी होती हैं। परन्तु सबसे बड़ा सवाल उसके सामने रहता है कि उस धन्धे को खोलने के लिए वह कौन-सी जगह चुने। व्यवसायी आदमी जलवायु, प्राकृतिक स्थिति, कच्चे माल की प्राप्ति, याता-यात की सुविधा आदि तरह-तरह की बातों का ख्याल करता है और विविध स्थानों की उपयोगिता की तुलना करता है। यह जरूरी नहीं कि एक ही उद्योग-धन्धा करने वाले भिन्न भिन्न मनुष्य एक-सा मत रक्खें या एक ही स्थान को अपने धन्धे के लिये चुनें। परन्तु व्यवहार में यह देखा जाता है कि कुछ खास स्थान उद्योग-धन्धों और व्यवसायों के केन्द्र बन जाते हैं। एक प्रकार के कारखाने किसी एक स्थान के आस-पास चलने लगते हैं। बरेली के पास चीनी की मिलें अधिक हैं। बम्बई और अहमदाबाद में अधिकतर कपड़ों के ही कारखाने हैं। इसी प्रकार कलकत्ता जूट के कारखानों का केन्द्र है। इङ्गलैंड में इसी तरह लंकाशायर और मैनचेस्टर कपड़े की मिलों के लिए मशहूर हैं। किसी उद्योग के अधिकांश कारखानों के किसी स्थान विशेष में स्थापित किए जाने की प्रवृत्ति को उस उद्योग का स्थानीय करण कहते हैं।

स्थानीयकरण के कारण

स्थानीयकरण के कारणों के तीन मुख्य भेद हैं:—

(१) प्राकृतिक कारण —इनमें निम्न कारणों का विशेष उल्लेख करना चाहिए - कच्चा माल, शक्ति के साधन, जलवायु और मिट्टी।

(२) आर्थिक कारण—उनके अंतर्गत महत्वपूर्ण कारण ये हैं:—

(अ) श्रमिक की उपलब्धि तथा मजदूरी

(ब) यातायात व संवाद-सुविधा और व्यय

(स) बाजार की निकटता

(द) सहायक उद्योगों का होना

(य) पूँजी संबंधी सुविधाओं का होना—यथा बैंक, रुपया लगाने वाले व्यक्तियों का होना।

(३) अन्य कारण—इसमें सरकारी नीति व ऐतिहासिक कारण विचारणीय हैं।

अब हम इन कारणों पर एक-एक करके विचार करेंगे।

प्राकृतिक कारण

कच्चा माल—उद्योग-धंधे में जो कच्चा माल काम में आता है वह दो प्रकार का है—कुछ का वजन निर्माण करते समय घट जाता है, यथा लकड़ी, कोयला आदि; और कुछ का वजन बढ़ जाता है, यथा रुई, पटसन, ऊन आदि। अत: जिन उद्योग-धंधों में पहले प्रकार के कच्चे माल का उपयोग होता है वे अधिकतर कच्चे माल के क्षेत्र में अवश्य स्थापित हो जाते हैं, इसीलिए लोहे का उद्योग खानों के पास स्थापित है लेकिन सूती मिलों के संबंध में ऐसा नहीं कहा जा सकता।

जहाँ कच्चा माल शीघ्र नष्ट हो सकता है वहाँ भी कारखाने कच्चे माल के क्षेत्र में स्थापित किए जाएँगे, यथा उत्तर प्रदेश तथा बिहार में चीनी के कारखाने।

जहाँ कई प्रकार के कच्चे माल की आवश्यकता है वहाँ उत्पादक यह विचार करेगा कि किस स्थान पर सभी कच्चे माल मिल कर सबसे सस्ते पड़ेंगे।

जहाँ से कच्चा माल नहीं हटाया जा सकता वहाँ भी उद्योग-विशेष कच्चे माल के पास ही चलने लगता है यथा, सूती मिलों का बंबई में होना और मछली पकड़ने का धंधा समुद्र तट पर होना।

जहाँ कच्चा माल आसानी से प्राप्त हो जाता है वहाँ भी कारखाना स्थापित हो जाता है यथा बरेली में दियासलाई का कारखाना।

शक्ति के साधन—पहले जमाने में नदी के जल के प्रभाव से किसी मशीन का पहिया चलता था। अधिकतर मशीनें आटा पीसने की चक्कियाँ होती थीं। आजकल पनचक्की भाप से या तेल से अथवा बिजली से चलाई जाती हैं। परन्तु बिजली पैदा करने की मशीनें अधिकतर पानी से ही चलाई जाती हैं, जहाँ पर जोर से जलप्रपात होता है अथवा जहाँ पर पानी कुछ ऊँचाई से जोर से गिरता है वहाँ पर बिजली पैदा करने की मशीनें लगाई जाती हैं। इस तरह जल-शक्ति से पहिले बिजली पैदा की जाती है और फिर बिजली अन्य मशीनों के चलाने के काम में आती है। जहाँ शक्ति के साधन पर्याप्त तथा सस्ते और सुगम हैं वहाँ उद्योग धंधों का स्थानीयकरण स्वाभाविक है, यथा भारत सरकार जहाँ-जहाँ जल-विद्युत उत्पादन का आयोजन कर रही है वहीं-वहीं विभिन्न प्रकार के धंधों का स्थानीयकरण होना स्वाभाविक है।

जलवायु तथा मिट्टी—कृषि उत्पादन में जलवायु तथा मिट्टी का मुख्य प्रभाव है। इसी कारण दक्षिण की काली मिट्टी में रुई की खेती करते हैं और बंगाल में पटसन की। परन्तु सूती कारखानों के लिए नम जलवायु का होना आवश्यक है; अतः ये कारखाने बंबई में केन्द्रित हैं। इसी प्रकार भोजन संबंधी उद्योग-धन्धे साफ-सुथरे स्थानों में स्थापित किए जाते हैं और विस्फोटक पदार्थ वाले धन्धे (यथा, पेट्रोल-शोधन और बम-निर्माण) दूर एकांत में चालू किए जाते हैं।

आर्थिक कारण

श्रमिक—अकुशल श्रमिकों की अपेक्षा कुशल श्रमिक अधिक गतिशील होते हैं। अतः उद्योग-धंधों के स्थानीयकरण पर कुशल श्रमिको का उपलब्धि का प्रभाव कम नहीं पड़ता। सस्ती मजदूरी पर श्रमिकों की उपलब्धि भी एक कारण है जैसे कानपुर में उद्योग धंधे स्थापित हुए। कभी-कभी कारखानें ऐसे स्थान में चालू लिए जाते हैं जहाँ मजदूरों के संघ नहीं होते। वस्तु-निर्माण लागत में मजदूरी-व्यय का जितना अधिक अंश होगा, मजदूरों का स्थानीयकरण पर उतना ही प्रभाव पड़ेगा।

यातायात तथा संवाद-सुविधा—डाक, तार, टेलीफोन, मोटर, रेल, जल यातायात आदि की सुविधा होने से कच्चा माल मँगाने तथा तैयार माल का विज्ञापन करने और फुटकर विक्रेताओं तक पहुँचाने में सरलता तथा किफायत होती है। कलकत्ते में पटसन (जूट) के कारखाने इसीलिए स्थापित किए गए कि वहाँ से समुद्रीमार्ग से बोरे, टाट आदि विदेशों को भेजे जा सकें। किसी भी वस्तु की लागत में तीन प्रकार के व्यय मुख्य हैं :—

(i) कच्चे माल की कीमत

(ii) मजदूरी

(iii) माल मँगाने और भेजने का व्यय।

बहुत से लोग तो यातायात व्यय को सबसे प्रभावशाली कारण मानते हैं।

बाजार की निकटता—माल तैयार हो जाने पर माल की बिक्री की जिम्मेदारी बहुत कुछ उत्पादक पर रहती है। आजकल तो बड़े-बड़े उत्पादक (यथा, ५०१ साबुन, लिपटन चाय) अपने प्रतिनिधियों द्वारा फुटकर बाजार का दौरा करवाते हैं। उत्पादक द्वारा माल की बिक्री से संबंधित यातायात-व्यय का ध्यान रखा जाना स्वाभाविक है। अतः वह ऐसे स्थान को चुनना पसंद करेंगे जहाँ से माल-बिक्री का बाजार निकट हो। उपभोग संबंधी वस्तुओं के कारखाने शहरों के पास अधिक होते हैं।

सहायक उद्योग—कुछ कारखानों में माल तैयार होते-होते कुछ अवशिष्ट पदार्थ निकलते हैं यथा, चीनी मिल में गन्ने की खोई तथा शीरा, लोहा-मिल में स्लैग। यदि इन अवशिष्ट पदार्थों की निकासी की सुविधा है तब भी उत्पादक को अपना कारखाना स्थापित करने का आकर्षण होता है।

पूँजी—जहाँ के निवासियों की आय अधिक है और जो बचत अधिक करते हैं तथा जहाँ बैंकों का पर्याप्त विकास हुआ है वहाँ धंधे के लिए पूँजी प्राप्त करना सरल होता है। यही कारण है कि भारत में कारखाने व्यापारिक केन्द्रों के पास स्थापित किए जाते हैं।

अन्य कारण

ऐतिहासिक शक्तियाँ—साड़ियों का धंधा बनारस और चिकन का काम लखनऊ में क्यों स्थापित हुआ ? पुस्तक प्रकाशन का केन्द्र इलाहाबाद क्यों है ? इनके संबंध में कोई विशेष उत्तर नहीं दिया जा सकता ! अगले किसी अध्याय में हम नगरों के बसने के जो ऐतिहासिक कारण बतायेंगे वे सभी कारखानों के संबन्ध में भी संभव होंगे पाकिस्तान से आकर खेल का सामान बनाने वाले शरणार्थी मेरठ के पास बस गए तो मेरठ शनैः शनैः खेलकूद के समान बनाने वाले कारखानों का केन्द्र बन गया। नवाबों की राजधानी लखनऊ में चिकन और खिलौनों के धंधे का स्थानीयकरण स्वाभाविक ही था।

कभी-कभी कोई उत्पादक काम चालू कर देता है। उसकी सफलता अन्य उत्पादकों को वहाँ घसीट लाती है। यथा, आगरे में स्कूलों में काम आने वाले पढ़ाई लिखाई संबन्धी रजिस्टरों का निर्माण कार्य पनप उठा है।

सरकारी नीति—अँग्रेजी शासन काल में ब्रिटिश आय और कंपनी के लाभ पर ऊँची दर से टैक्स लगाया जाता था। उससे बचने के लिए बहुत से कारखाने उस समय के देशी राज्यों में स्थापित किए गए थे। ग्वालियर पाटरीज, मंघाराम बिस्कुट वाले आदि इसके उदाहरण हैं।

अब तो औद्योगिक विकास तथा नियंत्रण एक्ट के अंतर्गत भारत सरकार को अधिकार है कि वह अड़तीस प्रमुख उद्योग-धंधों के नए कारखानों के स्थानीयकरण का निर्णय करे।

स्थानीयकरण के विरोधी कारण

स्थानीकरण का मूलमन्त्र है—किसी ऐसी जगह को ढूँढ़ निकालना जहाँ पर किसी विशेष उद्योग-धंधे को करने में कम से कम खर्च और अधिक से अधिक लाभ हो। पिछले वर्षों से कुछ ऐसी शक्तियों का व्यवहार होने लग गया है जो उद्योग-धन्धों के स्थानीयकरण को रोकती हैं। इनमें तीन मुख्य शक्तियाँ हैं (१) बिजली, (२) यातायात सुविधा तथा (३) नगर विकास। पहले बिजली को ही लो। जब से यह ढूँढ़ निकाला गया कि

बिजली से मशीनें भी चलाई जा सकती हैं तब से भाप आदि की कोई जरूरत ही नहीं रह गई है। बिजली की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह सैकड़ों मील की दूरी पर पैदा करके कारखाने को भेजी जा सकती है। बम्बई की ओर लोनावाला नामक स्थान में बिजली पैदा की जाती है और वहाँ से वह तमाम बम्बई तथा आसपास की जगहों में भेजी जाती है। बिजली के आविष्कार के बाद अब यह जरूरी नहीं रहा कि कारखाना कोयले की खानों के पास ही खोला जाय, चाहे वह स्थान स्वास्थ्यप्रद हो या न हो। अब उद्योग-धन्धों को दूर-दूर स्वास्थ्यप्रद स्थानों में खोला जा सकता है।

बिजली की भाँति ही माल लाने और ले जाने की सुविधा स्थानीयकरण की प्रवृत्ति को रोकती है। यातायात की सुविधा की वृद्धि होने से व गाड़ी-भाड़ा व माल को भेजने में लगने वाले समय में बहुत कमी हो गई है। इसलिए अब बिना हानि के कारखाना, मंडी व कच्चे माल की उत्पत्ति स्थान से दूर खोला जा सकता है।

एक बात और है। जैसे जैसे नगरों की वृद्धि होती जाती है वैसे ही वैसे वहाँ की जमीन का दाम और किराया भी बहुत बढ़ता जाता है। इसका नतीजा यह होता है कि पहले तो शहरों में कारखाना स्थापित करना ही बड़ा मुश्किल होता है और यदि वह चल जाय तो बाद में उसके विस्तार में बड़ी दिक्कतें पड़ती हैं। अतएव अब कारखाने अधिकतर शहरों के बाहर खोले जाने लगे हैं, परन्तु अभी मिलें बिलकुल गाँवों में भी नहीं खोली जा सकतीं, क्योंकि वहाँ पर मिल में काम करने के लिए विशेष योग्यता प्राप्त मजदूर काफी संख्या में नहीं मिल सकते।

स्थानीयकरण से लाभ

स्थानीयकरण से होने वाले लाभ के मुख्य भेद निम्नलिखित हैं :--

(१) उसी धंधे के स्वामियों को अधिक सुविधा तथा लाभ

(२) निर्मित वस्तु के उपभोक्ताओं को लाभ

(३) उसी उद्योग के मजदूरों को लाभ

(४) स्थान विशेष का जनता को लाभ

(५) अन्य उद्योगपतियों को लाभ

(६) समाज की दृष्टि से संपत्ति का उत्तम उपयोग

धन्धे के स्वामियों को लाभ—धंधे के स्वामियों को लाभ पहुँचने के कई रूप हैं। स्थानीयकरण के कारण काम आने वाले यंत्रों का विकास तथा उत्तम उत्पादन किया जा सकता है। इसी प्रकार कच्चे माल आदि की पूर्ति बड़ी मात्रा में होने लगती है जिसके कारण वे सस्ती कीमत पर उपलब्ध हो जाते हैं। एक ही स्थान पर कारखानों के होने के कारण वे एक दूसरे की कठिनाइयों तथा अनुभवों का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं तथा मिलकर उत्तम प्रबन्ध की व्यस्था कर सकते हैं।

उपभोक्ताओं को लाभ—कारखानों के एक ही स्थान पर होने से स्पर्द्धा भी अधिक तीव्र होगी। अतः वस्तु अच्छी किस्म की बनाई जाएगी तथा स्पर्द्धा के कारण उसकी कीमत भी कम होगी। परंतु साथ ही यह खतरा भी है कि यदि सभी उत्पादक मिल जायँ तो कीमत अधिक देनी पड़े।

मजदूरों को लाभ—जब एक ही स्थान पर किसी वस्तु के कई कारखाने स्थापित हो जाते हैं तो कुशल मजदूरों की माँग में वृद्धि हो जाती है। इसके अतिरिक्त कभी कभी अन्य पूरक या सहायक उद्योगों के खुल जाने से मजदूरों के अन्य घर वालों को भी काम मिल जाता है।

जनता को लाभ—स्थानीयकरण के कारण स्थान विशेष की प्रसिद्धि भी होती है। अतः उस स्थान का आर्थिक तथा सामाजिक विकास सरलता से होता है। स्थानीयकरण के कारण कारखानों की वृद्धि होने से स्थानीय जनता को अनेक प्रकार के काम भी मिलने लगते हैं।

अन्य उद्योगपतियों को लाभ—किसी भी उद्योग-धंधे के कारण दो प्रकार की वस्तुएँ प्राप्त होती हैं:—

(१) निर्मित वस्तु

(२) अवशिष्ट वस्तु (By product)

यदि निर्मित वस्तु किसी दूसरे उद्योग के कच्चे माल के रूप में काम

आये और वह दूसरा उद्योग पहले उद्योग के पास ही स्थापित हो जाय तो कोई आश्चर्य नहीं है। जहाँ तक अवशिष्ट वस्तुओं का प्रश्न है, स्थानीयकरण के कारण वे भी अधिक मात्रा में उपलब्ध हो जाती हैं। अतः उन अवशिष्ट वस्तुओं को भी काम में लाना व्यावहारिक होता है। इसीलिए अवशिष्ट वस्तुओं के कारखाने भी स्थापित हो जाते हैं।

समाज को लाभ—समाज की दृष्टि से देश की सभी संपत्ति का श्रेष्ठतम उपयोग होना चाहिए। स्थानीयकरण के उपरोक्त लाभों से स्पष्ट है कि उस स्थान विशेष के जन धन का उत्तम प्रयोग हो उठता है। अतः स्थानीयकरण के कारण समाज को भी लाभ होता है।

स्थानीयकरण की बुराइयाँ और उनको दूर करने के उपाय

जैसे अन्य वस्तुओं या बातों में अच्छाई बुराई होती है वैसे ही उद्योग-धंधों के स्थानीयकरण से लाभ भी हैं और हानि भी। लाभ तो हम जान गये। हानियाँ नीचे लिखे अनुसार हैं:

सबसे बड़ी हानि यह है कि ऐसी जगह में जहाँ केवल एक ही उद्योग-धन्धा चलता है, इस बात का बड़ा डर रहता है कि कहीं तैयार माल की माँग घट न जाय अथवा कच्चा माल प्राप्त करना कठिन न हो जाय। दोनों हालतों में मजदूरों के वेतन घटाने पड़ेंगे। कुछ काम वाले निकाल दिये जायेंगे। शायद दो चार मिलें बन्द भी हो जायँ। व्यापार मंदा होने के साथ-साथ बेकारी भी बढ़ जायगी। दूसरी बात जो ध्यान देने योग्य है वह यह है कि उस क्षेत्र में एक ही प्रकार के दक्ष आदमियों की अधिक माँग होती है। कई कारखाने एक ही स्थान पर हो जाने के कारण उनके मजदूर अपना श्रमिक संघ स्थापित करके अधिक सुविधाएँ तथा अधिक मजदूरी मागेंगे। तब इस कारण कारखानों के काम में हड़ताल आदि से बाधा पहुँच सकती है।

स्थानीयकरण हो जाने पर यदि यातायात की असुविधा हो जाय तो देश-वासियों का जीवन खतरे में पड़ जाय। पिछले महायुद्ध में रेल के डिब्बों की कमी के कारण कपड़ा तथा अन्न लोगों को नहीं मिल सकता था और आजकल

तो हवाई जहाज से बम की लड़ाई होती है। अतः युद्ध छिड़ जाने पर शत्रु गोलाबारी द्वारा उद्योग-धन्धा नष्ट कर सकता है।

परन्तु आधुनिक युग में यातायात व्यवस्था का टूटना अथवा वस्तु की माँग का एकाएक अत्यधिक घट जाना या युद्ध, रोजमर्रा की बातें नहीं हैं। परन्तु बेकारी एक विचारणीय बुराई है और अंतर्राष्ट्रीय दशा को देखते हुए युद्ध का भी डर बना ही रहता है।

क्षेत्रीय विकास

क्षेत्रीय आधार पर उद्योग धंधों का स्थानीयकरण तथा विकास वांछनीय है। प्रत्येक राज्य की सीमाएँ राजनैतिक कारणों से बनी हैं और अभी तक प्रत्येक राज्य अपने सर्वांङ्ग आर्थिक विकास के लिए प्रयत्नशील है। परन्तु विंध्यप्रदेश का श्रमिक उत्तर प्रदेश में काम करने आ सकता है। अतः उत्तर प्रदेश का उत्पादक उन मजदूरों को दृष्टि में रखकर अपना कारखाना चाकघाट के पास स्थापित कर सकता है। अतः आप कह सकते हैं कि स्थानीयकरण के लिए उत्तर प्रदेश तथा विंध्यप्रदेश को एक क्षेत्र समझना चाहिये।

क्षेत्रीय विकास के मुख्य लाभ निम्नलिखित हैं :—

(१) उद्योग-धंधों के संचालन और स्थानीयकरण की समस्याएँ सरल बन जाती हैं।

(२) उद्योग-धंधों के स्थानीयकरण की नीति अखिल भारतीय दृष्टिकोण से निश्चित की जा सकती है।

(३) क्षेत्र के सभी साधन और संपत्ति उद्योग-धधों के विकास के काम आएँगे।

उद्योग (विकास तथा नियंत्रण) अधिनियम के अंतर्गत भारत सरकार लगभग चार दर्जन उद्योग-धंधों के नये कारखानों के स्थापन के बारे में रोक लगा सकती है। इस प्रकार वह किसी उद्योग-धंधे के भावी स्थानीयकरण पर प्रभाव डाल सकती है।

भारत में भावी स्थानीयकरण

किसी नये कारखाने को ऐसे स्थान में स्थापित करना सुविधाजनक होता है जहाँ

पहले से संवाद, यातायात, बैंक आदि की सुविधाएँ उपलब्ध हैं तथा जहाँ उसी धन्धे के कारखाने चल रहे हों। अतः यदि किसी नये कारखाना स्थापित करने वाले से यह कहा जाय कि तुम कानपुर के स्थान पर गोंडा में कारखाना खोलो तो वह न मानेगा। तब भी भारत सरकार उद्योग-धन्धों के भावी स्थानीयकरण में परिवर्तन ला रही है। सरकार की नीति संतुलित क्षेत्रीय स्थानीयकरण तथा विकास की नीति है।

अभी तो आधारभूत उद्योग-धन्धे स्थापित किए जा रहे हैं। नया इस्पात का कारखाना, नये विद्युत् उत्पादन केन्द्र विभिन्न स्थानों में स्थापित करके देश के विभिन्न भागों को औद्योगिक उत्पादन का अवसर दिया जा रहा है।

अभ्यास के प्रश्न

१—उद्योग-धन्धा आरम्भ करने के पहले कौन-कौन सी बाधायें खड़ी होती हैं? स्थानीकरण द्वारा यह समस्या कैसे हल की जाती है?

२—स्थानीयकरण में प्रकृति का क्या स्थान है? भारत की विशेष जलवायु, मिट्टी, आदि के कारण वहाँ के कौन-कौन से कारखाने कहाँ-कहाँ स्थित हैं?

३—बम्बई कलकत्ता और कानपुर में मिलों तथा कारखानों के खुलने के मुख्य कारण क्या हैं?

४—यदि सरकार चाहे तो भारत में उद्योग-धन्धे शीघ्रता से उत्पन्न हो जायँ। बताइये कि राजनैतिक कारण किस प्रकार उद्योग-धन्धों के स्थानीयकरण में बाधक होते हैं।

५—बीसवीं सदी की किन-किन शक्तियों ने स्थानीयकरण में प्राकृतिक शक्तियों का महत्त्व घटा दिया है? उदाहरण द्वारा समझाइये।

६—क्या स्थानीयकरण से बुराइयाँ भी पैदा हो सकती हैं? उदाहरण सहित उनको दूर करने के उपायों पर विचार कीजिये।

७—स्थानीयकरण के क्या अर्थ हैं? स्थानीय उद्योगों से क्या लाभ हैं? क्या भारत में ऐसे उद्योग हैं? (उ० प्र० १९४२-१९४६)

८—सविस्तार स्थानीयकरण के साधनों को समझाइये। उत्तर प्रदेश से उदाहरण दीजिये। (उ० प्र० १९४४)

९—उद्योगों का स्थानीयकरण क्यों होता है? उत्तर प्रदेश के उद्योगों के उदाहरण से अपने उत्तर को स्पष्ट कीजिये। (१९५५)

दसवाँ अध्याय

भारत के उद्योग-धन्धे

(Industries)

आधुनिक ढंग के कारखानों की स्थापना भारत में वस्तुतः उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में हुई। आरम्भ में ईस्ट-इंडिया कम्पनी के भूतपूर्व कर्मचारियों तथा ब्रिटिश व्यवसायियों ने ही वस्त्र तथा जूट के कारखाने स्थापित किये। बाद को भारतीय व्यवसायियों ने भी कारखाने स्थापित करना आरम्भ कर दिया।

आरम्भ में कलकत्ता और बम्बई में ही कारखाने खोले गये। यही कारण है कि आज भी वे देश के प्रमुख औद्योगिक केन्द्र हैं। बम्बई और कलकत्ता ही प्रमुख बन्दरगाह थे। उन्हीं व्यापारिक केन्द्रों का पश्चिम से अधिक संबंध था। देश का कच्चा माल विदेशों को जाने के लिये यहाँ इकट्ठा होता था। रेलवे लाइनों के द्वारा ये व्यापारिक केन्द्र भीतरी भाग से जुड़े हुये थे। रेलवे कम्पनियों ने अत्यंत दोषपूर्ण किराये की नीति को अपना रक्खा था अर्थात् जो माल देश के भीतरी भाग से बन्दरगाह की ओर तथा बन्दरगाह से भीतर की ओर जाता था उस पर कम किराया लिया जाता था। इस नीति का उद्देश्य यह था कि इंगलैंड का तैयार माल कम खर्च में आ जाये और भारत का कच्चा माल बाहर चला जाये। इस दोषपूर्ण नीति के कारण सभी कारखाने आरम्भ में बन्दरगाहों में ही स्थापित हुए।

यद्यपि भारत में आधुनिक ढङ्ग के बड़े कारखानों का श्रीगणेश सन् १८५० के बाद से ही होने लगा था, फिर भी बीसवीं शताब्दी के आरंभ तक उद्योग-धन्धों की प्रारंभिक अवस्था थी। सन् १९१४ के यूरोपीय महायुद्ध के आरंभ होने के समय भारत में सूती वस्त्र के कारखानों और जूट के कारखानों के अतिरिक्त

अन्य कारखाने स्थापित नहीं हुए थे। सूती वस्त्र के कारखाने भी मोटा कपड़ा बनाते थे। अधिकांश वस्त्र बाहर से आता था। यूरोपीय महायुद्ध के उपरांत लोहा-इस्पात, सीमेंट, कागज, दियासलाई, शक्कर, शीशा तथा वस्त्र व्यवसायों की उन्नति शीघ्रता से हुई। किन्तु फिर भी औद्योगिक दृष्टि से भारत आज भी बहुत पिछड़ा हुआ है। आज भी भारत विदेशों से अधिकतर तैयार माल मँगाता और कच्चा माल बाहर भेजता है। भारत के औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े रहने के निम्नलिखित मुख्य कारण थे :—

(१) देश का एक विदेशी सरकार के अधीन होना जो भारत की औद्योगिक उन्नति के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि-कोण नहीं रखती थी और न उसे प्रोत्साहन देना ही पसन्द करती थी। (२) भारत में यन्त्र बनाने का धन्धा तथा रासायनिक धन्धे (Chemical Industries) का न होना। बिना यन्त्र बनाने के धन्धे तथा रासायतिक धन्धों की उन्नति हुए कोई देश औद्योगिक या आर्थिक उन्नति नहीं कर सकता क्योंकि अन्य विभिन्न धन्धे इन पर निर्भर रहते हैं। ये आधारभूत धन्धे हैं। (३) भारत में यथेष्ट उत्तम कोयले की कमी और उसका देश के सुदूर पूर्व में केन्द्रित होना। देश के अधिकांश भाग में कोयला मिलता ही नहीं और बङ्गाल तथा बिहार की कोयले की खानों से मँगाने में बहुत व्यय होता है। यही नहीं, भारत में कोक बनाने के योग्य कोयले की बहुत कमी है। इस कारण भारत में अधिकतर वे धन्धे स्थापित किये गये हैं जिनमें कोयले की अधिक आवश्यकता नहीं पड़ती। उदाहरण के लिए वस्त्र-व्यवसाय, जूट, शक्कर, कागज इत्यादि। (४) भारत में औद्योगिक अनुसन्धान का अभाव है। बहुत सा कच्चा माल हमारे यहाँ ऐसा है जिसका औद्योगिक उपयोग क्या हो सकता है, हम यह जानते ही नहीं। उदाहरण के लिए कुछ समय पूर्व किसी को भी ज्ञात नहीं था कि बाँस से कागज बनाया जा सकता है। (५) भारत मे कुछ पूँजीपति मैनेजिंग एजेन्ट हैं जो नये कारखाने स्थापित करते हैं। जब वे कोई कंपनी स्थापित करते हैं, तो साधारण जनता उनके नाम से प्रभावित होकर हिस्से खरीद लेती है, परन्तु एक साधारण व्यक्ति फिर वह चाहे कितना ही व्यावसायिक योग्यता क्यों न रखता हो यदि कोई

कारखाना स्थापित करना चाहे तो उसे पूँजी नहीं मिल सकती। अधिकांश मैनेजिंग एजेन्सी फर्में अँग्रेजों की हैं। कुछ भारतीय व्यवसायियों की हैं। जब तक औद्योगिक बैंकों के द्वारा प्रतिभावान् व्यावसायिक योग्यता वाले व्यक्तियों को प्रोत्साहन नहीं मिलता और पूँजी प्राप्त होने में सुविधा नहीं होती तब तक औद्योगिक उन्नति शीघ्रतापूर्वक नहीं हो सकती। (६) भारत में कुशल मजदूरों की कमी देश की औद्योगिक उन्नति में एक रुकावट है।

अब हम देश के मुख्य-मुख्य धंधों का संक्षिप्त विवरण लिखते हैं।

सूती वस्त्र-व्यवसाय

सूती वस्त्र-व्यवसाय देश का सबसे महत्त्वपूर्ण धंधा है। कारखानों में जितने मजदूर काम करते हैं उनमें एक चौथाई से अधिक केवल वस्त्र-व्यवसाय में लगे हुये हैं। इसी से इस धंधे की महत्ता प्रतीत होती है।

भारत में सूती वस्त्र-व्यवसाय को दो बड़ी सुविधायें प्राप्त हैं। एक तो कपास भारत में ही उत्पन्न होती है; दूसरे भारत सूती कपड़े की खपत का इतना बड़ा बाजार है जिसका ठीक-ठीक अनुमान करना भी कठिन है। भारत के बाजार की विशालता इसी से ज्ञात होती है कि द्वितीय महायुद्ध से पूर्व जापान और ब्रिटेन से जितना कपड़ा आता था वह देश की उत्पत्ति की तुलना में नगण्य था; फिर भी ब्रिटेन तथा जापानी कपड़े का भारत सबसे बड़ा ग्राहक था।

भारत में सूती वस्त्र-व्यवसाय के केन्द्र कपास उत्पन्न करने वाले क्षेत्रों में स्थापित हैं। बम्बई सबसे बड़ा वस्त्र-व्यवसाय का केन्द्र है। बम्बई कपास की सबसे बड़ी मंडी है। यहाँ से कपास विदेशों को जाती है। अतएव बम्बई की मिलों को कपास मिलने में बहुत सुविधा रहती है। यही नहीं, बम्बई को विदेशों से मशीन मँगाने की सुविधा है तथा रेल का किराया भी नहीं देना पड़ता। आरंभ में ये सुविधायें बहुत महत्त्वपूर्ण थीं, किन्तु अब बम्बई को कुछ असुविधाओं का सामना करना पड़ रहा है। बम्बई में कारपोरेशन टैक्स इत्यादि अधिक है, जमीन की बहुत कमी है और कपड़े की खपत के क्षेत्रों से बम्बई दूर पड़ता है। इसके विपरीत अहमदाबाद, शोलापुर, मद्रास, भड़ौंच, नागपुर इत्यादि केन्द्रों में व्यय

कम है, मजदूरी सस्ती है तथा वे कपड़े की खपत के क्षेत्रों के बीच में हैं। ऊपर दिये हुये कारणों से बम्बई तथा अन्य केन्द्रों में प्रतिस्पर्द्धा उठ खड़ी हुई है और बम्बई की अपेक्षा अन्य केन्द्रों को सुविधायें अधिक हैं। यही कारण है कि बम्बई की मिलें बढ़िया कपड़े बनाने का विशेष प्रयत्न कर रही हैं।
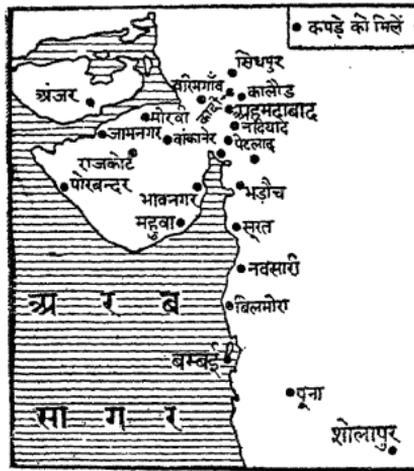
बम्बई प्रदेश में क ड़े की मिलें

बम्बई और अहमदाबाद सूती कपड़ों के मुख्य केन्द्र हैं। भारत में सूती कपड़े की जितनी मिलें हैं उनकी लगभग आधी इन दो औद्योगिक केन्द्रों में ही हैं। बम्बई और अहमदाबाद की मिलें देश का लगभग आधा सूत और दो-तिहाई कपड़ा उत्पन्न करती हैं। इन दो केन्द्रों के अतिरिक्त शोलापुर, नागपुर, कलकत्ता, कानपुर, कोयम्बटूर, मद्रास भी सूती कपड़े के महत्त्वपूर्ण केन्द्र हैं। इनके अतिरिक्त इन्दौर, ब्यावर, हाथरस तथा अन्य स्थानों पर जहाँ कपास उत्पन्न होती है सूती कपड़े के कारखानें स्थापित हो गये हैं।

भारत की मिलें जो सूत तैयार करती हैं वह बहुत मोटा होता है। भारत का अधिकांश सूत ३० नम्बर से कम का होता है। ४० नम्बर से ऊपर का

सूत तो बहुत थोड़ा उत्पन्न होता है। इसका मुख्य कारण यह है कि भारत में अच्छी और लंबे रेशे वाली कपास उत्पन्न नहीं होती। जो बढ़िया लंबे रेशे वाली कपास भारत में उत्पन्न होती है उससे ३० से ४० नम्बर तक का सूत तैयार हो सकता है इससे अधिक का नहीं। पञ्जाब, अमेरिकन कपास का फूल अधिक लम्बा होता है किन्तु किसान इसमें भी देशी कपास मिला देता है। ४० नंबर से अधिक बारीक सूत कातने के लिए भारत में कपास उत्पन्न नहीं होती। अहमदाबाद और बम्बई में जो ४० नम्बर से भी अधिक बारीक सूत काता जाता है वह संयुक्त राज्य अमेरिका तथा मिस्र की कपास से तैयार किया जाता है। भारतीय मिलों ने अपनी उत्पादन-शक्ति को बेहद बढ़ा लिया है और जितना कपड़ा तथा सूत ये देश में तैयार करती हैं उसकी तुलना में विदेशों से आया हुआ कपड़ा तथा सूत नहीं के बराबर है। फिर भारत में केवल मिलें ही कपड़ा तैयार नहीं करतीं। हाथ-कर्घे से भी देश की खपत का एक चौथाई कपड़ा तैयार होता है। यदि देश की मिलें तथा हाथ-कर्घों से तैयार होने वाले कपड़े को लें तो विदेशों से आने वाला कपड़ा उसकी तुलना में १५% से अधिक नहीं है। सन् १६३६ के युरोपियन महायुद्ध के फलस्वरूप भारतीय व्यवसाय को और भी प्रोत्साहन मिला था किन्तु हमारे वस्त्र-व्यवसाय की भावी उन्नति इस बात पर निर्भर रहेगी कि भारत में लम्बी रेशे वाली अधिक कपास उत्पन्न की जा सकेगी या नहीं। वस्त्र-व्यवसाय के लिए इसकी नितान्त आवश्यकता है कि यहाँ बढ़िया कपास उत्पन्न की जाय। इण्डियन काटन कमेटी इस दिशा में प्रयत्नशील है। अभी तो लगभग एक तिहाई रुई के लिए हम पाकिस्तान तथा अन्य देशों पर निर्भर हैं। बाहर की रुई न आने से हमारे वस्त्र-व्यवसाय में भारी कमी हुई है।

भारत से थोड़ा सा कपड़ा प्रतिवर्ष दक्षिण और पूर्वी अफ्रीका, ईराक, ईरान, लङ्का और पूर्वीय द्वीपों को जाता है। जो कुछ भी कपड़ा विदेशों को जाता है वह बम्बई से ही जाता है। बात यह है कि बम्बई की मिलों को अहमदाबाद, नागपुर, कोयम्बटूर तथा कानपुर इत्यादि भीतरी केन्द्रों की प्रतिद्वन्द्विता करने

में कठिनाई होती है। भीतरी केन्द्रों को बहुत सी सुविधायें प्राप्त हैं जो बम्बई को प्राप्त नहीं हैं। अतएव बम्बई की मिलों ने दो बातों की तरफ विशेष ध्यान देना शुरू किया है: एक तो बढ़िया और बारीक कपड़ा बनाने तथा दूसरे समीपवर्ती एशियाई देशों में कपड़ा बेचने का प्रयत्न किया जा रहा है। विभाजन के उपरांत भारत में कपास की कमी हो गई। अब भारत को पाकिस्तान से कपास मँगानी पड़ती है।

भारत में सूती मिलों की संख्या

राज्य		मिल संख्या	राज्य	मिलों की संख्या
बम्बई	...	२२२	हैदराबाद	६
मद्रास	...	४७	अजमेर	४
उत्तर प्रदेश	...	२६	बरार	४
पश्चिमी बङ्गाल	...	३६	मैसूर	७
पूर्वी पञ्जाब	...	२	पांडीचेरी	३
मध्यप्रदेश	...	७	कोचीन	१
देहली	...	८	ट्रावंकोर	१
इन्दौर	...	७	राजस्थान	४
ग्वालियर	...	८	राजनँदगाँव	१

सन् १९५४ में भारत में ४५४ सूती कपड़े की मिलें चालू थीं जिनमें २ लाख सात हजार कर्घे और १ करोड़ १७ लाख से अधिक चार्खियाँ थी। इन मिलों के द्वारा सन् १९५४-५५ में ४ अरब ९७ करोड़ गज कपड़ा और १ अरब ५२ करोड़ पौंड सूत तैयार हुआ। उस वर्ष भारत ने लगभग ५० करोड़ गज कपड़ा एशिया और अफ्रीका के देशों को भेजा। अगर मिलों की उत्पादन-शक्ति का पूरा-पूरा उपयोग किया जाय तो उत्पादन अधिक बढ़ सकता है। सन् १९६१ तक हमको ७२० करोड़ गज कपड़े की जरूरत होगी।

विभाजन के उपरांत भारतीय सूती वस्त्र-व्यवसाय के सामने कपास की भयंकर समस्या उठ खड़ी हुई है। लंबे फूल वाली कपास तो हमें मिस्र और
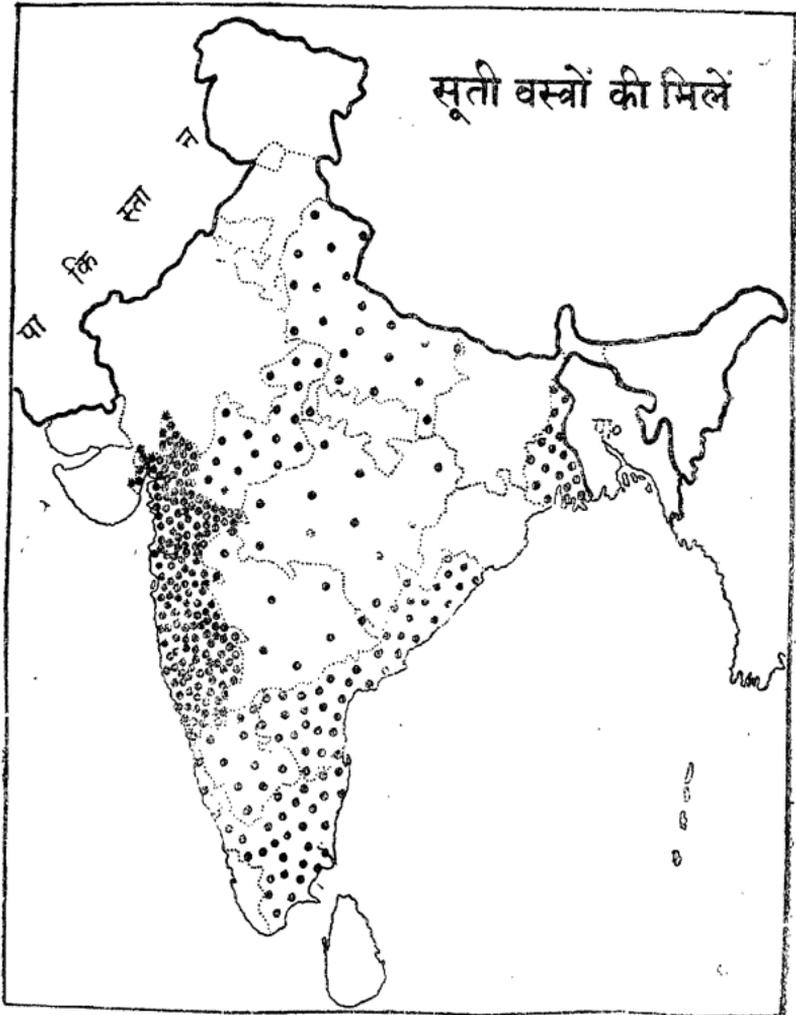
सूडान से मँगानी ही पड़ती थी, किन्तु अब हमें साधारण कपास भी पाकि-

स्तान से मँगानी पड़ती है। यही कारण है कि योजना आयोग ने १९५६ तक १२ लाख गाँठ कपास अधिक उत्पन्न करने का लक्ष्य निर्धारित किया था और १९६१ तक १३ लाख गाँठ अधिक कपास उत्पन्न करने का लक्ष्य निर्धारित किया है। दूसरी पञ्चवर्षीय योजना के अनुसार १९६१ में भारत में ५०० करोड़ गज से अधिक कपड़ा मिलों द्वारा तैयार होने लगेगा और करीब ३५० करोड़ गज कपड़ा हाथ-करघा तथा बिजली-करघा से तैयार करने की व्यवस्था की गई है। अब प्रयत्न किया जा रहा है कि भारत के कपड़े का निर्यात अधिक हो।

जूट

जूट की फसल काट लेने के उपरांत वह खेत पर ही दो या तीन दिन के लिये छोड़ दी जाती है। उसके बोझ बाँध कर पोखरे और तालाब में सड़ने के लिये पानी में डुबो दिये जाते हैं। अच्छी वर्षा के दिनों में बङ्गाल में साफ और मीठे पानी के तालाबों और पोखरों की कमी नहीं रहती। सड़ाने की क्रिया जुलाई में होती है और लगभग १५ दिन लग जाते हैं। जब पौधा सड़ जाता है तब जूट का रेशा डंठल से छुड़ा लिया जाता है। उसे धोकर सुखा लेते हैं और फिर बाँध कर बेच देते हैं।

भारत में सर्वप्रथम सन् १८५५ में श्री आकलैंड महोदय ने सिरामपूर के निकट रिसरा में जूट का कारखाना खोला था जिसमें जूट की कताई होती थी। १८५९ ई० में कलकत्ते में जूट के कपड़े को तैयार करने के लिये एक कारखाना खोला गया। इसके उपरान्त जूट के कारखाने बहुत तेजी से स्थापित होने लगे, किंतु भारत के अधिकांश कारखाने प० बङ्गाल में हैं। वे भी कलकत्ते के उत्तर और दक्षिण में हुगली के दोनों ओर केंद्रित हैं। प० बङ्गाल में १०१ मिलें हैं जब कि मद्रास में ४, उड़ीसा में ३ और उत्तर प्रदेश में केवल दो कारखाने

हैं। जूट के कारखानों के प० बंगाल में केन्द्रित होने का मुख्य कारण यह है कि उत्तरी और पूर्वी बंगाल में जूट की पैदावार होती है। मिलें हुगली के दोनों किनारों पर स्थिति हैं। जूट नदियों अथवा सड़कों द्वारा इन मिलों में लाया जाता है। साथ ही तैयार जूट का सामान नावों द्वारा कलकत्ते को आसानी से भेज दिया जाता है। यही नहीं इस जूट-क्षेत्र के समीप ही कोयला है। इससे कोयला मिलने में कम व्यय होता है।

सन् १९१४ के यूरोपीय महायुद्ध के दिनों में तो जूट के धंधे से आशातीत लाभ हुआ। उस समय जूट के कारखानों में मानों चाँदी बरस रही

थी किंतु उसके बाद जूट के बुरे दिन आरम्भ हुए। विशेषकर सन् १९३९ तक जो विश्वव्यापी आर्थिक मंदी प्रकट हुई उससे तो जूट के धन्धे को और भी

धक्का लगा। अब तो विदेशों में अन्य वस्तुओं के बोरे, टाट आदि तैयार किये जाते हैं और कागज के थैलों का भी उपयोग किया जाता है। फिर भी भारतीय जूट-पदार्थों की खपत काफी है यद्यपि माँग अब क्रमशः कुछ घट ही रही है।

भारत के जूट के कारखाने अधिकतर जूट का सामान विदेशों को भेजने के लिये तैयार करते हैं। भारत में जूट के सामान की खपत कम है। अतएव अधिकांश जूट का सामान विदेशों को, विशेषकर संयुक्तराज्य अमेरिका को भेजा जाता है। भारतीय मिलें बोरे, हैसिएन, जूट का कपड़ा, कैनेवेस, सुतली तथा रस्सी तैयार करके विदेशों को भेजती हैं। सबसे अधिक बोरा तथा जूट का कपड़ा तैयार किया जाता है। कैनेवेस तथा सुतली भी बहुत तैयार होती है।

विभाजन के फलस्वरूप सारी जूट मिलें भारत में आ गईं और सम्मिलित भारत जितना कच्चा जूट उत्पन्न करता था उसका ७३ प्रतिशत पाकिस्तान में चला गया। वहाँ से जूट न आने के कारण हमारी जूट मिलों को कठिनाई थी। इस कमी को पूरा करने के लिए पश्चिमी बंगाल, बिहार, आसाम, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, मालाबार और ट्रावंकोर में अधिक जूट पैदा करने का भरसक प्रयत्न किया जा रहा है। योजना आयोग के अनुसार १९५६ तक भारत ने ५० लाख से अधिक जूट की गाँठें उत्पन्न करने का लक्ष्य निर्धारित किया था किन्तु वह पूरा नहीं हुआ। इस समय भारत में ४० लाख गाँठ जूट उत्पन्न होता है। १९६१ में ५० लाख गाँठ जूट उत्पन्न करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है।

इस समय भारत में ११२ जूट मिलें चल रही हैं जिनमें ६८½ हजार करघे चलते हैं और प्रतिवर्ष ६ लाख २० हजार टन जूट का माल उत्पन्न होता है। इनमें से भारत ७ लाख ३० हजार टन माल विदेशों को भेज देता है। प्रथम पञ्चवर्षीय योजना में जूट के सम्बन्ध में यह ध्येय निर्धारित किया गया था कि १९५६ तक १२ लाख टन जूट का माल तैयार हो सके।

लोहा और इस्पात

भारत में लोहे का धंधा प्राचीन काल में भी उन्नत अवस्था में था। देहली की प्रसिद्ध कील इस बात का प्रमाण है। आज भी संसार में इने-गिने कारखाने ही उतने बड़े लोहे के खंभे को बना सकते हैं। फिर वह लट्ठा हजारों वर्ष पुराना है। जिस समय ईस्ट इण्डिया कम्पनी का इस देश पर प्रभुत्व हुआ उस समय भी लोहे का धंधा यहाँ गृह-उद्योग धंधे के रूप में विद्यमान था। सर्वप्रथम सन् १८३० में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारी कर्नल शीथ ने दक्षिण अर्काट के समीप एक आधुनिक ढंग का लोहे का कारखाना स्थापित किया। किन्तु मद्रास प्रदेश लोहे के धंधे के लिए उपयुक्त क्षेत्र नहीं था। इस कारण वह प्रयत्न असफल रहा।

प्रारम्भिक प्रयासों के असफल हो जाने के उपरान्त प्रथम सफल प्रयत्न बंगाल में झरिया की कोयले की खानों के समीप हुआ। यह कारखाना बराकर आयरन वर्क्स के नाम से प्रसिद्ध था। इस कारखाने में केवल पिग आयरन तैयार होता था। इस्पात बनाने के प्रयत्न असफल रहे, क्योंकि विदेशों से आने वाला इस्पात बहुत सस्ता था। सन् १९२० में कम्पनी ने सिंहभूमि के "पनसिरा" और "बुदा बुरा" क्षेत्रों से लोहा लेकर अधिक पिग आयरन बनाना आरम्भ किया। इसी वर्ष बंगाल आयरन और स्टील कम्पनी ने कारखाने को ले लिया और कुल्टी में नया कारखाना स्थापित किया। यह कारखाना अब पहले से दुगुना पिग आयरन तैयार करता है।

कुल्टी आयरन वर्क्स कोयले और लोहे के क्षेत्र के समीप ही स्थापित किया गया है। यह दामोदर नदी की शाखा बराकर नदी पर है। लोहा कोलहन राज्य की खानों से मिलता है और कोयला कुल्टी से दो मील पर स्थित रामनगर की खानों से मिल जाता है। इसके अतिरिक्त झरिया क्षेत्र की जितपूर तथा नूनोदिह खानों से भी कोयला मिलता है। चूने का पत्थर

(Lime Stone) गंगपुर के बिसरा नामक स्थान तथा दक्षिण पूर्व रेलवे पर स्थित पाराघाट और बाराद्वार से आता है। कुल्टी का कारखाना भारत का सबसे पुराना है।

पिग आयरन तैयार करने वाला दूसरा महत्त्वपूर्ण कारखाना बर्नपुर वर्क्स है जो आसनसोल में स्थापित है। इस कारखाने को उत्तर पूर्व रेलवे तथा दक्षिण-पूर्व रेलवे दोनों ही कलकत्ते से जोड़ती हैं। कलकत्ते से यह केवल १३१ मील दूर है। इस कारखाने के लिये कच्चा लोहा कोलहन के गुआ नामक स्थान से आता है। दक्षिण-पूर्व रेलवे की शाखा गुआ को जोड़ती है। कोयला तो स्थानीय खानों से ही प्राप्त हो जाता है। कारखाने के लिये पानी दामोदर नदी से लिया जाता है जो कारखाने से लगभग ढाई मील पर है। दामोदर के पानी को पम्प करके एक बड़े बाँध में इकट्ठा कर लिया जाता है।

पिग आयरन को तैयार करने में अपेक्षाकृत अधिक कोयला आवश्यक है। इस कारण पिग आयरन के कारखाने कोयले की खानों के समीप हैं। कुल्टी बर्नपुर (आसनसोल) एक ऐसे प्रदेश में स्थापित हैं, जो घना आबाद है और ये कारखानें कलकत्ता के समीप हैं जो भारत में लोहे की सबसे बड़ी मंडी है। इन केन्द्रों में बने हुए पिग आयरन को विदेशों में कलकत्ते के बन्दरगाह से ही भेजा जाता है।

भारत में सबसे बड़ा लोहे और इस्पात का कारखाना जमशेदपुर में स्थापित है चूँकि जमशेदपुर का टाटा आयरन वर्क्स अधिकतर इस्पात बनाता है, इस कारण कोयले की अपेक्षा लोहे के क्षेत्र से अधिक समीप है। वास्तव में टाटा आयरन वर्क्स के स्थापित होने के उपरान्त ही लोहे और इस्पात का धंधा इस देश में महत्त्वपूर्ण धन्धा बन सका। टाटा आयरन वर्क्स के स्थापित होने से देश के औद्योगिक विकास के इतिहास में एक नया परिच्छेद खुल गया।

टाटा आयरन इस्पात कम्पनी ने अपने कारखाने को स्थापित करने के लिए साकची नामक संथाली गाँव चुना जो बाद को जमशेदपुर के नाम से

प्रसिद्ध हुआ। जमशेदपुर बिहार के सिंहभूमि जिले में है। इसके उत्तर में सुवर्ण-रेखा, तथा पश्चिम में खोरकोई नदी बहती हैं। वास्तव में जमशेदपुर इन दोनों नदियों द्वारा बनाई हुई एक घाटी में स्थित है। यह घाटी केवल तीन मील चौड़ी है, इसके उत्तर और दक्षिण में पहाड़ियाँ हैं जिनमें लोहे की
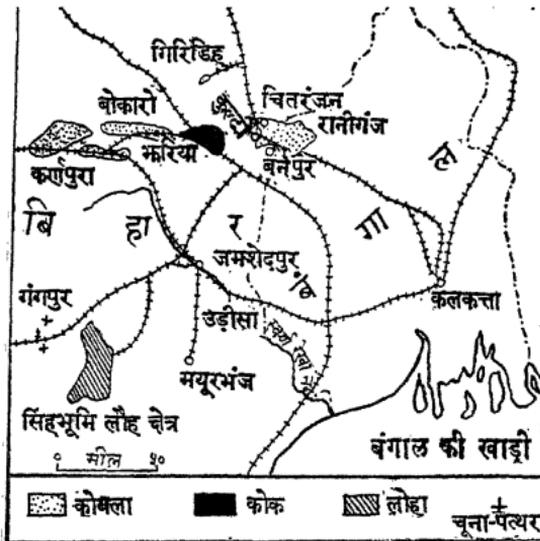
जमशेदपुर की स्थिति

खानें हैं। जिन खानों से टाटा के कारखाने के लिये लोहा आता है वे इन्हीं पहाड़ियों में ६० मील की दूरी पर हैं। यहाँ कोयला झरिया की खानों से आता है, जो यहाँ से १०० मील की दूरी पर हैं। सुवर्णरेखा तथा खोरकोई नदियों से पानी मिलता है। लोहे और इस्पात के धन्धे के लिये मीठे और साफ पानी की बहुत आवश्यकता होती है। ये नदियाँ छोटी होने के कारण गरमी में सूख जाती हैं। इस कारण नदियों का पानी सूखने के पूर्व ही एक बड़े तालाब में पम्प करके इकट्ठा कर लिया जाता है। टाटा के कारखाने को दक्षिण पूर्वी रेलवे कलकत्ता और बम्बई से जोड़ती है। अतएव टाटा का सामान बड़ी सुविधा से कलकत्ता और बम्बई की मंडियों में पहुँच सकता है।

टाटा के कारखाने को केवल लाइमस्टोन या डोलोमाइट दूर से मँगाना पड़ता है। अच्छा लाइमस्टोन जमशेदपुर से २०० मील की दूरी पर मिलता है। जो लाइमस्टोन पास ही मिलता है वह घटिया है। अब टाटा का कारखाना गंगपुर में पानपोश की खानों से लाइमस्टोन निकालता है परन्तु वह शुद्ध लाइमस्टोन से घटिया होता है। इसके अतिरिक्त 'मैंगनीज' और जिन रासायनिक पदार्थों की आवश्यकता होती है वे पास ही मिल जाते हैं।

सन् १९१३ में सर्वप्रथम टाटा के कारखाने ने इस देश में इस्पात बनाया। उसी समय योरोपीय महायुद्ध छिड़ गया। विदेशों से भारत ही नहीं एशिया के अन्य देशों में भी इस्पात आना बन्द हो गया। उस समय टाटा के कारखाने को अभूतपूर्व अवसर मिला और टाटा को आशातीत सफलता मिली। परन्तु युद्ध के समाप्त हो जाने के उपरान्त विदेशी इस्पात बनाने वाले कारखानों ने बहुत सस्ते दामों पर इस्पात बेचना आरम्भ कर दिया। टाटा के कारखाने को घाटा होने लगा। स्थिति भयंकर हो गई। यह भय होने लगा कि टाटा आयरन एन्ड स्टील कम्पनी दिवालिया हो जायेगी। टाटा कम्पनी ने भारत सरकार से संरक्षण की माँग की। लोकमत तथा एसेम्बली ने भी इस माँग का समर्थन किया। अन्त में टैरिफ बोर्ड की सिफारिश के अनुसार भारत सरकार ने इस्पात के धन्धे को संरक्षण प्रदान किया और टाटा कम्पनी बच गई। क्रमशः टाटा कम्पनी ने व्यय में कमी करना आरम्भ किया और उसकी आर्थिक स्थिति सुधर गई। सन् १९३९ के पूर्व टाटा कम्पनी की स्थिति बहुत अच्छी थी और वह विदेशी इस्पात से बहुत आसानी से मुकाबला कर सकती थी। सन् १९३९ के युद्ध के फलस्वरूप इस कारखाने की आर्थिक स्थिति और दृढ़ हो गई है। टाटा का कारखाना बहुत बड़ा है। पश्चिमी संसार के बाहर बड़े लोहे के कारखानों में से वह सबसे बड़ा है। टाटा के कारखानों में रेल, गर्डर तथा अन्य इस्पात की वस्तुयें तो बनती ही हैं, परन्तु अभी थोड़ा समय हुआ कि टाटा कम्पनी ने एक टिनप्लेट बनाने का कारखाना भी खड़ा किया है। यही नहीं टाटा का कारखाना भविष्य में जूट और चाय की मशीनें, तार तथा अन्य इस्पात का सामान बनाने का विचार कर रहा है।

इन कारखानों के अतिरिक्त कलकत्ता की बर्न कम्पनी ने इंडियन आयरन स्टील कम्पनी के नाम से हीरापुर में एक कारखाना खोला। कलकत्ते की बर्ड-एन्ड कम्पनी ने भी मनोहरपुर में यूनाइटेड-स्टील कारपोरेशन आफ इन्डिया लिमिटेड नामक एक कारखाना स्थापित किया। अब यह दोनों कम्पनियाँ मिल कर एक कम्पनी बन गई हैं। इसे इन्डियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनी कहते हैं।

बङ्गाल और बिहार के बाहर केवल एक ही लोहे का कारखाना है जो कि मैसूर राज्य में है। यह कारखाना भद्रावती नामक स्थान पर है और मैसूर रेलवे लाइन को बिरुरशिमोगा शाखा इसको जोड़ती है। कारखाना भद्रा नदी के पश्चिमी किनारे पर है। कारखाने के समीप ही बहुत बड़े जङ्गल हैं जिनको लकड़ी के कोयले से कारखाने में लोहा गलाया जाता है। मैसूर राज्य में कोयला नहीं है और बङ्गाल बिहार से कोयला मँगाकर लोहा गलाना बहुत ही खर्चीला है अतएव भद्रावती के कारखाने में लकड़ी के कोयले का उपयोग किया जाता है। भारत में केवल भद्रावती का ही कारखाना ऐसा है जहाँ लकड़ी का कोयला काम आता है। कच्चा लोहा मानगुन्दी की खानों से आता है। ये खानें बाबाबूदन की पहाड़ियों में स्थित हैं और भद्रावती से केवल २६ मील दक्षिण में हैं। लाइमस्टोन भद्रावती से केवल १३ मील पूर्व में भांदिगुदा नामक खानों से आता है। कच्चे लोहे तथा लाइमस्टोन को दृष्टि से भद्रावती की स्थिति अन्य कारखानों से अच्छी है। हाँ, यहाँ कच्चा लोहा बहुत अच्छा नहीं है।

लोहा और इस्पात के अतिरिक्त इन कारखानों में बहुत सी रासायनिक वस्तुएँ कोक से तैयार होती हैं। इनमें सलफेट आफ अमोनिया और कोलतार मुख्य हैं। टाटानगर में कुल्टी तथा अन्य स्थानों पर, जहाँ लोहा गलाने के लिए कोक काम में लाया जाता है, कोलतार तथा अमोनिया सलफेट तैयार किया जाता है और लकड़ी का एलकोहल (Wood Alcohol) तथा लकड़ी का टार (Wood Tar) तैयार किया जाता है। भद्रावती में लोहे के कारखाने की गौण वस्तुओं में विशेषकर स्लैग (Slag) का

उपयोग करने के लिए सरकारी कारखाना अभी थोड़े ही दिन हुए स्थापित किया गया है।

भारत में १९५१ में ११ लाख टन इस्पात तैयार होता था। प्रथम पंच-वर्षीय योजना की समाप्ति पर १९५६ में १३ या १४ लाख टन तैयार होता है और दूसरी योजना का लक्ष्य ४३ लाख टन इस्पात उत्पन्न करने का है। इस समय तो टाटा का कारखाना ९० प्रतिशत इस्पात तैयार करता है।

पिछले कुछ वर्षों से टाटा के कारखाने ने इस्पात की चादर, कृषि-यन्त्र तथा अन्य प्रकार की मशीनें बनाना आरम्भ कर दिया है तथा रेलवे एञ्जिन बनाने का एक कारखाना भी स्थापित किया है। इसके अतिरिक्त इस्पात का उत्पादन भी बढ़ाया जा रहा है।

भविष्य—ऊपर के विवरण से यह स्पष्ट हो गया होगा कि भारत में लोहे के धन्धे का भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल है। कच्चे लोहे की इस देश में कमी नहीं है। ऊँचे दर्जे का हैमेटाइट लोहा बिहार और उड़ीसा में ही ८०० करोड़ टन होने का अनुमान है। इसके अतिरिक्त मध्यप्रदेश, मद्रास और बम्बई में भी हैमेटाइट और मैगनेटाइट जाति का ३०० करोड़ टन कच्चा लोहा भरा पड़ा है। भारतीय कच्चे लोहे में शुद्ध लोहे का अंश बहुत अधिक है। कच्चे लोहे को शुद्ध करने के लिए चूना, पत्थर आदि का उपयोग होता है, वह भी हमारे देश में मिलता है। मैंगनीज और सिलीकोन की भी आवश्यकता होती है। यह धातु भी हमारे यहाँ उपलब्ध है। रहा प्रश्न कोयले का, तो अच्छे कोयले के बारे में यद्यपि हमारी स्थिति बहुत अच्छी नहीं है परन्तु इस्पात के धन्धे के लिए यथेष्ट कोयला हमें प्राप्त है। सारांश यह कि कच्चे माल की हमारे पास कमी नहीं है। जहाँ तक इस्पात की माँग का प्रश्न है वह भी यथेष्ट मात्रा में है और वह भी उत्तरोत्तर बढ़ने लगी है। इस्पात की मौजूदा उत्पादन शक्ति १४ लाख टन के लगभग है और हमारी माँग २५ लाख टन के लगभग है फिर जैसे-जैसे आर्थिक विकास की योजनायें कार्यान्वित होंगी देश में इस्पात की माँग बढ़ेगी। देश की मकानों की समस्या को हल करने के लिए तथा सिंचाई और बिजली आदि की

योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए काफी इस्पात की आवश्यकता होगी। इसके अतिरिक्त हम दक्षिण-पूर्व एशिया की माँग भी पूरी कर सकते हैं।

इस्पात के उत्पादन को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से सरकार ने टाटा, मैसूर के भद्रावती, और इन्डियन आयरन एण्ड स्टील कारखानों को करोड़ों रुपए ऋण दिया है। इन्डियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनी को अन्तर्राष्ट्रीय बैंक से एक बड़ा ऋण ४ करोड़ १५ लाख डालर का प्राप्त हुआ है। परिणाम-स्वरूप अब इन कारखानों का उत्पादन पहले की अपेक्षा बहुत अधिक बढ़ जायेगा।

इस्पात के नये कारखाने

रूरकेला का कारखाना—भारत सरकार द्वारा प्रसिद्ध जर्मन फर्म 'क्रुप्स-डेमाग' के सहयोग से ६५ करोड़ रुपये की लागत का एक विशाल इस्पात बनाने का कारखाना उड़ीसा में 'रूरकेला' नामक स्थान पर खड़ा किया जा रहा है।

उड़ीसा में इस्पात के कारखाने के बन जाने पर उससे प्रतिवर्ष दस लाख टन इस्पात तैयार होगा। इसके लिए 'बोनाई' के लौह प्रदेश से कच्चा लोहा मिलेगा, कोयला झरिया के खानों से प्राप्त होगा तथा चूने का पत्थर (लाइम स्टोन) बिरमित्रापुर की खदानों से मिलेगा। शुद्ध जल महानदी और ब्रहमनी नदियों से प्राप्त हो सकेगा जो सदैव बहती रहती हैं। ऐसा अनुमान है कि सन् १९५८ तक यह कारखाना तैयार हो जायेगा। इसमें प्रतिवर्ष १० लाख टन इस्पात तैयार होगा। इस कारखाने में आगे चलकर उत्पादन को ड्योढ़ा कर देने की व्यवस्था की गई है।

मध्यप्रदेश में भिलाई का कारखाना—१ फरवरी १९५५ को भारत सरकार ने रूस की सहायता से एक दूसरे बड़े इस्पात के कारखाने को बनाने का निश्चय किया। तत्संबंधी इकरारनामे पर भारत सरकार तथा सोवियट रूस ने हस्ताक्षर कर दिये। यह कारखाना मध्य प्रदेश में भिलाई नामक स्थान पर तंदुला नहर के समीप खड़ा किया जा रहा है। इसके लिये लोहा मध्य प्रदेश के

थाली राजहोरा लौह प्रदेश से मिलेगा; चूने का पत्थर मध्य प्रदेश के द्रुग, रायपुर, और विलासपुर जिलों से प्राप्त होगा; कोयला झरिया और कोरबा की खानों से आयेगा। तन्दुला नहर से यथेष्ट शुद्ध जल प्राप्त हो सकेगा। यह कारखाना दस लाख टन इस्पात तैयार करेगा।

दुर्गापुरा इस्पात का कारखाना

पश्चिमी बंगाल में दुर्गापुरा में भारत सरकार अँग्रेज विशेषज्ञों की सहायता तथा सहयोग से दस लाख टन इस्पात का एक तीसरा कारखाना स्थापित कर रही है।

इस समय भारत के कारखानों की इस्पात उत्पादन शक्ति लगभग १४ लाख टन है परन्तु ऊपर लिखे तीन विशाल कारखानों के बन जाने तथा ताता और अन्य कारखानों की उत्पादन शक्ति बढ़ जाने के उपरान्त द्वितीय पंचवर्षीय योजना के समाप्त होने पर १९६१ में भारत तैंतालीस लाख टन इस्पात तैयार करने लगेगा। ऐसा अनुमान है कि उस दशा में भारत थोड़ा इस्पात निर्यात भी करने लगेगा।

शक्कर का धन्धा (Sugar Industry)

सन् १९३१ से पूर्व भारत प्रतिवर्ष लगभग २० करोड़ रुपये की शक्कर विशेषकर जावा से मँगाता था। देश में गृह उद्योग-धन्धों के रूप में हाथ से शक्कर बनाने का धंधा प्रचलित था और कुछ कारखाने भी थे, किन्तु देश की माँग को पूरा करने के लिए बाहर से शक्कर मँगानी पड़ती थी। टैरिफ बोर्ड की सिफारिश पर भारत सरकार ने शक्कर के धंधे को संरक्षण प्रदान किया जिसके फलस्वरूप आश्चर्यजनक गति से शक्कर के कारखाने स्थापित होने लगे और भारत शीघ्र ही शक्कर की दृष्टि से स्वावलम्बी बन गया।

सूती वस्त्र की तरह शक्कर के धंधे को भी यह सुविधा है कि देश में ही उसकी खपत के लिये विशाल क्षेत्र है। टैरिफ बोर्ड ने १९३१ में अनुमान किया था कि भारत में ६० करोड़ रुपये की शक्कर की खपत होती है। क्रमशः देश

में शक्कर की माँग चाय पीने की आदत के साथ-साथ बढ़ती जा रही है। इस माँग पर शक्कर का धंधा निर्भर है।
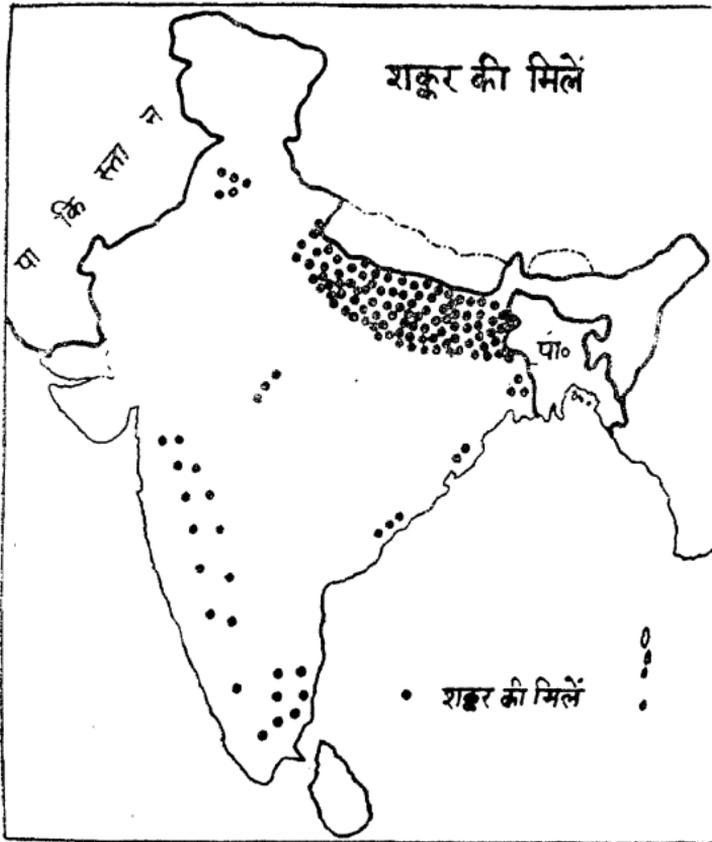
शक्कर के धंधे के लिए इस बात की नितान्त आवश्यकता है कि कारखाने के समीप ही गन्ने की खेती हो जिससे गन्ना मिलने में कठिनाई न हो। उत्तर भारत, विशेषकर उत्तर प्रदेश का उत्तरी भाग तथा बिहार में गन्ने की खेती कुछ क्षेत्रों में केन्द्रित है जिससे वहाँ शक्कर के कारखाने खड़े करने में विशेष सुविधा होती है। शक्कर के धंधे को एक सुविधा यह भी है कि उसके

लिए बाहरी ईंधन की बहुत कम आवश्यकता होती है। गन्ने के पेरने के बाद जो खोई बचती है उसे बायलर में जलाकर शक्ति उत्पन्न की जाती है; किन्तु केवल खोई से ही काम नहीं चलता, कुछ ईंधन कोयला या लकड़ी भी जलाना पड़ता है। उत्तर भारत में गाँवों में यथेष्ट ईंधन मिलता है। इसके अतिरिक्त बहुत से कारखाने तराई के पास हैं जहाँ ईंधन बहुत आसानी से मिल सकता है। यही कारण है कि शक्कर के बहुत से कारखाने लकड़ी और कुछ कोयला भी जलाते हैं। शक्कर के कारखानों में पानी की आवश्यकता होती है, परन्तु बहुत पानी की आवश्यकता नहीं होती। पानी ट्यूब वेल खोदकर प्राप्त किया जाता है अथवा नहरों से ले लिया जाता है। शक्कर के धंधे में कुशल मजदूरों की आवश्यकता कम होती है। अकुशल मजदूर गाँवों में सस्ती मजदूरी पर सब कहीं यथेष्ट संख्या में मिल जाते हैं। अतएव शक्कर के धन्धे का स्थानीकरण गन्ने की पैदावार पर निर्भर है।

भारत में लगभग १३८ शक्कर के कारखाने हैं। इसमें अधिकांश गङ्गा की घाटी में हैं। लगभग ७५ प्रतिशत कारखाने उत्तर प्रदेश तथा बिहार में हैं। पिछले दिनों दक्षिण में शक्कर की मिलें अधिक स्थापित हुई हैं क्योंकि वहाँ के गन्ने में शक्कर का प्रतिशत अधिक होता है। भारत में जितनी शक्कर उत्पन्न की जाती है, उसका ८०% केवल उत्तर प्रदेश और बिहार में ही उत्पन्न होती है। भारत सरकार ने शक्कर के धन्धे पर आबकारी कर (Excise-Tax) भी लगा दिया है और प्रतिवर्ष गन्ने का भाव भी निर्धारित करती है। यह आवश्यक है कि शक्कर को बाहर भी भेजने दिया जाय। अन्तर्राष्ट्रीय समझौते के अनुसार भारत से बर्मा के अतिरिक्त और कहीं शक्कर नहीं भेजी जा सकती है। अभी तो अपने देश में ही शक्कर की कमी है। करीब ६ लाख टन शक्कर विदेशों से आती है। अतः पञ्चवर्षीय योजना के अन्तर्गत सरकार ३० नई मिलें खोलने की व्यवस्था करेगी। आज देश में १७ लाख टन शक्कर उत्पन्न होती है। द्वितीय पञ्चवर्षीय योजना की समाप्ति पर यह २३ लाख टन हो जायगी।

बड़े-बड़े कारखनों के अतिरिक्त गन्ना उत्पन्न करने वाले क्षेत्रों में खांडसारी

अनुमान लगाया है वह इस प्रकार है। मजदूरी ५ आना, लकड़ी २ आना, रसायनिक पदार्थ १ आना, अन्य व्यय ५ आना। इससे स्पष्ट हो जाता है कि लागत व्यय में मजदूरी का अंश सबसे महत्वपूर्ण है। मजदूरी के उपरान्त लकड़ी पर ही सबसे अधिक व्यय होता है।

कलकत्ता और बम्बई दियासलाई के कारखानों के दो मुख्य केन्द्र हैं। कलकत्ते के कारखानों में अधिकतर भारतीय लकड़ी काम में लाई जाती है। दियासलाई के लिए उपयुक्त भारतीय लकड़ी सुन्दरवन तथा अंडमन द्वीप से आती है। कलकत्ते के कारखाने में जेनवा नामक लकड़ी का बहुत उपयोग होता है। जेनवा के अतिरिक्त पपीता, धूप, दिदू और बकोता की लकड़ी का भी उपयोग होता है। ये अंडमन द्वीप से आती हैं।

बम्बई के अधिकतर कारखानों में ऐसपन (Aspen) लकड़ी का उपयोग होता है। यह लकड़ी फिनलैंड तथा रूस से मँगाई जाती है, किन्तु कुछ दियासलाई के कारखाने गुजरात, बम्बई के भागों तथा उत्तर प्रदेश में हैं जो कि सेमल, आम तथा सलाई इत्यादि भारतीय लकड़ियों को काम में लाते हैं। दियासलाई की बत्ती के लिए आम की लकड़ी बहुत अच्छी होती है। सेमल बाक्स बनाने के लिए बहुत अच्छी होती है, किन्तु बत्ती बनाने के लिए अच्छी नहीं होती है। कुछ कारखानों ने सेमल के जङ्गल लगाये हैं जहाँ से वे अपने लिए लकड़ी प्राप्त करते हैं।

१६२० में भारत लगभग डेढ़ करोड़ रुपये से अधिक की दियासलाई विदेशों से, विशेषकर स्वीडन से, मँगाता था; किन्तु जब भारत सरकार ने दियासलाई के धन्धे को भी संरक्षण प्रदान किया तो स्वीडन के पूँजीपतियों और दियासलाई के व्यवसायियों ने भारत में ही अपने कारखाने स्थापति कर दिये। स्वीडिश दियासलाई के कारखानों ने लगभग सारे दियासलाई के व्यवसाय को हथिया लिया है। इसका फल यह हुआ है कि भारत दियासलाई नाम मात्र को ही विदेशों से मँगाता है। दियासलाई की दृष्टि से भी भारत स्वावलम्बी बन गया है। प्रतिवर्ष भारत के कारखाने २½ करोड़ ग्रोस बाक्स दियासलाई तैयार करते हैं। भारत सरकार ने दियासलाई पर आबकारी कर

लगा दिया है। दियासलाई वस्तुतः एक विदेशी धन्धा है। इस पर विदेशी (स्वीडिश) पूँजीपतियों का एकाधिपत्य है। भारतीय पूँजी तथा प्रबंध इस व्यवसाय में बिल्कुल नहीं है।

चमड़े का धन्धा
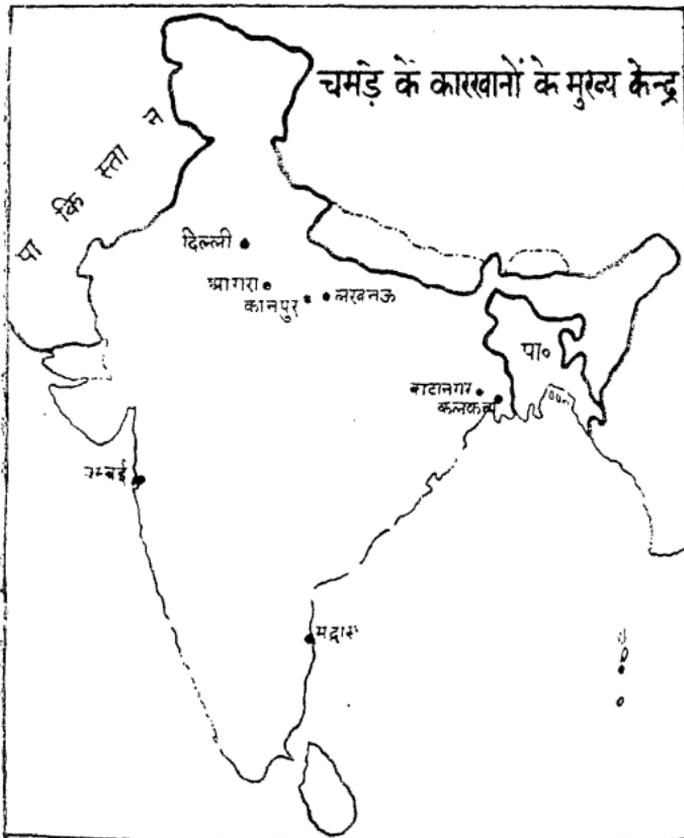
यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि भारत में पशुओं की संख्या बहुत है। साथ ही प्रतिवर्ष महामारी के कारण लाखों की संख्या में पशु मरते हैं। इसके अतिरिक्त मांस के लिए भी पशु मारे जाते हैं। अस्तु, भारत में खाल बहुत

होती है। यहाँ से प्रतिवर्ष लगभग आठ करोड़ रुपये की खाल विदेशों को, विशेष कर ब्रिटेन को जाती है। वन-सम्पत्ति के परिच्छेद में यह बतलाया जा चुका है कि चमड़ा कमाने के लिये वृक्षों की छालों तथा हर, बहेड़ा और आँवला के फलों की आवश्यकता होती है जो भारत के वनों में बहुत पाये जाते हैं। भारत में पुराने ढंग से चमड़ा कमाने की रीति बहुत समय से प्रचलित थी। आज भी गाँव के चमार पुरानी रीति से चमड़ा कमाते हैं, किन्तु सबसे पहले आधुनिक ढंग से चमड़ा तैयार करने तथा चमड़े का सामान बनाने के कारखाने सरकार ने खोले। बात यह थी कि सेना की आवश्यकताओं को पूरी करने के लिये बढ़िया चमड़े की आवश्यकता थी। अतएव सरकार ने कानपुर में गवर्नमेंट हारनेस सैडलरी फैक्टरी स्थापित की। कुछ समय उपरान्त अन्य पूँजीपतियों ने भी चमड़े के कारखाने खोले। क्रमशः कानपुर चमड़े के धंधे का केन्द्र बन गया। कानपुर खाल की मंडी है, यहाँ पानी मिलने की सुविधा है और बबूल की छाल भी मिल जाती है। मद्रास और बम्बई में भी चमड़े के कारखाने खोले गये हैं। दक्षिण भारत में चमड़ा कमाने के काम में आने वाली छाल बहुत मिलती है। इस कारण चमड़े का धंधा दक्षिण में केन्द्रित हो गया है। मद्रास में चमड़े के सबसे अधिक कारखाने हैं। इनके अतिरिक्त आगरा, सहारनपुर, देहली, बाटानगर, कलकत्ता और बम्बई चमड़े के कारखानों के मुख्य केन्द्र हैं। पिछले महायुद्ध के उपरान्त भारत में क्रोम पद्धति द्वारा क्रोम चमड़ा तैयार होने लगा। भारत सरकार ने धंधे को विदेशी चमड़े की प्रतिस्पर्धा से बचाने के लिये उसे संरक्षण प्रदान कर दिया। सन् १९३९ के यूरोपीय महायुद्ध के फलस्वरूप चमड़े के धन्धे की उन्नति हुई। इस समय भारत में लगभग ८ करोड़ जूते तैयार होते हैं।

शीशे का धन्धा

शीशे का धन्धा भारत का बहुत पुराना धन्धा है। सैकड़ों वर्षों से शीशे की चूड़ियाँ और शीशियाँ यहाँ बनती रही हैं। अब बहुत से स्थानों पर यह घरेलू उद्योग-धन्धे के रूप में होते हैं किन्तु आधुनिक ढङ्ग के कारखाने पिछले चालीस

वर्षों में खुले हैं। सन् १६०५ से १६१६ तक बहुत से कारखाने खोले गये परन्तु वे न चल सके। आरम्भ में केवल साधारण शीशे के बर्तन, शीशियाँ तथा चिमनी इत्यादि ही यहाँ तैयार होती थीं। वैज्ञानिक यन्त्र तथा खिड़कियों के लिए शीशे (Glass-Pan) तथा ग्लास-शीट यहाँ तैयार नहीं हो पाते थे। अब कुछ कारखाने इन वस्तुओं को तैयार करने लगे हैं।

शीशे के धन्धे के लिये अच्छी रेत और कोयला अत्यन्त आवश्यक है। अन्य जरूरी वस्तुयें सोडा, चूना और राख हैं। भारत में शीशा बनाने योग्य रेत की कमी नहीं है। अब कुछ समय से बंगाल की राजमहल पहाड़ियों में, नैनी (इलाहाबाद के पास), लोहगढ़ और बरगढ़ में, विन्ध्य के रेतीले पत्थरों को पीस कर, सानखेदा (बड़ौदा) के रेतीले पत्थरों तथा साबरमती नदी से, बीकानेर, जयपुर में सबाई माधोपुर तथा पञ्जाब में होशियारपुर जिलों में शीशा बनाने के योग्य रेत मिलती है। नैनी के पास पाई जाने वाली रेत अधिकांशतः वहाँ के कारखानों में काम आती हैं। सोडा ऐश (Soda Ash) बाहर से मँगाया जाता है।

प्रथम महायुद्ध के समय बहुत से कारखाने ऐसे स्थानों पर खोल दिये गये जहाँ आवश्यक कच्चे माल की सुविधा नहीं थी। इस दृष्टि से नैनी के कारखानों को कुछ असुविधाएँ हैं, जैसे कोयले का महँगा होना, (यदि बिजली सस्ते दामों पर मिल सके तो यह असुविधा दूर हो सकती है) कुशल कारीगरों की कमी (शीशे के धन्धे में कुशल कारीगर ही काम कर सकते हैं) और रेलों के द्वारा माल भेजने की असुविधा। रेलवे कम्पनियाँ माल भेजने के लिये विशेष प्रबन्ध नहीं करतीं।

भारत में अधिकांश कारखाने सिंध गंगा के मैदान में स्थित है। बात यह है कि यद्यपि भारत में मुख्य कच्चा माल (Raw Material) मिलता है किन्तु कठिनाई इस बात की है कि कारखाने कहाँ खड़े किये जायँ क्योंकि सब वस्तुएँ एक स्थान में नहीं मिलतीं। अतएव, यद्यपि भारत में १२५ से अधिक कारखाने हैं, सिंध गंगा के मैदान में ४५ कारखाने स्थित है। इस मैदान में रेलों का एक जाल सा बिछा हुआ है जिससे सब सामान को इकट्ठा करने में

सुविधा होती है। अधिकांश केन्द्र उत्तर प्रदेश में हैं। फीरोजाबाद इस धन्धे का सबसे बड़ा केन्द्र है। इसके अतिरिक्त बम्बई, जबलपुर, अम्बाला, नैनी, बहजोई, कलकत्ता आदि में भी बड़े-बड़े कारखाने हैं।

यद्यपि देश में आधुनिक ढंग के कारखाने स्थापित हो गये हैं फिर भी विदेशों से मुख्यतः बेलिजियम, चेकोस्लोवाकिआ, जर्मनी, इंगलैण्ड और जापान से भारत में सवा करोड़ रुपये के लगभग का सामान आता है। यहाँ के कारखाने अधिकतर चिमनी, बोतल, गिलास, छोटे छोटे जार, दावातें तश्तरियाँ और प्यालियाँ आदि बनाते हैं। अभी तक शीट ग्लास (Sheet Glass) और प्लेट ग्लास बहुत कम तैयार होता है।

बड़े बड़े कारखानों के अतिरिक्त भारत में पुराने ढंग से भी शीशे का सामान तैयार किया जाता है। अधिकतर ये घटिया चीजें होती हैं। ये नदियों की रेत तथा रेह से तैयार किये जाते हैं। इस कारण ये अच्छे और साफ नहीं होते। उत्तर प्रदेश में फीरोजाबाद तथा दक्षिण में बेलगाँव इसके मुख्य केन्द्र हैं। फीरोजाबाद में चूड़ियाँ बहुत अच्छी बनती हैं। इन केन्द्रों से भारत में चूड़ियाँ भेजी जाती हैं और सैकड़ों घर चूड़ी बनाने में लगे हैं।

सीमेंट का धन्धा

सीमेंट का धन्धा भी कुछ वर्षों में यहाँ उन्नति कर गया है। १९१४-१८ के प्रथम यूरोपीय महायुद्ध के समय भारत में बहुत कम सीमेंट बनाया जाता था। अधिकांश सीमेंन्ट विदेशों से आता था। किन्तु अब बहुत थोड़ा सीमेंट विदेशों से आता है। सम्भावना इस बात की है कि शीघ्र ही भारत सीमेंट की दृष्टि से भी स्वावलम्बी हो जायगा। ८० प्रतिशत से अधिक सीमेंट तो इस समय भी भारतीय कारखाने ही तैयार करते हैं।

सीमेंट के लिये लाइमस्टोन (Lime Stone), चिकनी मिट्टी (Clay) तथा कोयले की आवश्यकता होती है। थोड़ा जिपसम (Gypsum) भी आवश्यक है। भारत में लाइमस्टोन बहुत अच्छा और ढेरों मिलता है। मिट्टी भी मिलती है। देश में जिपसम निकाला जाता है, किन्तु उसे बहुत दूर से

लाना पड़ता है। कोयले की भी यही दशा है अधिकांश सीमेंट के कारखाने उन स्थानों पर स्थापित किये गये हैं जहाँ अच्छा लाइमस्टोन मिलता है। जहाँ भारतीय सीमेंट के कारखानों को लाइमस्टोन और चिकनी मिट्टी मिलने की सुविधा हैं वहाँ सबसे बड़ी कमी यह है कि कोयले की खानें बहुत दूर हैं। इस कारण कोयले के लिए बहुत व्यय करना पड़ता है।

लाइमस्टोन और चिकनी मिट्टी के मिक्सचर को तेज आँच देकर सीमेंट तैयार किया जाता है। मिक्सचर में तीन चौथाई कैलशियम कारबोनेट (Calcium Carbonate) तथा एक चौथाई चिकनी मिट्टी रहती है। मिक्सचर में थोड़ा सा जिपसम भी रहता है। कहीं-कहीं लाइमस्टोन ऐसा पाया जाता है जिसमें सभी आवश्यक चीजें ठीक मात्रा में मिलती हैं और अन्य वस्तुएँ मिलानी नहीं पड़तीं।

मद्रास और कठियावाड़ के सीमेंट के कारखानों को छोड़ कर और सभी कारखाने देश के भीतरी भागों में स्थित हैं। इस कारण ये सीमेंट को अपने-अपने क्षेत्र में आसानी से बेच सकते हैं। हाँ, मद्रास और काठियावाड़ के सीमेंट के कारखानों को, जो बन्दरगाहों में हैं, विदेशी सीमेन्ट की प्रतिद्वंद्विता का सामना करना पड़ता है। भारत सरकार ने बाहर से आने वाले सीमेंट पर ६% का ड्यूटी लगा दी है। सीमेंट के कारखाने ग्वालियर, चुर्क (उत्तर प्रदेश) कटनी, बूँदी, बिहार, बङ्गाल काठयावाड़ तथा मद्रास में हैं।

१६५१ में भारत में २७ लाख टन सीमेन्ट तैयार होता था, १६५६ मे उत्पादन बढ़ कर ४३ लाख टन हो गया है। सन् १६६१ के अंत तक १ करोड़ ३० लाख टन सीमेन्ट भारत में तैयार किये जाने की आशा की जाती है। इसके लिये नये कारखाने स्थापित किए जायेंगे।

इस समय देश में २६ सीमेन्ट के कारखाने सीमेन्ट तैयार कर रहे हैं जिनकी उत्पादन क्षमता ५० लाख टन है। राज्यवार सीमेन्ट के कारखानों का ब्यौरा नीचे लिखे अनुसार है :—

	संख्या	उत्पादन क्षमता
बिहार	६	१,१६०,००० टन
उड़ीसा	१	१६५,००० ,,
उत्तर प्रदेश	१	२००,००० ,,
मध्य प्रदेश	१	३५०,००० ,,
राजस्थान	१	५२५,००० ,,
मध्य भारत	१	६०,००० ,,
पैप्सू	२	३८२,००० ,,
सौराष्ट्र	३	५६२,००० ,,
बम्बई	२	३००,००० ,,
मद्रास तथा आंध्र	५	८८२,००० ,,
मैसूर	१	६०,००० ,,
		उत्पादन क्षमता
त्रावणकोर-कोचीन	१	५०,००० ,,
हैदराबाद	१	२८०,००० ,,
जोड़	२६	५०,०६,००० ,,

सीमेंट के धन्धे में एक विशेष बात है। इसमें कारखानों के समूह संगठित हो गए हैं। उदाहरण के लिए एसोसियेटेड सीमेंट कम्पनी १४ सीमेंट के कारखानो का संचालन करती है। इसी प्रकार डालमिया समूह कई कारखानों का संचालन करता है। भारत सरकार ने इस भय से कि इनका धन्धे पर एकाधिकार न हो जाय इन समूहों को अधिक कारखाने स्थापित करने की आज्ञा नहीं दी है वरन् अन्य व्यवसायियों को नये कारखाने स्थापित करने की आज्ञा

दी सरकार ने भी तीन कारखाने स्थापित किए हैं। भाखरा नांगल में भी
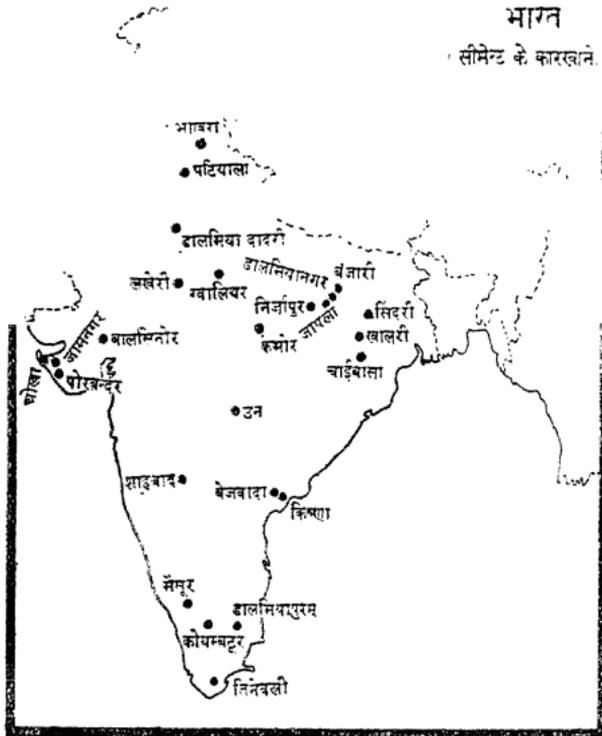
एक नया कारखाना स्थापित हो रहा है। द्वितीय पंचवर्षीय योजना की समाप्ति पर सीमेंट का उत्पादन आज से तिगुना हो जायगा।

कागज का धंधा

भारत में कागज बनाने के लिए यथेष्ट कच्चा माल है। अधिकतर कागज बाँस, सवाई घास और भाभर घास से तैयार होता है। यह घास इङ्गलैंड की स्पार्टा घास के समान ही है। किन्तु इन घासों में खराबी यह है कि वे दूसरी घासों से मिली रहती हैं। इस कारण उन्हें शुद्ध रूप में प्राप्त कर सकना कठिन है। साथ ही ये घासें यथेष्ट नहीं हैं। इन घासों के अतिरिक्त

बेब घास का भी उपयोग कागज को लुब्दी बनाने में होता है। इसके विपरीत बाँस तथा अन्य कच्चा माल अनन्त राशि में मिलता है। अन्य देशों में कागज लकड़ी की लुब्दी से तैयार किया जाता है, किन्तु भारत में कागज बनाने
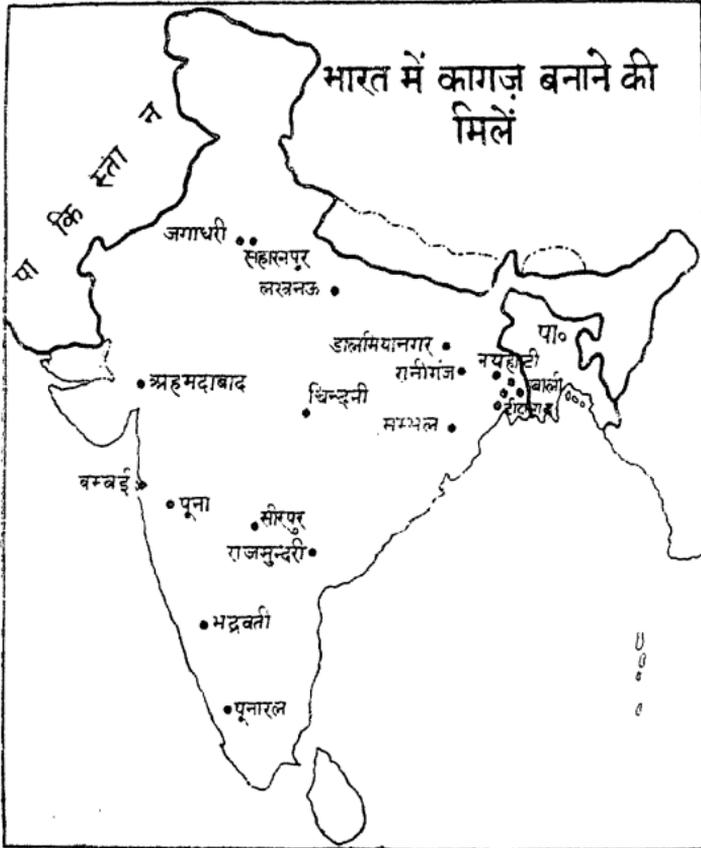
योग्य वन इतने ऊँचाई पर हैं कि उनका उपयोग नहीं किया जा सकता। बाँस भारत में बहुत अधिक मात्रा में मिलता है। साथ ही बाँस का वन बहुत जल्दी ही फिर उग आता है। जहाँ लकड़ी के वनों को फिर से उगने में पचासों वर्ष लगते हैं, वहाँ बाँस का वन दो वर्ष में ही तैयार हो जाता है। अतएव जहाँ तक बाँस का सम्बन्ध है भारत के वनों में बाँस अनन्त राशि में भरा पड़ा है।

किन्तु बाँस से बना हुआ कागज घास के बने हुये कागज की अपेक्षा कम टिकाऊ होता है। बाँस की लुब्दी में बिना लकड़ी की लुब्दी मिलाये कागज नहीं बनाया जा सकता है। घास की लुब्दी में भी थोड़ी लकड़ी की लुब्दी मिलानी पड़ती है। बाँस का बना कागज चिकना और सुन्दर होता है।

भारत में साधारण छापे के कागज को बनाने के लिये घास या बाँस की लुब्दी के साथ लकड़ी की लुब्दी मिलाई जाती है। बढ़िया कागज़ बनाने के लिए कारखाने विदेशों से लकड़ी की लुब्दी मँगाते हैं और उससे कागज तैयार करते हैं। भारत में पुट्ठा तो बहुत कम उत्पन्न होता है। इस समय देश में १५ पेपर-मिलें कागज और कार्डबोर्ड प्रतिवर्ष एक लाख टन से अधिक तैयार कर रही हैं। फिर भी भारत को अधिकांश कागज विदेशों से मँगाना पड़ता है। अधिकांश विदेशों से आने वाला कागज समाचार-पत्रों तथा पुस्तकों की छपाई के काम आता है। भारत में साधारणतया एक करोड़ रुपये का कागज विदेशों से आता है। १९३९ के यूरोपीय महायुद्ध के कारण बाहर से कागज आना प्रायः बन्द हो गया। इस कारण देश की मिलों को अपनी उत्पत्ति बढ़ाने का अपूर्व अवसर मिला।

भारत में कागज की मिलें

मिलें		प्रदेश		उत्पादन शक्ति
टीटागढ़ पेपर मिल	...	पश्चिमी बंगाल	...	४०,००० टन
बंगाल पेपर मिल	...	,, ,,	...	१४,००० ,,
इण्डियन पेपर मिल	...	,, ,,	...	६,००० ,,
श्री गोपाल पेपर मिल	...	पूर्वी पंजाब	...	१८,००० ,,
स्टार पेपर मिल	...	उत्तर प्रदेश	...	४,५०० ,,
अपर इंडिया कूपर-पेपर मिल	...	,, ,,	...	१,६०० ,,
रोहतास इंडस्ट्रीज	...	बिहार	...	१६,००० ,,
दक्षिण पेपर मिल	...	बम्बई	...	२,५०० ,,

मिलें	प्रदेश		उत्पादन-शक्ति
गुजरात पेपर मिल ...	बम्बई	...	१,५०० टन
पदम जी पेपर मिल ...	,,	...	१,१०० ,,
ओरियंट पेपर मिल ...	उड़ीसा	...	३८,००० ,,
आंध्र पेपर मिल ...	आंध्र	...	२,००० ,,
सिरपुर पेपर मिल ...	हैदराबाद	...	१५,००० ,,
मैसूर पेपर मिल ...	मैसूर	...	८,००० ,,
पुनालूर पेपर मिल ...	ट्रावंकोर-कोचीन	...	४,००० ,,
			१६४,५०० टन

तीन मिलें अभी और भी बन रही हैं जिनकी उत्पादन शक्ति १४,५०० टन होगी। उनके नाम हैं त्रिवेणी, कावेरी-वैली तथा बल्लारपुर पेपर मिल।

नेपा मिल्स—भारत में अभी तक अखबारी कागज बिलकुल नहीं बनता था। उस कमी को पूरा करने के लिए भारत तथा मध्यप्रदेश की सरकार ने एक बहुत बड़ा अखबारी कागज बनाने का कारखाना मध्यप्रदेश के नेमाड़ जिले में स्थापित किया है। अब यह कारखाना बन कर तैयार हो गया है और अखबारी कागज देश में बनने लगा है।

१९५०-५१ में भारत में १ लाख १४ हजार टन कागज तैयार हुआ। १९५६ में पहली पंचवर्षीय योजना के समाप्त होने पर कागज का उत्पादन बढ़कर दो लाख टन हो गया है। द्वितीय पञ्चवर्षीय योजना की समाप्ति पर ३ लाख ५० हजार टन कागज उत्पन्न होने लगेगा। इसका परिणाम यह होगा कि देश की माँग तो पूरी होगी ही, कुछ निर्यात भी होगा।

कुटीर उद्योग-धंधे (Cottage Industries)

भारत में बहुत प्राचीन काल से कुटीर उद्योग-धन्धे महत्वपूर्ण रहे हैं और आज भी कुटीर उद्योग-धंधे नष्ट नहीं हो गये हैं। भारत में बड़े-बड़े कारखाने केवल बड़े-बड़े औद्योगिक केन्द्रों और नगरों में ही दृष्टिगोचर होते हैं। गाँव में आज भी कुटीर उद्योग-धंधे प्रचलित हैं। कुटीर उद्योग-धंधे किसी स्थान विशेष पर केन्द्रित नहीं हैं। वे देश भर में बिखरे हुए हैं। कुछ जाति

विशेष उन धन्धों को करती हैं। बेटा बाप से काम सीख लेता है। वही पुराने ढंग से काम होता है, औजार बहुत साधारण होते हैं और अधिकतर गाँवों में ही तैयार हो जाते हैं। कच्चा माल भी गाँवों में ही उत्पन्न होता है और तैयार माल की खपत गाँवों में ही होती है। कुटीर उद्योग-धन्धे के साथ-साथ कारीगर खेती भी करते हैं। जब खेती से अवकाश मिलता है तो वे धन्धे के द्वारा कुछ कमा लेते हैं। इन धन्धों में कोई सुधार नहीं हुआ है। वही पुराने ढंग की डिजाइनें ये लोग तैयार करते हैं और पुराने औजारों को काम में लाते हैं। स्थिति सुधारने के लिए भारत सरकार ने चार उत्पादन सम्बन्धी खोज करने के केन्द्र स्थापित करने का निर्णय किया है। बिक्री सुधार के हेतु एक बिक्री-सेवा निगम तथा छोटे उद्योग निगम स्थापित किए गए हैं। सरकारी विभाग में विकास कमिश्नर के अंतर्गत एक छोटा उद्योग-धन्धा बोर्ड भी स्थापित किया गया है जो कुटीर उद्योगों के विकास, और उनमें तथा बड़े उद्योगों में समन्वय प्राप्त करेगा।

वैसे तो देश भर में कुटीर उद्योग-धंधे फैले हैं, परन्तु कोई-कोई स्थान वहाँ के कारीगरों की कुशलता के कारण विशेष प्रसिद्ध हो गये हैं। ऐसे स्थानों में कोई धन्धा विशेष केन्द्रित हो जाता है, उदाहरण के लिये बनारस के रेशम और मुरादाबाद के पीतल के बर्तन का धन्धा इत्यादि।

कुटीर उद्योग धन्धों में हाथ-कर्घे से कपड़ा तैयार करने का धन्धा सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। यह अनुमान किया जाता है कि देश में लगभग पचास लाख बुनकर इस धन्धे में लगे हुए हैं। हाथ-कर्घों से देश की कुल कपड़े की माँग का २५% कपड़ा उत्पन्न होता है और देश में जितना कपड़ा तैयार होता है उसका लगभग ४० प्रतिशत कपड़ा हाथ-कर्घों से तैयार होता है। देश में लगभग २५ लाख कर्घे चलते हैं। वैसे तो देश के प्रत्येक भाग में हाथ-कर्घे से कपड़ा तैयार होता है, किन्तु जिन प्रदेशों में रेलवे लाइन तथा गमनागमन की सुविधा कम है वहाँ यह धन्धा अधिक महत्वपूर्ण है। आसाम, प० बङ्गाल, मद्रास तथा राजस्थान में यह धन्धा विशेष महत्वपूर्ण है। आसाम में लगभग ४,५०,००० कर्घे हैं। हाथ-कर्घे के बुनकर अब मिलों का

सूत काम में लाते हैं। कुछ वर्षों तक हाथ कर्घों के बुनकर अधिकतर विदेशी सूत को काम में लाते थे, किन्तु कुछ वर्ष हुए कि भारत सरकार ने विदेशों से आने वाले सूत पर ड्यूटी लगा दी जिससे हाथ-कर्घे के बुनकर अब देशी मिलों का सूत काम में लाते हैं। भारत सरकार ने प्रादेशिक सरकारों के द्वारा हाथ-कर्घे के धंधे को सहायता दी थी। आज देश भर में प्रादेशिक सरकारें इस धन्धे को सहायता और प्रोत्साहन दे रही हैं।

हाथ-कर्घे के धन्धे को देशी मिलों की प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ता है। हाथ कर्घे के बुनकरों के सामने कुछ कठिनाइयाँ हैं। वे आधुनिक डिजाइनें तैयार नहीं कर सकते, बाजार में कौन सी डिजाइनें अधिक पसन्द की जाती हैं यह मालूम करने का उनके पास कोई साधन नहीं होता और न वे अपने माल को अच्छी तरह बाजार में बेच ही सकते हैं।

प्रत्येक प्रदेश में प्रादेशिक सरकार ने हैंड-लूम इम्पोरियम स्थापित किये हैं अथवा सहकारी यूनियन को सहायता दी है, जो हाथ-कर्घे के द्वारा तैयार कपड़े बेचती हैं। हाथ-कर्घे का धन्धा देश का एक महत्वपूर्ण धन्धा है। यदि सहकारी बुनकर समितियों के द्वारा इस धन्धे का संगठन किया जाय और प्रादेशिक सहकारी बुनकर यूनियन सम्बन्धित समितियों के कपड़े को बेचने का प्रबन्ध करें, बुनकर समितियों को सूत देने का प्रबन्ध करें, नये डिजाइनों का आविष्कार करवा कर समिति के सदस्यों को बतलायें, लोगों की रुचि का अध्ययन करें तथा कर्घे इत्यादि की उन्नति का प्रयत्न करे तो यह धन्धा विशेष उन्नति कर सकता है।

हाथ-कर्घे के धन्धे के अतिरिक्त पू० पञ्जाब, काश्मीर तथा उत्तर प्रदेश में गलीचे और कम्बल का धन्धा महत्वपूर्ण है। काश्मीर के गलीचे विदेशों को भेजे जाते हैं किन्तु अब इस धन्धे की दशा अच्छी नहीं है, क्योंकि इसे मिलों द्वारा बने हुए गलीचे का मुकाबला करना पड़ता है। हाथ से बने हुये गलीचे अधिक मूल्य के होते हैं। तब भी उनकी माँग कम नहीं है। कम्बल का धंधा उत्तर प्रदेश में मिर्जापुर, राजस्थान, तथा पू० पञ्जाब में बहुत प्रचलित है।

इन धन्धों के अतिरिक्त पीतल के बर्तन, चमड़े की चीजें, लकड़ी, तेल पेरना, कुम्हारी, लोहारी, रस्सी बनाना इत्यादि मुख्य कुटीर-धन्धे हैं। भारत में कुटीर-धन्धों का विशेष महत्व है। महात्मा गाँधी का ग्राम-उद्योग-संघ इस ओर विशेष प्रयत्न कर रहा है। इसके अतिरिक्त प्रादेशिक सरकारें कुटीर-धन्धों को प्रोत्साहन दे रही हैं। विदेशों में स्थित भारतीय व्यापार-कमिश्नरों की रिपोर्टों से पता चलता है कि अमेरिका, कैनेडा, आस्ट्रेलिया आदि देशों में भारतीय हाथ से बने भाँति-भाँति के कपड़े तथा वस्तुओं की काफी माँग है।

प्रथम पञ्चवर्षीय योजना के अनुसार हाथ-कर्घे के धन्धे को पाँच वर्षों में इतना उन्नत किया गया कि उसका उत्पादन पहले से दुगुना हो जाय। १९५१ में हाथ-कर्घों से १२० करोड़ गज कपड़ा उत्पन्न होता था किन्तु १९५६ में इसकी मात्रा बढ़ कर १७० करोड़ गज हो गई। हाथ-कर्घे के धन्धों, खादी, तथा गृह-उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन देने के लिए भारत सरकार ने तीन बोर्ड अभी हाल में स्थापित किए हैं—(१) हैंडलूम बोर्ड, (२) खादी तथा ग्रामोद्योग बोर्ड, तथा (३) गृह उद्योग-बोर्ड। यह बोर्ड भारत सरकार को परामर्श देते रहेंगे कि इन धन्धों की उन्नति किस प्रकार की जा सकती है। अभी हाल में खादी तथा हाथ-कर्घे के धन्धे को प्रोत्साहन देने के लिए भारत सरकार ने मिलों पर प्रतिबन्ध लगा दिया है कि वे रंगीन साड़ियाँ न बनावें तथा सफेद साड़ियाँ भी जितनी आज बनाती हैं उसकी ४० प्रतिशत ही बनायें। यही नहीं, भारत सरकार ने मिल के कपड़े पर एक पैसा प्रति गज उत्पादन कर लगा दिया है। द्वितीय पञ्चवर्षीय योजना के अंतर्गत तो यह चेष्टा है कि करघों पर ३५० करोड़ गज कपड़ा तैयार किया जाने लगे। इस संबंध में सूत की पूर्ति की कठिनाई होगी। उसके लिए एक साथ पाँच सूत कातने वाले अंबर चर्खे का आविष्कार किया गया है। मिलों को ५०० करोड़ गज से अधिक कपड़ा नहीं बनाने दिया जायगा।

भारत के कुछ नवीन धन्धे

भारत में युद्धकाल में कुछ नवीन धन्धों का प्रारम्भ हुआ है जिनमें नीचे लिखे मुख्य हैं :—

समुद्री जहाज बनाने का धन्धा :—अभी तक कलकत्ता और विशाखापट्टम में केवल नावें बनाई जाती थीं, किन्तु अभी कुछ समय हुआ सिंधिया कम्पनी ने विशाखापट्टम में समुद्री जहाज बनाने का धन्धा आरम्भ किया था और कुछ जहाज भी बनाकर तैयार किये थे परन्तु कुछ समय पूर्व भारत सरकार ने इसको खरीद लिया और उसका नाम हिन्दुस्तान शिपयार्ड लिमिटेड रख दिया गया है। इसमें प्रतिवर्ष चार आधुनिक ढंग के बड़े जहाज़ तैयार होते हैं। अभी तक कई जहाज तैयार हो चुके हैं। विशाखापट्टम में पानी गहरा है इस कारण वहाँ बड़े जहाज बनाये भी जा सकते हैं। टाटानगर विशाखापट्टम से रेल द्वारा जुड़ा है, गोंडवाना की कोयले की खानें समीप हैं तथा छोटा नागपुर से आवश्यक लकड़ी मिल सकती है। अतः विशाखापट्टम को वे सभी सुविधाएँ प्राप्त हैं जो जहाज बनाने के लिये आवश्यक हैं। यहाँ कई जहाज बन चुके हैं। अब सरकार एक दूसरा जहाज बनाने का यार्ड स्थापित करने जा रही है जिससे और अधिक जहाज बन सकें।

हवाई जहाज का धन्धा—लड़ाई के दिनों में बङ्गलोर में हवाई जहाज बनाने के लिए एक कारखाना स्थापित किया गया। बंगलोर में हवाई जहाज बनाने के लिए सभी सुविधायें हैं। भद्रावती के लोहे के कारखाने समीप ही हैं; मैसूर में जलविद्युत बहुत मिल सकती है, बंगलोर की जलवायु उपयुक्त है तथा वहाँ वैज्ञानिक इंस्टिट्यूट भी हैं।

मोटर का धन्धा :—युद्ध काल में भारत के दो प्रसिद्ध व्यवसायियों (श्री बिड़ला तथा श्री बालचन्द हीराचन्द) ने मोटरकार बनाने के कारखाने स्थापित किये। अब देश में चार कारखाने मोटरकार बनाने लग गये हैं। इनमें हिन्दुस्तान मोटर्स तथा प्रीमियर आटोमोबाइल्स मुख्य हैं। इस समय देश में प्रति वर्ष २५ हजार मोटर कार बनते हैं। १९६१ तक प्रति वर्ष ५७ हजार मोटर कार बनने लगेंगे।

चितरंजन में रेल का एंजिन बनाने का कारखाना

भारत सरकार ने कलकत्ते से कुछ दूर चित्तरंजन में रेल के एञ्जिन बनाने का एक बड़ा कारखाना स्थापित किया है जिससे एञ्जिन बनकर निकलने लगे

हैं । इसके अतिरिक्त टाटा लोकोमोटिव का कारखाना भी रेल के एञ्जिन बनाता है । सन् १६५६ में इन दोनों कारखानों ने १७५ एंजिन बनाये । १६६१ तक ये दोनों कारखाने प्रति वर्ष ४०० एञ्जिन बनाने लगेंगे ।

सिंद्री का खाद का कारखाना

भारत में खाद्य पदार्थों की कमी को दूर करने के लिए जो 'अधिक अन्न उपजाओ' आन्दोलन चलाया गया, उसको सफल बनाने के लिये जो प्रयत्न किये गये, उनके अन्तर्गत सिंद्री का खाद का कारखाना भी मुख्य है । सिंद्री का कारखाना १६५२ के प्रारम्भ में बनकर तैयार हुआ । उसकी लागत ३५ करोड़ रुपये से अधिक है और प्रतिवर्ष उससे ३० लाख टन खाद तैयार होगी । खाद की दृष्टि से भारत स्वावलम्बी हो जायगा और विदेशों से जो खाद आती है उसका आना बन्द हो जायगा । सिन्द्री का खाद का कारखाना बिहार में स्थित है । द्वितीय पञ्चवर्षीय योजना में एक खाद का कारखाना नांगल तथा दूसरा कारखाना सरकेला में खोला जायगा ।

ऊपर लिखे धंधों के अतिरिक्त बाइसिकिलें, सिलाई की मशीनें, डीजिल एंजिन, मशीन-टूल तथा शक्ति संचालित कर्घ बनाने का धंधा भी देश में स्थापित हो गया है । इसके अतिरिक्त रासायनिक पदार्थ भी अब देश में बनने लगे हैं ।

इनके अतिरिक्त भारत सरकार ने नीचे लिखे धंधे और स्थापित किए हैं :—

१. टेलीफ़ोन बनाने का कारखाना जो २५,००० टेलीफोन प्रति वर्ष बनाता है ।

२. रेल के डिब्बों को बनाने का कारखाना जो लगभग चार हजार से अधिक डिब्बे बनाने लगा है ।

३. बङ्गलोर का बिजली का सामान तैयार करने का कारखाना ।

४. नेपा मिल्स जो भारत सरकार और मध्य प्रदेश की सरकार के सहयोग

से मध्य प्रदेश में अखबारी कागज (न्यूज प्रिंट) बनाने के लिये स्थापित की गई है। इसमें उत्पादन कार्य शुरू हो गया है।

इन सरकारी कारखानों के अतिरिक्त पिछले वर्षों में निजी उद्योग-धंधे भी भारत में बहुत स्थापित हुये हैं। उदाहरण के लिये साइकिल बनाने का धंधा, सिलाई की मशीनें बनाने का धंधा, लालटेन बनाने का धंधा। बम्बई के पास भारत सरकार के प्रोत्साहन से बर्मा शेल कम्पनी ने पैट्रोल के शोधन का बहुत बड़ा कारखाना स्थापित किया है। अब भारत तेजी से औद्योगिक उन्नति कर रहा है।

मशीन बनाने का धन्धा

देश में तेजी से उद्योग धंधों की उन्नति करने के लिये यह नितान्त आवश्यक है कि देश में ही मशीनें बनाने का धंधा स्थापित किया जाय। विदेशों से मशीन और यंत्र मँगाकर कोई भी देश औद्योगिक राष्ट्र नहीं बन सकता। भारत में अभी तक मशीन तथा यन्त्र बनाने का धंधा स्थापित नहीं हुआ था। यही उसकी सबसे बड़ी कमजोरी थी। यही कारण है कि द्वितीय पञ्चवर्षीय योजना के अन्तर्गत सरकार ने सूती वस्त्र, जूट, कागज, शक्कर, सीमेंट, मशीनरी तथा डीजिल एंजिन और ट्रैक्टर बनाने के कारखाने स्थापित करने का निश्चय किया है। अतएव १९६१ तक देश में मुख्य धंधों के लिये मशीन तथा यंत्र बनाने के कारखाने स्थापित हो जायँगे और देश इस दृष्टि से स्वावलम्बी हो जायगा। तभी भारत वास्तव में औद्योगिक राष्ट्र बन सकेगा।

अभ्यास के प्रश्न

१—भारत के उद्योग-धन्धों की गिरी हुई दशा के क्या कारण हैं? समझा कर लिखिये?

२—भारत में कौन-कौन से मुख्य उद्योग धन्धों की उन्नति की जा सकती है?

३—निम्नलिखित उद्योग-धन्धे कहाँ पाये जाते हैं और क्यों?:—लाख, चमड़ा, लोहा सीमेन्ट। (१९५३)

४—भारत में लोहा बहुत पाया जाता है, परन्तु उसका पूरा उपयोग नहीं हो पाता। इसके क्या कारण है? (१९५३)

५—निम्नलिखित भारतीय उद्योग-धन्धों के महत्व पर अपने विचार प्रकट कीजिए :—
शीशा, दियासलाई, कागज और सीमेंट। (उ० प्र० १९५२)

६—भारत में लोहे और फौलाद के उद्योग-धन्धों की वृद्धि के भौगोलिक कारण समझा कर बताइये।

७—भारत के आर्थिक क्षेत्र में रुई के कपड़े के धन्धे का क्या स्थान है? सकारण उत्तर दीजिये।

८—भारत में कुटीर-उद्योग-धन्धा कहाँ तक वांछनीय है? ऐसे धन्धों का क्यों ह्रास हो गया?

९—रेशम के उद्योग की वर्तमान अवस्था का वर्णन कीजिये। इस उद्योग के मुख्य दोष क्या हैं? उन्हें किस प्रकार दूर कर सकते हैं? (उ० प्र० १९४२)

१०—भारत में सूती उद्योग की वर्तमान दशा क्या है? उसके दोषों को स्पष्ट कीजिये और बतलाइये कि कैसे दूर किये जा सकते हैं। (उ० प्र० १९४३)

११—भारत कहाँ तक औद्योगीकरण के उपयुक्त है? इसके आर्थिक पहलू पर भी विचार कीजिये और बतलाइये कि वे कैसे दूर किये जा सकते हैं? (उ० प्र० १९४५)

१२—उत्तर प्रदेश में चीनी उद्योग के विकास के कारणों को बतलाइये और उनका संक्षिप्त वर्णन कीजिये। (उ० प्र० १९४६)

१३—बङ्गाल में जूट के उद्योग-की दृष्टि से हाथ की कताई से लाभ और सीमायें क्या हैं? (उ० प्र० १९४९)

१५—काँच के उद्योग में विकास के लिये क्या-क्या सुविधायें आवश्यक हैं? (उ० प्र० १९४९)

१६—भारतीय करघा उद्योग का संक्षिप्त वर्णन लिखिये और उनकी वर्तमान अवस्था की विवेचना कीजिये। (उ० प्र० १९५०)

१७—भारत की प्रमुख लोहे की खाने कहाँ हैं? दक्षिण भारत में बड़ी मात्रा के लोहे और इस्पात के उद्योग की क्या सम्भावना है? (उ० प्र० १९५२)

१८—क्या भारतवर्ष औद्योगीकरण के लिये योग्य है? भारत के प्राकृतिक साधनों का संक्षेप में वर्णन करिये (उ० प्र० १९४५)

१९—हाथ की कताई का गाँवों में खेती का सहायक धन्धे के रूप में क्या महत्व है और उसकी सीमायें लिखिए। (उ० प्र० १९४९)

२०—निम्नलिखित उद्योगों के लिये भारत में कौन सी भौगोलिक सुविधायें प्राप्त हैं?—चीनी, लोहा इस्पात और जहाज बनाना (उ० प्र० १९५१)

ग्यारहवाँ अध्याय

भारत की जनसंख्या

जनसंख्या का महत्व

किसी भी देश की जनसंख्या के दो महत्वपूर्ण गुण हैं। प्रथम, देश की सारी व्यवस्था वहाँ के रहने वालों की भलाई के लिये ही की जाती है। द्वितीय, देशवासियों को रहने-सहने की सुविधा मुफ्त में तो दी नहीं जा सकती; उन्हें उसके लिये काम करना पड़ता है। हर एक आदमीको काम तभी तो मिल सकता है जब काम की भरमार हो, अर्थात् जब देश में खेती, उद्योग-धंधों और नौकरियों की भरमार हो। अगर किसी देश की जनसंख्या तेजी से बढ़ रही हो और वहाँ काम की वृद्धि न हो तो उस देश के निवासियों की हालत गिर जायगी। वहाँ घरों में लोग भरे पड़े होंगे। उनकी तन्दुरुस्ती गिरी हुई होगी। वे तपेदिक आदि रोगों के शिकार होंगे। अपनी गिरती हुई हालत से बचने के लिये वे चोरी, बेईमानी तथा बुरे चाल-चलन की ओर झुकने लगेंगे। हमारे भारत में आजकल ऐसी ही हालत है। हमारी संख्या हर साल लगभग १% अर्थात् सौ पीछे एक अधिक बढ़ रही है। हर वर्ष लगभग सैंतीस लाख अतिरिक्त मनुष्यों की भलाई की जिम्मेदारी हमारे-तुम्हारे कंधों पर पड़ रही है। इसका क्या उपाय है? इसे बतलाने से पहले हम तुम्हें भारतीय जनसंख्या के अन्य पहलुओं का ज्ञान कराएँगे।

जनसंख्या का घनत्व

किसी स्थान पर औसतन प्रति वर्गमील जितने व्यक्ति रहते हैं उसे उस स्थान की जनसंख्या का घनत्व कहते हैं। इस प्रकार भारत में जनसंख्या का घनत्व ३१२ है। भारत की जनसंख्या को यहाँ के क्षेत्रफल से भाग देकर घनत्व निकाला जाता है।

जनसंख्या के घनत्व के कारण

जनसंख्या के घनत्व के मुख्य कारण हैं :—

(१) वर्षा और जल
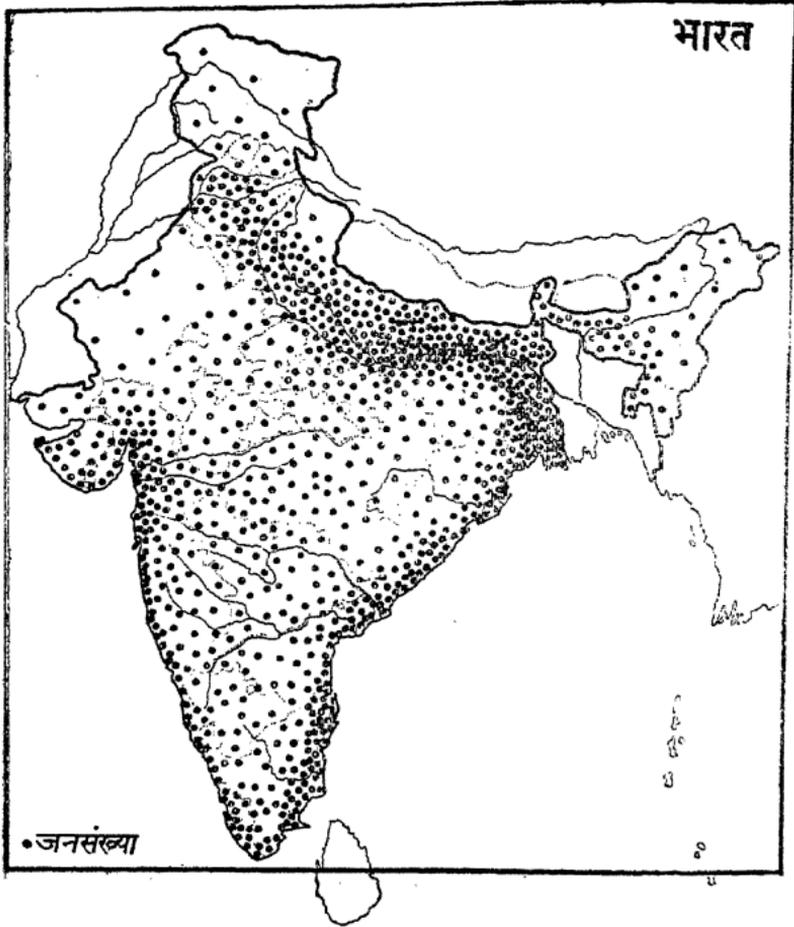
(२) जलवायु

(३) धरातल

(४) खेती और खेती का स्वरूप
(५) उद्योग-धंधो तथा व्यापार की सुविधा
(७) यातायात और संवाद साधन
(७) सुरक्षा
(८) राजनैतिक कारण

वर्षा और जल—अधिक वर्षा वाले प्रदेश में अधिक जनसंख्या होती है, यथा, पश्चिमी बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश तथा त्रिवांकुर। जैसे-जैसे हम पूर्व से पश्चिम की ओर बढ़ते हैं भारतीय जनसंख्या का घनत्व घटता है। कम वर्षा वाले बम्बई प्रदेश में जनसंख्या का घनत्व कम है। परन्तु आसाम में वर्षा अधिक होते हुये भी घनत्व कम है क्योंकि प्रदेश पहाड़ी है। पञ्जाब में वर्षा कम होते हुये भी जनसंख्या अधिक है क्योंकि वहाँ नहरों का जाल बिछा है।

इसी प्रकार जल की सुविधा के कारण नदियों वाली घाटियों में जनसंख्या का घनत्व अधिक होता है, यथा, सिन्धु तथा गंगा यमुना के मैदानों में। इन मैदानों के विपरीत उत्तर प्रदेश के तराई प्रदेश में वर्षा अधिक होते हुये भी मलेरिया के प्रकोप, यातायात की असुविधा आदि के कारण जनसंख्या का घनत्व कम है।

जलवायु—जहाँ रेगिस्तान हैं, अति गरमी पड़ती है, अथवा अधिक सर्दी है वहाँ जनसंख्या का घनत्व कम होना स्वाभाविक है, यथा, राजस्थान तथा अलमोड़ा, रानीखेत आदि। शीतोष्ण जलवायु में जनसंख्या का घनत्व अधिक होता है यथा, सामुद्रिक तट, पञ्जाब, उतर प्रदेश तथा बंगाल।

धरातल—समतल भूमि और उपजाऊ मिट्टी वाले प्रदेश (जैसे, बिहार, उत्तर प्रदेश, पंजाब) में जनसंख्या का घनत्व अधिक होता है। घाटियों में जनसंख्या अधिक पाई जाती है यथा काश्मीर की घाटी तथा नैपाल की घाटी। ऊँचे-नीचे प्रदेशों में जनसंख्या कम रहती है, यथा, मध्य भारत तथा दक्षिणी भारत के पहाड़ी प्रदेश।

खेती—खेती की परिस्थितियाँ अनुकूल होने से जनसंख्या का घनत्व

अधिक होता है। जहाँ भूमि उपजाऊ होती है और जल वर्षा के द्वारा, या सिंचाई के द्वारा यथेष्ट मिल जाता है, जलवायु फसल के उत्पन्न होने तथा मनुष्य के रहने के उपयुक्त होती है, वहाँ जनसंख्या घनी होती है। उदाहरण के लिये उत्तर-प्रदेश, बिहार और पश्चिमी बंगाल में जनसंख्या घनी है। किन्तु इन्हीं भागों के सुन्दरवन में दलदल होने के कारण, उत्तर प्रदेश के तराई में नमी के कारण तथा मलेरिया का विकट प्रकोप होने के कारण जनसंख्या घनी नहीं है।

खेती का स्वरूप—खेती के स्वरूप का भी जनसंख्या के घनत्व पर प्रभाव पड़ता है। बंगाल में धान की खेती होती है जिसका उत्पादन भी अधिक है और उत्पादन के लिए अधिक मजदूरों की भी जरूरत पड़ती है। अतः वहाँ जनसंख्या का घनत्व अधिक है। इसके विपरीत ज्वार बाजरा उत्पन्न करने वाले प्रदेशों में जनसंख्या कम है।

उद्योग-धंधों तथा व्यापार की सुविधा—जहाँ कच्चे व तैयार माल की भरमार रहती है या जहाँ उद्योग-धन्धों ने काफी उन्नति कर ली है, वहाँ जनसंख्या का घनत्व ज्यादा होता है। बम्बई शहर की जनसंख्या का घनत्व बहुत ज्यादा है। इंगलैंड और बेलजियम में औद्योगिक उन्नति के कारण जनसंख्या का घनत्व क्रमशः ६८५ और ६५४ है। संयुक्त राज्य अमेरिका में हर तरह के माल की भरमार है और वहाँ के उद्योग-धंधे भी इंगलैण्ड के उद्योग-धंधों से कम उन्नत नहीं हैं। परंतु अमेरिका में जनसंख्या का घनत्व ४१ ही है। इसी प्रकार मिश्र में जनसंख्या का घनत्व ३४ है, परन्तु वहाँ के निवासी अमेरिका वालों के समान आगे नहीं बढ़े हैं। इसीलिए वे किसी हालत में अंग्रेजों की बराबरी नहीं करते। इन बातों को ख्याल में रखकर हम यह कह सकते हैं कि अगर दो स्थानों की जनसंख्या के घनत्व एक से हों तो यह आवश्यक नहीं कि वहाँ की आर्थिक उन्नति या वहाँ के निवासियों का रहन-सहन करीब करीब एक-सा ही होगा। लेकिन जहाँ खेती करने या वस्तुयें तैयार करने और व्यापार की सुविधायें हैं वहाँ जन-संख्या का घनत्व अधिक रहता है।

यातायात और संवाद-साधन—इनकी उन्नति के फलस्वरूप व्यापार की उन्नति होती है तथा उद्योग-धन्धे स्थापित हो जाते हैं तथा ऐसे स्थानों पर जनसंख्या घनी हो जाती है। कानपुर, देहली तथा जमशेदपुर इसके अच्छे उदाहरण हैं।

सुरक्षा—जनसंख्या का घनत्व, जीवन और माल-असबाब की रखवाली और खतरे पर भी निर्भर है। जहाँ जंगल हैं और जंगली जानवरों तथा चोर-डाकुओं का डर होता है वहाँ बहुत कम लोग रहते हैं; परन्तु जहाँ चौकीदार और पुलिस का प्रबन्ध रहता है, जैसे शहर, वहाँ अधिक लोग रहते हैं। इस प्रकार जहाँ सुरक्षा का अच्छा प्रबन्ध हो वहाँ भी आबादी घनी हो जाती है, यथा, मेरठ, लखनऊ, आगरा, दिल्ली आदि नगर।

राजनैतिक कारण—देश-विभाजन के कारण लाखों व्यक्ति पाकिस्तान से भारत आ गए हैं। इस कारण पूर्वी पंजाब, पश्चिमी बंगाल, उत्तरी बंबई, पश्चिमोत्तर उत्तर प्रदेश तथा मध्यभारत की जनसंख्या बढ़ गई है।

यदि प्रत्येक प्रदेश के अनुसार देखें तो जनसंख्या का घनत्व निम्न प्रकार है :—

भिन्न-भिन्न प्रदेशों में जनसंख्या का घनत्व

पश्चिमी बंगाल	८३८	बम्बई	३१०
बिहार	५७१	मध्यप्रदेश	१६७
उड़ीसा	२४४	आसाम	१७०
उत्तर प्रदेश	५६७	राजस्थान	११६
मद्रास	४४५	मध्य भारत	१७०
पूर्वी पंजाब	३३७		

जनसंख्या और खेती

आजकल पेट का सवाल इतना कठिन है कि उसके कारण लोग अपना घर-बार छोड़कर शहरों में नौकरी की तलाश में फिरते हैं। बहुत से गाँव वाले कलकत्ता चले जाते हैं और वहाँ के किसी कारखाने में पचास-साठ रुपये की

नौकरी कर लेते हैं। परन्तु घर का मोह ऐसा जोरदार होता है कि फसलें पकने के समय अथवा कुछ रुपये इकट्ठा हो जाने पर ये मजदूर अपने-अपने गाँव को चले आते हैं। लेकिन आजकल की हालत में खेती या अन्य चालू उद्योग-धंधे भारत के तमाम आदमियों को कहाँ से काम दे सकते हैं! आपको जानकर ताज्जुब होगा कि सन् १९२१ में जब मनुष्य-गणना की गई थी तो बर्मा सहित भारत की जनसंख्या इकतीस करोड़ थी। परन्तु सन् १९४१ में यह बढ़कर उन्तालिस करोड़ पहुँच गई थी। इसमें से बीस करोड़ तो पुरुष ही थे। सन् १९५१ की जन-गणना के अनुसार भारत की आबादी विभाजन हो जाने पर भी लगभग छत्तीस करोड़ है। उत्तर प्रदेश की आबादी साढ़े पाँच करोड़ है और बिहार की साढ़े तीन करोड़। आबादी के अनुसार उत्तर प्रदेश का दूसरा और बिहार का चौथा स्थान है। भारत में लगभग तीस करोड़ जनता तो देहातों में ही रहती है। फ्रांस, अमेरिका, कैनेडा जैसे दूसरे देशों में आधे से ज्यादा लोग शहरों में रहते हैं। यदि तमाम दुनिया की जन-संख्या का ख्याल करें तो संसार की जनसंख्या का छठवाँ हिस्सा तो भारत में ही मौजूद पाते हैं। यदि इतनी जनता पढ़-लिख कर तथा तन्दुरुस्त रहते हुए मेहनत करे तो देश बहुत धनवान हो जाय। परन्तु जहाँ लोगों में आलस्य समाया रहता है तथा जहाँ पर पर्याप्त साधन नहीं हैं वहाँ किस प्रकार उन्नति हो सकती है? उदाहरण के लिए जमीन का ही सवाल ले लीजिये। यदि आज सारे भारतवासी खेती करने लगें तो देश का क्या हाल होगा? क्या उसको सफलता मिलेगी? उत्तर है—नहीं। कारण, इतने बड़े भारत में बीस करोड़ एकड़ जमीन से कुछ अधिक ही जोती जाती है। अगर तमाम भारतवासियों के बीच इसका बराबर बँटवारा कर दिया जाय तो हर एक के हिस्से में ·९७ एकड़ जमीन पड़ेगी। भारत में लगभग चौबीस करोड़ से अधिक किसान हैं। यदि इन्हीं के बीच जोती जाने लायक भूमि बाँट दी जाय तब भी इनमें से हर एक को एक एकड़ जमीन नहीं मिलेगी। इस हालत में जमीन का सवाल और भी टेढ़ा पड़ जाता है। केवल जमीन के भरोसे सब भारतीयों को काम नहीं मिल सकता। सभी भूमि पर खेती करना चाहते हैं। इससे जमीन की उत्पादकता भी नहीं बढ़ पाती है।

जनसंख्या और जीविका के अन्य साधन

हमारे यहाँ सत्तर प्रतिशत काम करने वाले खेती से सम्बन्धित हैं। केवल १०० में ३० अन्य कार्यों जैसे नौकरी, मिलों में अपने हाथ से वस्तु बनाना, दूकानदारी, मोटर, इक्का चलाना, रेल की नौकरी आदि, में लगे हैं। यह बहुत जरूरी है कि खेती के अनेक किसानों और खेतिहर मजदूरों को गाँव में ही अन्य कार्यों में लगाया जाय। हस्त-शिल्प और उद्योग-धंधों की कमी के कारण जनसंख्या बढ़ने के साथ-साथ भूमि पर जनसंख्या का भार बढ़ता है।

जनसंख्या तथा रहन-सहन का दर्जा

भारत के अधिकांश रहने वालों की एक खास आदत है कि पेट का थोड़ा-सा भी इन्तज़ाम हो जाने पर वे फिर आमदनी बढ़ाने की कोशिश नहीं करते। उनका जीवन बहुत ही सादा और सरल होता है। वे अपने कष्टों को बहुत-कुछ सह लेते हैं। इन सब बातों को वजह से उनके रहन-सहन का दर्जा भी बहुत नीचा होता है। वे आधा पेट खाना खाकर दिन बिताते हैं। तुम पूछ सकते हो कि क्या भारत में भोजन की कमी है? यह एक ऐसा सवाल है कि जिसके ऊपर भिन्न-भिन्न लोगों के विचार एक से नहीं हैं। कुछ सज्जन कहते हैं कि पिछले सालों में जिस दर से भारत की जनसंख्या बढ़ी है उस दर से खाने की वस्तुओं में वृद्धि नहीं हुई। मालथस नाम के अँग्रेज पादरी ने कहा था कि जन-संख्या भोजन की चीजों से कहीं अधिक तेजी से बढ़ती है। उसके विचारों पर बहुत कुछ कहा जा चुका है, तिस पर भी उसके विचार अभी तक आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं। यह स्पष्ट है कि भारत में जनसंख्या की बहुत ज्यादा वृद्धि हुई है और जनसंख्या के एक भाग को एक वक्त भी पेट भर भोजन नहीं मिलता।

जनसंख्या और रीति-रिवाज

अस्तु, क्या तुम बता सकते हो कि भारत के रहने वालों का नम्बर दिनों-दिन क्यों बढ़ता जा रहा है? अगर मूर्ख आदमियों में प्रचार किया जाय कि

जनसंख्या के बढ़ जाने से दुःख मिलता है तो वे इस बात को कभी न समझेंगे। एक तो वे पढ़े-लिखे नहीं है, दूसरे वे अंधविश्वासी हैं। फिर बताओ, हमारे भारतीय भाइयों के दिमाग में कहाँ से यह बात घुस सकती है। इसके अलावा यहाँ के निवासियों के रीति-रिवाज ऐसे हैं जिनके कारण लड़के लड़कियों के विवाह कम उम्र में होते हैं। अब शारदा एक्ट के द्वारा इस बात की मनाही कर दी गई है कि अठारह साल से पहिले किसी लड़के का विवाह नहीं होना चाहिये। पढ़े-लिखे आदमियों के भी ऐसे ही विचार होने लगे हैं, तथापि गाँवों में रहने वाली जनता पर इसका प्रभाव बहुत कम पड़ा है। जैसा कि तुम जानते हो भारत की नब्बे फीसदी जनता गाँवों में रहती है। गाँव के ये निवासी बिल्कुल अपढ़ होते हैं और शारदा एक्ट की तरह चाहे जितने और भी कानून बना दिये जायँ तो भी इनके ऊपर कोई असर नहीं पड़ सकता। इस प्रकार बाल-विवाह की अधिकता के कारण भारत में जनसंख्या की खूब वृद्धि हुई है। मृत्युसंख्या भी गिर गई है। इसका कारण स्वास्थ्य तथा इलाज की सुविधाएँ हैं। जैसा कि हम बता चुके हैं, भोजन की चीजें उस तेजी से नहीं बढ़ी हैं जिस तेजी से जनसंख्या। इसलिये हर एक आदमी को मिलने वाला खाना कम हो गया, जिससे बच्चे कमजोर व दुबले-पतले होते हैं और वे जल्दी ही बीमारी तथा मौत के शिकार हो जाते हैं।

जनसंख्या और आयु

जनसंख्या के ज्यादा होने की वजह से बच्चों की भी जनसंख्या ज्यादा हो गई है। हमारे यहाँ सौ आदमियों के पीछे अट्ठाईस-बच्चे रहते है। दुनिया में सबसे ज्यादा बच्चे हमारे देश में ही हैं। इसके अलावा भारतीयों की औसत उम्र करीब सत्ताईस साल है जब कि दूसरे देशों के लोग औसतन चालीस-पचास साल तक जीते हैं। इसका नतीजा यह होता है कि आदमी बीस-पचीस साल तक कमा-खा सकता है। चालीसवाँ साल आते-आते भारतवासी बुड्ढे हो जाते हैं। लेकिन दूसरे देशों में लोग साठ साल तक तगड़े बने रहते हैं।

इसलिये भारत की आबादी ज्यादा होते हुये भी यहाँ काम करने वालों की संख्या कम है और हमारे देश में बहुत ज्यादा सामान भी नहीं तैयार किया जा
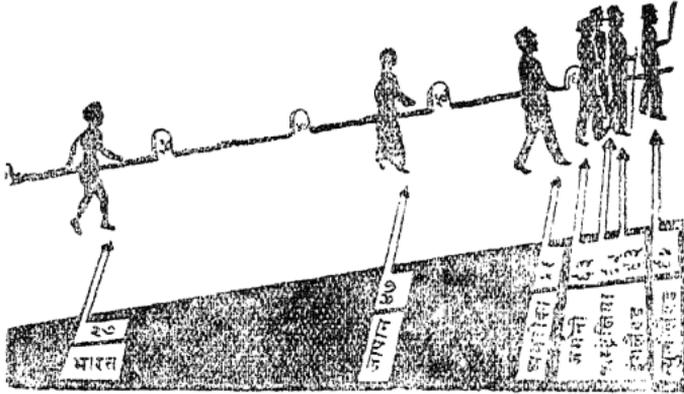
विभिन्न देशों के लोगों की औसत आयु

सकता है। अगर हमारी औसत उम्र बढ़ जाय तो हम ज्यादा दिनों तक काम कर सकेंगे और देश का ज्यादा भला कर सकेंगे।

जनसंख्या और आवास-प्रवास

जनसंख्या के बढ़ने का एक कारण यह भी हो सकता है कि विदेशों के लोग आकर यहाँ बसते जाते हैं। यह तो हम जानते हैं कि भारत में योरप, अमेरिका आदि देशों के लोग आये हुये हैं, परन्तु इस प्रकार आने वालों में सबसे अधिक संख्या अंग्रेजों की ही है। वे हमारे शासक थे। इसलिये भारत में गोरी सेना रहती थी। साथ ही बड़ी-बड़ी जगहों पर अँग्रेज अफसर नियुक्त किये जाते थे। लेकिन इतना होने पर भी यह नहीं कहा जा सकता कि ये लोग भारत की जनसंख्या बढ़ने के कारण हैं। भारतवासियों की तुलना मे इनकी संख्या तो बहुत कम है, और फिर तुम पूछ सकते हो कि जिस प्रकार बाहर से मनुष्य भारत में आते हैं उसी प्रकार क्या भारतवासी बाहर नहीं जाते? सचमुच हमारे देश के बहुत आदमी बाहर

नहीं जाते। जो बाहर जाना चाहते हैं उनके मार्ग में हमारी तथा उस देश की सरकार तरह-तरह की कठिनाइयाँ खड़ी कर देती हैं। जिस प्रकार हमारे यहाँ जनसंख्या बढ़ रही है उसी प्रकार विदेशों में भी हाल है। इसीलिए विदेशी बाहर वालों को अपने यहाँ नहीं बसने देते। कहीं तो आबादी काफी कम है तब भी वहाँ वाले अड़ंगा लगाते हैं, क्योंकि उन्हें डर रहता है कि अगर बाहरवालों को बसने देंगे तो कुछ दिनों में वहाँ भी आबादी घनी हो जायगी। खुशी की बात है कि देश के अन्दर एक प्रदेश में बस जाने में कोई बाधा या कठिनाई नहीं होती। इस प्रकार प्रदेश बदलने वालों की संख्या बहुत कम है। या तो बंगाली और पञ्जाबी चारों ओर फैले हैं, या मारवाड़ी और कुली-कबाड़ी। मारवाड़ियों ने कलकत्ता, बम्बई आदि बड़े-बड़े शहरों में व्यापार-क्षेत्र में धाक जमा रक्खी है। यह तो इनकी विद्या और गुण का फल है कि इन्हें कहीं जाने से कोई रोक नहीं सकता। बंगाली पढ़ने-लिखने में बड़े होशियार होते हैं।

अस्तु, यह बात तो केवल देहातियों के साथ ही है कि वे नौकरी की तलाश में बाहर जाकर बेरोक-टोक काम तलाश कर सकते हैं। परन्तु गाँव छोड़ना सरल काम नहीं होता। पहले तो घर का मोह होता है। लोगों में यह कहावत मशहूर है कि बाहर की पूरी से घर की आधी ही भली। इसके अलावा बहुतों की पहुँच पास के नगर और कस्बे तक ही होती है।

जनसंख्या की बुराइयों को दूर करने के उपाय

एक प्रदेश के आदमियों के दूसरे प्रदेश में चले जाने से जनसंख्या तो घट नहीं सकती। हाँ, यह बात अवश्य है कि इससे कुछ अधिक आदमियों को रोटियाँ कमाने का सहारा हो जाता है। और यह ठीक भी है। बढ़ी हुई जनसंख्या की बुराइयों को दूर करने के लिये दो-तीन बातों की जरूरत है। एक तो यह कि बाल-विवाह को बन्द करके जन्म संख्या को अत्यधिक बढ़ने से रोका जाय। दूसरे बालक-बालिकाओं को यथाशक्ति शिक्षा देनी चाहिए। सरकार उस समय तक शिक्षा की सुविधा दे जब तक विद्यार्थी पढ़ना चाहें।

तीसरे, इस समय जो जनसंख्या है उसके लिए भोजन का इन्तजाम हो। इसके लिए देश में जोरों से उद्योग-धन्धों की वृद्धि करना आवश्यक है। मनुष्यों को उन उद्योग-धन्धों में लगाना चाहिये जिनमें अभी कुछ कसर बाकी है। घरेलू और छोटी मात्रा के उद्योगों की विशेष वृद्धि करनी चाहिए। इससे लोगों की आय भी बढ़ेगी और जनता के कृषि से हट आने के कारण अधिक बड़े खेतों में भी खेती हो सकेगी।

भारत की जनसंख्या से संबन्धित कुछ आंकड़े

हम अविभाजित भारत की जनसंख्या के सम्बन्ध में यहाँ कुछ आँकड़े देते हैं जिससे यह स्पष्ट हो जायेगा कि देश की जनसंख्या तेजी से बढ़ रही है और खेती पर निर्भर रहने वालों की संख्या आवश्यकता से अधिक

सन्	जनसंख्या	प्रतिशत वृद्धि
१८७२	२१ करोड़	
१८८१	२५ करोड़	२३
१८९१	२९ करोड़	१३
१९०१	२९½ करोड़	२½
१९११	३१ करोड़	७
१९२१	३२ करोड़	३
१९३१	३५ करोड़	१०
१९४९ (खंडित भारत)	३२½ करोड़	११
१९५१ (खंडित भारत)	३६ करोड़	१३

धर्म के अनुसार जनसंख्या

भारत में प्रत्येक बीस व्यक्तियों में १७ हिन्दू, २ मुसलमान और १ अन्य धर्मावलम्बी हैं।

धर्म	संख्या	प्रतिशत
हिन्दू	३०३२ लाख	८५
मुसलमान	३५४ ,,	१०

धर्म	संख्या	प्रतिशत
बौद्ध	२ लाख	०·१
ट्राइब (जंगलों में रहने वाले जो वास्तव में हिन्दू हैं)	१७ ,,	०·४
ईसाई	८२ ,,	२·३
सिक्ख, जैन, पारसी, यहूदी इत्यादि	८० ,,	२·२
	३५६७	१००

सन् १९५१ में पेशे के अनुसार जनसंख्या

	आबादी का प्रतिशत
स्वामी किसान	४७
गैर स्वामी किसान	९
स्वामी जो खेती नहीं करते	१
खेतिहर मजदूर	१३
उद्योग	१०
व्यापार	६
परिवहन	२
नौकरी व फुटकर कार्य	१२
	१००

विभाजन और जनसंख्या

विभाजन के फलस्वरूप जनसंख्या एक प्रदेश को छोड़कर दूसरे प्रदेश में चली गई। लाखों हिन्दू पाकिस्तान से भाग कर भारत आये और कितने ही मुसलमान भारत छोड़कर पाकिस्तान चले गये। सन् १९५१ की नयी जनगणना के अनुसार देश में पाकिस्तान से आये हिन्दू भाइयों की संख्या ३ करोड़ से भी अधिक है।

अभ्यास के प्रश्न

१—भारत की जनसंख्या का विवरण संक्षेप में लिखिये।

२—जनसंख्या का घनत्व किन बातों पर निर्भर है ? उदाहरण सहित समझाइये।
(१९५३)

३—दो देशों की जनसंख्या का घनत्व लगभग बराबर है तो वहाँ के निवासियों के रहन-सहन, आर्थिक उन्नति आदि के बारे में आप क्या बता सकते हैं ?

४—भारत की जनसंख्या का यहाँ की कृषि पर क्या प्रभाव पड़ा है ? उदाहरण देकर समझाइये। (१९५३)

५—रीति-रिवाज का भारतीय जनसंख्या की वृद्धि में क्या महत्व रहा है ? सविस्तार समझाइये।

६—"भारतीयों का रहन-सहन सादा है तथा वे सहनशील हैं। इसी कारण यहाँ की जनसंख्या अधिक है"—इस कथन की विवेचना कीजिये।

७—"विदेशी भारत में आकर बस जाते हैं, परन्तु भारतीयों को बाहर जाकर बसने की सुविधायें नहीं है। इस कारण हमारी जनसंख्या की समस्या और भी कठिन हो गई है।" इस कथन की विवेचना कीजिये।

८—भारतीय किसानों की हालत का संक्षेप में वर्णन कीजिये।

९—समझाकर बताइये कि किस प्रकार बनावट और वर्षा के आधार पर भारत में जनसंख्या का वितरण है ? अधिक घनत्व वाले क्षेत्रों को ध्यान में रखकर उत्तर दीजिये। (उ० प्र० १९४२)

१०—किन भौगोलिक दशाओं पर जनसंख्या का घनत्व निर्भर रहता है ? निम्नांकित क्षेत्रों में ये दशायें कहाँ तक वर्तमान हैं :—

(अ) कलकत्ता और सुन्दरवन।

(ब) उत्तर प्रदेश के तराई तथा अर्ध-पहाड़ी क्षेत्र।

(स) दिल्ली प्रदेश। (उ० प्र० १९४४)

११—भारतीय जनसंख्या के वितरण के आँकड़े दीजिये। उत्तर प्रदेश की जनता के प्रमुख और गौण पेशे बताइये। (उ० प्र० १९४५)

१२—सन् १९५१ की जनगणना के अनुसार भारतीय जनसंख्या कितनी है ? भारत में जनसंख्या के वितरण के मुख्य कारण क्या हैं ?

९३—भारतीय जनसंख्या का विषम वितरण किस प्रकार जनता की आर्थिक समृद्धि में बाधक है ? (उ० प्र० १६४८)

९४—चावल की खेती वाले प्रदेशों में जनसंख्या का घनत्व अधिक क्यों है ? (उ० प्र० १६४६)

९५—भारतीय जनसंख्या के विभिन्न घनत्व के मुख्य कारण क्या-क्या हैं ? चित्र सहित उत्तर दीजिये । (उ० प्र० १६५०)

९६—देश के विभिन्न भागों में जनसंख्या के घनत्व में बड़ी असमानता है । इसके कारण लिखिये और यह भी समझाइये कि इसको कम करने के लिए सरकार क्या प्रयत्न कर रही है ? (१६५५)

बारहवाँ अध्याय

व्यापार के मुख्य साधन

व्यापार के मुख्य साधन क्या हैं ?

तुम जानते हो कि अपनी जीविका ढूँढ़ने के लिये आदमी देश के एक हिस्से से दूसरे हिस्से को जाते रहते हैं। यदि रामदेव को अपने गाँव में काम नहीं मिलता और उसे मालूम पड़ता है कि फतेहपुर के पास के गाँवों में काम करने वालों की कमी रहती है तो वह अपना गाँव छोड़कर फतेहपुर चला जायगा। परन्तु वह फतेहपुर जायगा कैसे ? या तो वह पैदल, बैलगाड़ी या मोटर लारी पर जायगा या गाँव के पास वाले स्टेशन से रेलगाड़ी में बैठकर जायगा। अस्तु, रामदेव स्थलमार्ग या रेलपथ से जहाँ जाना चाहता है जा सकता है, परन्तु इसका मतलब यह नहीं कि ये दोनों सवारियाँ ही हमारे काम के लिये काफी हैं। कारखानों को बहुत अधिक तादाद में कच्चा माल मँगाना तथा तैयार माल भेजना पड़ता है। अतएव थोड़ी दूर के लिये तो मोटर काम में लाई जाती है और अधिक दूर के लिये रेल। लेकिन जब माल विदेशों से आता अथवा विदेशों को जाता है तो ये साधन बेकार सिद्ध होते हैं। इसके लिये या तो जलमार्ग अख्तियार किया जाता है या अब वायुमार्ग का प्रयोग भी किया जाने लगा है। यदि पास में कोई बड़ी नदी हुई और नाव से सामान मँगाने में कम समय और कम खर्च बैठता है तो देश के अन्दर नाव द्वारा माल भेजा या मँगाया जा सकता है। विदेशों को माल भेजने के लिये जहाजों से ही काम लिया जाता है। हवाई जहाज से डाक भेजने और यात्रियों के लाने ले जाने का काम लिया जाता है। चिट्ठी पत्री भेजने अर्थात् खबर भेजने का अन्य ढङ्ग है। पोस्ट आफिस द्वारा चिट्ठी भेजने की हालत तो सबको मालूम ही है।

इसका तो जिक्र करना बेकार है। हाँ, तार भेजने की प्रथा और टेलीफोन की गिनती करना उचित मालूम पड़ता है। तार द्वारा हम अपना लिखित वाक्य भेजते हैं, परन्तु टेलीफोन की मदद से तो हम स्वयं अपने सुदूर स्थित मित्र से बात कर सकते हैं। टेलीफोन के तार के खम्भे गाड़े जाते हैं, परन्तु एक ऐसा यन्त्र निकला है जिसके द्वारा खबर भेजने के लिए तार के खम्भों की कोई जरूरत नहीं रहती। इसका नाम बेतार का तार है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि परिवहन और संदेश-वाहन की सुविधा होने से देश को आर्थिक उन्नति होती है। परिवहन के कारण देश के कच्चे माल और प्राकृतिक साधनों का अच्छा उपयोग हो सकता है। उन्नीसवीं सदी के मध्य तक हमारी औद्योगिक उन्नति शून्यप्राय थी। उसके बाद को सड़क, रेल तथा जहाजों की प्रगति ने हमारी आर्थिक उन्नति को नई दिशा में प्रवाहित कर दिया।

स्पष्ट है कि माल लाने-ले जाने के लिए स्थलमार्ग, जलमार्ग या वायुमार्ग का उपयोग किया जा सकता है। स्थलमार्ग में एक ओर तो सड़क पर चलने वाली बैलगाड़ी, इक्का, ताँगा, मोटर, लारी इत्यादि हैं और दूसरी ओर रेल की पटरी पर चलने वाली रेलगाड़ी। जलमार्ग के अन्तर्गत नदी पर जाने वाली नावों और समुद्र में चलने वाले बड़े-बड़े जहाजों से काम किया जाता है। वायु-मंडल में हवाई जहाज उड़ता है। खबर भेजने के ढङ्ग में तार, टेलीफोन और बेतार का तार विशेष उल्लेखनीय हैं। अब हम प्रत्येक साधन के सम्बन्ध में विचार करेंगे।

योजना बना कर सरकार देश की आर्थिक उन्नति कर रही है। यह तभी पूरा हो सकता है जब परिवहन सम्बन्धी सुविधा हो जिससे कच्चा माल, खाद्य पदार्थ तथा तैयार माल एक स्थान से दूसरे स्थान पर आसानी से पहुँचाया जा सके। यह भी जरूरी है कि जहाँ जरूरत हो वहाँ काम करने वाले मजदूर पहुँचाए जा सकें। अतः हमारे देश के भावी विकास में परिवहन के साधनों का विशेष महत्व है। इस हेतु सरकार ने एक केन्द्रीय परिवहन-बोर्ड स्थापित किया है ताकि सभी साधनों का सुव्यवस्थित विकास हो।

सड़क

स्थल मार्ग में सड़कों को पहले लेना ठीक है। यों तो सड़कें हजारों साल पहले भी थीं, परन्तु इनकी उन्नति फिरोज तुगलक और शेरशाह सूरी के समय से अधिक हुई।

आजकल भारत में दो लाख सत्तर हजार मील सड़कें हैं। इनमें से दो-तिहाई से कुछ कम कच्ची हैं और बाकी पक्की। पक्की सड़कें पथरीली और कम पानी वाली जगहों, जैसे दक्षिणी भारत, में अधिक पाई जाती हैं। मद्रास के बाद उत्तर प्रदेश में ही सबसे अधिक सड़कें हैं। कच्ची सड़कें ज्यादातर मैदानों में, जहाँ वर्षा ज्यादा होती है, पाई जाती हैं, क्योंकि यहाँ पक्की सड़क बनाने के लिए कंकड़-पत्थर आसानी से नहीं मिल सकते। बरसात के दिनों में पुलों के बह जाने तथा मिट्टी इकट्ठी हो जाने से उन्हें हर साल बनाना पड़ता है।

भारत में चार बड़ी राष्ट्रीय सड़कें हैं, जो देश के भिन्न-भिन्न भागों को मिलाती हैं। एक पेशावर (पाकिस्तान) से कलकत्ते तक जाती है, दूसरी कलकत्ते से मद्रास तक, तीसरी मद्रास से बम्बई तक और चौथी बम्बई से दिल्ली तक। इनमें से पहली सड़क का नाम ग्रांड ट्रंक सड़क है।

भारत में अब भी सड़कों की हालत खराब है। भारत में बड़ी सड़कों की लंबाई दस हजार मील है। आमतौर पर कहीं सड़कें ऊँची होती हैं, कहीं नीची। यदि आप कभी लारी में चढ़कर कहीं गये हों तो आपको पता होगा कि लारी में क्या मजेदार झटके लगते हैं। बरसात में बीच-बीच में नदी-नाले बह निकलते हैं। फलस्वरूप बहुत-सी सड़कें बरसात में बेकार हो जाती हैं। यह माना कि कहीं-कहीं बरसाती नदियों पर पुल हैं। परन्तु अधिकतर ऐसी नदियाँ हैं जिन्हें गर्मी में पैदल और बरसात में नाव पर पार करना पड़ता है। ऐसी हालत में यदि लोग बैलगाड़ी, टट्टू, ऊँट, बैल आदि से सामान ढोने का काम लेते हैं तो ताज्जुब नहीं। भारत सरकार पञ्चवर्षीय योजनायें बना कर बड़ी राष्ट्रीय सड़कों का सुधार और उन्नति कर रही है।

मोटर तथा लारी के चलाने योग्य सड़कें बहुत कम हैं। शहरों का ही हाल ले लीजिये। आप यह नहीं कह सकते कि अब सड़कें अच्छी हालत में
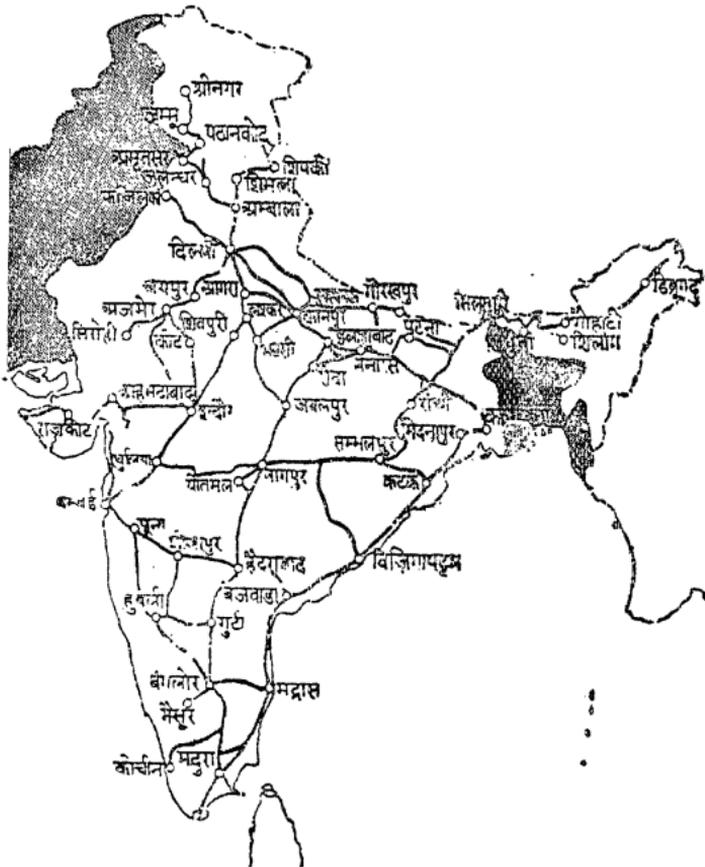
भारत की प्रमुख सड़कें

हैं, अथवा सवारियों के आने-जाने लायक काफी चौड़ी हैं। आजकल तारकोल (Tarcoal) की सड़कों का रिवाज चल निकला है, क्योंकि अब मोटरों और रबरटायर के इक्के ताँगों का नम्बर बढ़ गया है। यदि पत्थर की गिट्टी की सड़क रहती है तो सवारी को झटका लगता है और टायर जल्दी

घिसता है तथा सड़क भी जल्दी खराब होती है। इन सब बुराइयों को दूर करने के लिये गिट्टी की सड़क बन जाने पर उस पर तारकोल डाल दिया जाता है जिससे सड़क और चिकनी हो जाती है। परन्तु कुल सड़कों का तीसवाँ भाग ही ऐसा है।

यह कहने की आवश्यकता नहीं मालूम पड़ती है कि रेल के आने से सड़कों की लम्बाई बढ़ गई। रेलवे स्टेशन ज्यादातर बस्ती से बाहर ही होते हैं। अस्तु, स्टेशन से बस्ती तक सड़कें बनाई गईं। सड़कों को खराब हालत का कारण बदइन्तजामी है। अब तक ज्यादातर उन्हीं सड़कों का अधिक ध्यान रक्खा जाता था जिन पर सरकारी अफसर चलते थे, परन्तु यह बड़ी खुशी की बात है कि अब अन्य सड़कों की ओर भी ध्यान दिया जाने लगा है।

जितनी सड़कों की जरूरत शहर में है उससे कहीं अधिक आवश्यकता इस बात की है कि गाँवों में सड़कें बनाई जायँ। फसल तैयार हो जाने पर किसान के सामने यह सवाल खड़ा होता है कि वह अपने माल को किस प्रकार मंडी में ले जाये। उचित पक्की या चौड़ी सड़कों के न होने से वह मोटर लारी का फायदा तो उठा नहीं सकता। अतएव उसे ऊँट, बैलगाड़ी आदि का ही आश्रय लेना पड़ता है। इस बात की आवश्यकता है कि प्रधान-प्रधान केन्द्रों से लेकर गाँव-गाँव तक पक्की सड़कें बना दी जायँ। बीच में पड़ने वाली नदियों पर पक्के पुल बाँध दिये जायँ तथा लारी का ऐसा इंतजाम किया जाय कि वह यदि हर रोज न हो सके तो हफ्ते में एक या दो बार एक गाँव में पहुँच जाय। गाँव वालों के लिये इतना सहारा बहुत होगा। ग्रामीण-यात्रियों के सुखकर यात्रा के लिये अब उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश तथा अन्य प्रदेशों में सरकारी बस-सर्विस का प्रबन्ध है। भारत सरकार इस ओर दिलचस्पी ले रही है और देश में अधिकाधिक बस-सर्विस का राष्ट्रीयकरण हो रहा है। इस सम्बन्ध में यह भी ज्ञातव्य है कि बसों को अधिक लायसेंस दिये जायँ, विशेषतः थोड़ी दूर की यात्रा के लिए और उन दिशाओं और क्षेत्रों में भी जहाँ परिवहन सुविधा देने का रेल केवल दम भरती है। इसके अतिरिक्त एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में बस तथा लारी परिवहन की अधिक सुविधा दी जानी चाहिये।

भावी विकास तथा राष्ट्रीयकरण

सड़कों की दृष्टि से भारत अन्य देशों से बहुत पिछड़ा हुआ है। यहाँ प्रति दस वर्ग मील पीछे केवल २ मील सड़क है जब कि अमेरिका में दस मील, ब्रिटेन में २० मील, और जापान में ३० मील है। अतः प्रादेशिक सरकारों को परिवहन के राष्ट्रीयकरण में पूँजी न फँसाकर उससे सड़कों की मरम्मत तथा अधिक सड़क-निर्माण का कार्य करना चाहिए। पंचवर्षीय योजना बनाने वालों ने प्रादेशिक सरकारों को राष्ट्रीयकरण के कारण सड़क परिवहन-सुविधा के विकास की बाधा के सम्बन्ध में चेतावनी दी है।

हमारे देश में सड़कों का नीचे लिखे अनुसार वर्गीकरण किया गया है—(१) राष्ट्रीय सड़कें (नेशनल हाईवेज), (२) प्रादेशिक सड़कें, (३) जिला सड़कें, (४) गाँव की सड़कें। राष्ट्रीय सड़कों द्वारा राज्यों को राजधानियाँ, बड़े-बड़े शहर और बन्दरगाह एक दूसरे से मिलाये गए हैं। इन सड़कों का सारा प्रबन्ध भारत सरकार करती है। प्रादेशिक सड़कें राज्य की मुख्य सड़कें हैं और वे राष्ट्रीय सड़कों से मिली हुई हैं। जिले की सड़कें जिले के विभिन्न हिस्सों को जोड़ती हैं। गाँव की सड़कें प्रायः कच्ची हैं।

हर्ष की बात है कि पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत सड़कों के विकास का कार्यक्रम सरकार ने अपने हाथ में ले लिया है। द्वितीय पञ्चवर्षीय योजना के अन्तर्गत भारत सरकार और राज्यों की सरकारें सड़कों पर पर्याप्त व्यय करने जा रही हैं। परिणामस्वरूप १९६१ तक सड़कों का कुछ सुधार हो जाएगा। लगभग १० हजार मील सड़कें तथा ६० पुल बनाये जायँगे। उद्देश्य यह है कि तीसरी पञ्चवर्षीय योजना के बाद कोई भी गाँव बड़ी सड़क से पाँच मील से अधिक दूर न रह जाय।

निस्सन्देह देश का जो आर्थिक तथा औद्योगिक विकास हो रहा है उसको दृष्टि में रखकर यह कहना अनुचित नहीं है कि सड़कों की ओर विशेष ध्यान देना अनिवार्य है। अनुमान लगाया गया है कि देश के पिछड़े हुए क्षेत्रों के आर्थिक तथा औद्योगिक विकास के कारण उनके लिए रेल तथा सड़क

परिवहन की सुविधा अनिवार्य है। रेलों की उन्नति के लिये उतने रुपये नहीं उपलब्ध हो सकते जितना आवश्यक है। अतः सड़कों पर ही परिवहन का अधिक भार पड़ेगा और द्वितीय पञ्चवर्षीय योजना में इस बात पर ध्यान दिया गया है। अगले पाँच वर्षों में लारी, बस, मोटर आदि की संख्या नब्बे हजार से बढ़कर करीब डेढ़ लाख हो जानी चाहिये। तभी बढ़ते हुए आर्थिक विकास के साधन तथा माल इधर-उधर भेजे और लाए जा सकेंगे। विभिन्न राज्यों में राज्य सरकार अधिक अंश में अपनी मोटर बसें चला रही हैं। इससे यात्रा में सुविधा तथा समय की पाबंदी आरम्भ हुई है। अगले पाँच वर्षों में ५,००० अधिक बसें राज्य सरकारों द्वारा चालू की जायेंगी।

रेल

सड़क पर चलने वाली लारियाँ और रेल एक दूसरे की सहायक हैं तब भी उनमें प्रतियोगिता होती है। परन्तु यदि सड़कें न हों तो बस्ती और गाँव से आने वाला बहुत सा माल, जो रेल द्वारा बाहर भेजा जाता है, रेल के हाथ से निकल जाय। इसी प्रकार विविध उद्योग-धन्धों के लिए कच्चे माल की आवश्यकता पड़ती है। ये रेल से ही भेजे जाते हैं। यदि सड़कें न हों तो कच्चा माल रेल के पास न पहुँचे। फिर जैसा हम ऊपर बता चुके हैं अब देश की आर्थिक उन्नति के लिए रेलों का जरूरत से कम विकास होगा। अतः रेल सारा परिवहन-भार सँभाल ही नहीं सकती। इसलिये अब तो प्रश्न रेल तथा सड़क दोनों प्रकार की परिवहन सुविधाओं को बढ़ाने का है। अच्छा हो यदि थोड़ी दूर के परिवहन के लिए सड़कों का विकास किया जाय और अधिक दूर के परिवहन के लिये रेलों का। आखिर आर्थिक योजना के अंतर्गत हमको कोयला, लोहा, सीमेंट आदि वस्तुओं को दूर स्थित स्थानों तक ले ही जाना है।

यदि रेल बंद हो जाय तो मोटर द्वारा हम सब काम नहीं कर सकते हैं। इसका कारण यह है कि कुछ दूरी के लिये मोटर-रेल की प्रतियोगिता कर सकती है। सौ डेढ़ सौ मील तक मोटर द्वारा माल किफायत से भेजा जा सकता है, परन्तु जब माल को सैकड़ों मील की दूरी पर भेजना होता है तो रेलवे का

मुँह ताकना पड़ता है। यदि खानों से निकलने वाले कोयले और लोहे को, जिसके लिये काफी जगह चाहिये, मोटर से भेजा जाय तो खर्च बहुत अधिक
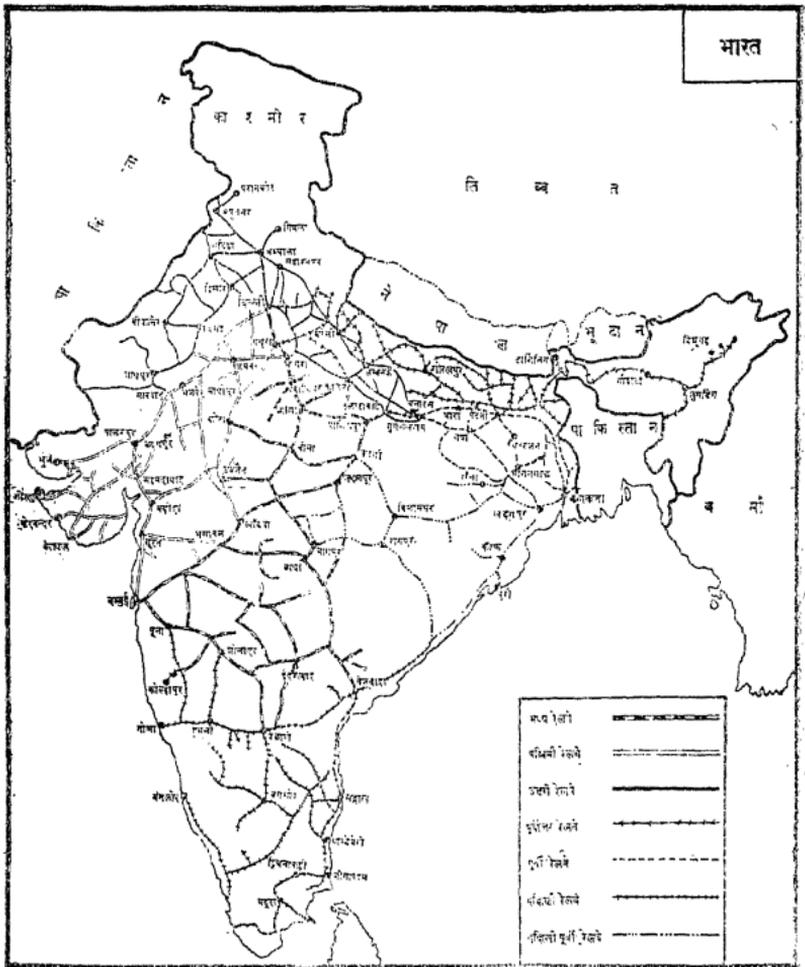
भारत की रेलें

पड़ जाय और इनकी कीमत बहुत बढ़ जाय। ऐसी चीजों को भेजने के लिये रेल ही ठीक पड़ती है। यही नहीं, इसके अलावा अकाल पड़ने पर दूर दूर से

भोजन की चीजें रेल द्वारा लाई जा सकती हैं। इस प्रकार आदमियों को भूखों मरने से बचाया जा सकता है। बंदरगाह से विदेशों के माल को देश के अन्दर पहुँचाना तथा हमारे देश के माल को बंदरगाह तक पहुँचाना रेल का ही काम है।

अब रेलें सरकारी हो गई हैं। अभी हाल में एक दर्जा हटा दिया गया है। अब केवल तीन दर्जे (I, II और III) हैं। तीसरे दर्जे के यात्रियों की सुविधाएँ तो बढ़ाई जा रही हैं परन्तु यात्रियों व माल के किराये भाड़े पर्याप्त कम नहीं किये गए हैं। सबसे ज्यादा आमदनी तीसरे दर्जे के मुसाफिरों से ही होती है। यदि मान लिया जाय कि तुम तीसरे दर्जे में रेल-यात्रा कर चुके हो, तो तुमको यह बताने की जरूरत नहीं कि तीसरे दर्जे में मुसाफिरों की बहुत भीड़ होती है। स्टेशनों पर पानी का इन्तजाम रहता है परन्तु अक्सर छोटे स्टेशनों पर पानी वाले का शीघ्र पता नहीं चलता है। अब तीसरे दर्जे के यात्रियों की ओर अधिक ध्यान दिया जाने लगा है। तीसरे दर्जे में बिजली के पंखे लगाये जा रहे हैं। जनता एक्सप्रेस में तीन रुपये देकर तीसरे दर्जे के यात्री रात्रि में सोने की सुविधा पा सकते हैं। उन्हें गाड़ी के साथ चलने वाले भोजनालय में जाकर भोजन करने की सुविधा भी मिलेगी। ठहरने के स्थान की सुविधा बढ़ रही है। अच्छे प्लेटफार्म तथा वहाँ बैठने की बेंचों का प्रबन्ध हो रहा है। तीसरे दर्जे के डिब्बे अधिक आरामदेह बनाए जा रहे हैं यद्यपि उनमें पानी की कमी कभी-कभी अखर जाती है। उनकी संख्या भी अभी कम ही रहती है। बढ़े हुए खर्च को पूरा करने के लिए किराए भी बढ़ा दिए गए हैं। केवल ३०० मील से अधिक दूरी के यात्रियों के लिए किराए की दर में कुछ कमी की गई है। किराया अधिक होना अनुचित बात है। देशवासी भारत-भ्रमण करें तथा एक दूसरे को समझें इस हेतु कम किराए की सुविधा बहुत जरूरी है।

यात्रियों को छोड़कर माल की ही बात ले लीजिये। हमारी रेल का इन्तजाम अंग्रेजों के हाथ में होने का ही यह फल था कि कच्चे माल को बन्दरगाहों पर भेजने का अथवा विदेशी तैयार माल को देश के अन्दर

पहुँचाने का किराया-भाड़ा कम रहता था। फलस्वरूप भारत के जिस शहर या कस्बे में देखो वहीं विलायती कपड़ा, बिसातखाने की चीजें आदि भरी दिखाई पड़ती थीं। अब यह बात समाप्त कर दी गई है। अभी हाल में गल्ला और कृत्रिम खाद पर किराए की दर कम की गई है। इस समय जरूरत इस बात की है कि देश में तरह-तरह की चीजें बनाई जायँ। हमारे इस काम में रेलवे बाधा डालने को तैयार खड़ी रहती है। यदि हम कच्चा माल देशी कारखानों को भेजना चाहते हैं, तो हमें बहुत अधिक किराया देना पड़ता है। इसका नतीजा यह होता है कि जब माल तैयार हो जाता है तो हमको लागत-खर्च बहुत ज्यादा पड़ जाता है और हम अपने माल को उतने दाम पर नहीं बेच सकते जितने पर उसी तरह का विदेशी माल बिकता है। इस प्रकार प्रतियोगिता में हार जाने के कारण हमारे उद्योग-धन्धे विशेष पनप नहीं पाते हैं। कच्चे माल को बाहर भेजने के लिए प्रेरणा दी जाती है। यह इस बात से स्पष्ट है कि यदि आप तेलहन की जगह तेल को विदेशों में भेजने के लिए बम्बई को रवाना कीजिये तो आपको अधिक भाड़ा देना पड़ेगा। अतः रेलों के किराए की नीति और किराए की दरें बदलनी चाहिये। थोड़ी दूरी के लिए रेलों के किराए अधिक पड़ते हैं। इनमें कमी की जा सकती है। यदि ऐसा हो तो उद्योग-धन्धों के विकेन्द्रीकरण में विशेष सुविधा हो।

इसके अलावा रेलों का अधिकांश सामान बाहर से ही आता है। इसके लिये भी करोड़ों रुपये बाहर भेजने पड़ते हैं। अब रेल के डिब्बे, इंजन आदि यहीं तैयार किये जा रहे हैं। साथ-ही-साथ इस बात की भी बड़ी जरूरत है कि सब रेल एक माप (Gauge) की कर दी जायँ। आजकल भिन्न-भिन्न रेलों की मापों में फर्क है; अतएव जब माल को एक लाइन से दूसरी लाइन पर लादा जाता है तो किराये में व्यर्थ की वृद्धि हो जाती है। साथ ही साथ माल के चोरी जाने और खराब होने की सम्भावना बढ़ जाती है। रेल देश को उन्नति में कुछ सहायता कर सकती है, परन्तु हमारे भारत की रेलों को ऐसा बनाने के लिये बहुत कुछ परिवर्तन करने की आवश्यकता है।

हमारे देश में ३४ हजार मील रेलवे लाइन हैं जिसका एक बड़ा अंश गंगा के मैदान में ही है। इस भाग में खास कर बिहार में ब्रांच लाइनें बहुत ज्यादा हैं। देश की खास रेलें नीचे दी जाती हैं।

१—उत्तरी रेलवे में पूर्वी पंजाब, पेप्सू, दिल्ली, उत्तरी और पूर्वी राजस्थान तथा बनारस तक उत्तर प्रदेश का भाग आता है। इसमें जोधपुर रेलवे और बीकानेर रेल भी शामिल हैं।

२—पूर्वोत्तर रेलवे में छोटी लाइन है। यह उत्तर प्रदेश में इलाहाबाद, बिहार व पश्चिमी बंगाल के उत्तरी भाग से होती हुई आसाम तक गई है।

३—पूर्वी रेलवे में मुगलसराय से कलकत्ता तक बिहार बङ्गाल का शेष भाग, इसमें पुरानी ई० आई० आर० का अधिकांश भाग है।

४—दक्षिण-पूर्वी रेलवे में कलकत्ता से मद्रास और कलकत्ता से नागपुर तक का भाग है। इसमें पुरानी बी० एन० रेलवे सम्मिलित है।

५—पश्चिमी रेलवे में शेष राज्यस्थान, सौराष्ट्र, जयपुर और पुरानी बी० बी० एण्ड० सी० आई० रेलवे क्षेत्र हैं। यह बम्बई तक जाती है। इसमें बड़ी लाइन भी है और छोटी लाइन भी।

६—मध्य रेलवे में मध्य प्रदेश, मध्य भारत और मद्रास का उत्तरी पश्चिमी भाग है। पुरानी जी० आई० पी० रेलवे, निजाम-स्टेट रेलवे तथा सिंधिया रेलवे इसी में आ गई हैं।

७—दक्षिणी रेलवे में दक्षिणी भारत का भाग है। इसमें दक्षिणी भारत रेलवे, मद्रास व दक्षिणी मरहठा रेलवे तथा मैसूर की रेलवे शामिल हैं। इसमें भी बड़ी और छोटी लाइन हैं।

रेलों का भविष्य आयोजन

भारतीय रेलों का विस्तार और विभाजन बहुत पुराना और विषम है। फलतः कोई अधिक कमाती और कोई घाटे पर चलती हैं। कोई यात्रियों

की सुविधा का ध्यान रखने की चेष्टा करती हैं,कोई नहीं करतीं। अब इनका उचित प्रबन्ध करने और क्षमता बढ़ाने के लिए समस्त रेलों का पुनः क्षेत्र विभाजन हुआ है। ताकि प्रत्येक के पास एक संगठित क्षेत्र रहे। वह इतना बड़ा हो कि उस रेल का एक केन्द्रीय दफ्तर स्थापित किया जा सके। इस परिवर्तन को इस प्रकार किया जा रहा है कि रेलों की चालू क्षमता घटने न पावे। क्षमता बढ़ाने के लिए अभी हाल में एक क्षमता-केन्द्र (Efficiency Bureau) स्थापित किया गया है।

रेलों की वृद्धि की भी आवश्यकता है। भारत में एक हजार वर्ग मील पीछे करीब २५ मील रेलवे लाइनें हैं। यह बहुत ही कम है और इसको शीघ्र दुगुना करना चाहिए। प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत भारत में रेल की पटरियाँ, इंजन, डिब्बे आदि तैयार करने के कुछ कारखाने स्थापित किये जा चुके जा हैं। जिसमें ४१७ करोड़ रुपए सन् १९५१-५६ में खर्च किया जा चुका है। द्वितीय पञ्चवर्षीय योजना के अन्तर्गत भी सन् १९५६-६१ में ८०० करोड़ रुपये से अधिक रुपए व्यय किया जायगा। यह कम है और शायद इससे दुगुने रुपये की जरूरत है। परन्तु पहले सामान की कमी से और अब रुपयों की कमी के कारण रेलों की उन्नति आवश्यकता भर नहीं हो पा रही है। आशा है कि रेलों की क्षमता में दस प्रतिशत वृद्धि होगी। तब भी आशा यही है कि देश में अन्य दिशाओं में उन्नति करने के लिए कुछ दिनों तक अभी माल तथा यात्रियों को यात्रा-कष्ट उठाना पड़ेगा। सरकार इस बात को अवश्य जानती है कि यदि माल ढोने की सुविधा हो तो उद्योग-धंधे अधिक पनप सकते हैं। सन् १९६१ में प्रति वर्ग मील २५ के स्थान पर ३० मील लाइन हो जाय तो बहुत समझो।

नदी व नाव

स्थल मार्ग पर विचार करते समय हमें एक बात का और भी ध्यान रखना चाहिए। वह यह है कि चाहे हम मोटर द्वारा माल ले जायँ अथवा रेल द्वारा, इनके लिये सरकार को पहले से विशेष रूप से इन्तजाम करना पड़ता है। मोटरों के लिये पहले से सड़क बनानी पड़ती है और रेलवे के लिये लोहे की

पटरियाँ बिछानी पड़ती हैं। परन्तु जलमार्ग से सामान ले जाने में इस खर्च की कोई आवश्यकता नहीं होती। नदियों को बनाना नहीं पड़ता। वे अपने आप अपना रास्ता ढूँढ़ कर बहती रहती हैं। बस, आपको उसमें नाव डालने की देर रहती है। यदि बहाव की ओर जाना है तो जरा भी शक्ति नहीं लगानी पड़ती। नाव अपने आप बहती चली जाती है। भारत में पुराने समय में जल-मार्ग का अधिक उपयोग किया जाता था। जल-मार्ग के कारण ही हम देखते हैं कि बड़े-बड़े तीर्थ और व्यापार के केन्द्र नदियों के किनारे बसे हैं। लेकिन जब से अँग्रेजों का शासन आरम्भ हुआ तब से नाव द्वारा माल ले जाने के ऊपर अधिक जोर नहीं दिया गया। इसके विपरीत रेल और सड़कों को बढ़ाने में करोड़ों रुपया लगा दिया गया। यह भी कहा जाता है कि बरसात में बाढ़ की तेज धारा और गर्मी में नदियों के सूख जाने के कारण नदियों द्वारा व्यापार नहीं हो सकता। गर्मी में किनारे पर काफी दूर तक रेत रहती है जिससे गाड़ियाँ किनारे तक नहीं आ सकतीं। नदियाँ छिछली भी होती हैं। परन्तु यदि शुरू में थोड़ी सी पूँजी लगा कर श्रम किया जाता तो जल-मार्ग का जाल बिछ जाता।

अस्तु, भारत में गंगा और ब्रह्मपुत्र, इन नदियों में बारहों महीना नाव चलाई जा सकती है। गोदावरी, महानदी कृष्णा आदि के मुहानों के पास भी नावें खेई जा सकती हैं। हाँ, बरसात में छोटी नदियों में भी नावें चलाई जा सकती हैं। पश्चिमी बंगाल में गंगा काफी चौड़ी है। इस प्रदेश में चावल और जूट भी ज्यादातर नावों पर लाद कर ही मंडी और कारखानों में पहुंचाया जाता है। बिहार में गंगा नदी में स्टीमर चलते हैं। कहीं-कहीं पर माल ले जाने के लिये नहरें भी बनाई गई हैं, परन्तु अक्सर नहरें सिंचाई के लिये ही बनाई जाती हैं। जहाँ कहीं नाव चलाने के लिए नहरें खोदी गई हैं वे सब नदी के डेल्टों के ऊपर ही बनाई गई हैं। नहरों से सामान लाने में उड़ीसा, मद्रास और दक्षिण बंगाल की नदियों के मुहाने वाले स्थानों पर ही सफलता मिलती है, क्योंकि वहाँ पर पुल बनाना कठिन तथा खर्च का काम है। यों पञ्जाब में नहर द्वारा हिमालय से लकड़ी लाई जाती है। गंगा-

जमुना की नहरों से थोड़ा खेती का माल लाया जाता है और बिहार-प्रदेश में सोन नहर द्वारा पत्थर। अब भारत सरकार नदी-परिवहन का विकास कर रही है। 'गंगा-ब्रह्मपुत्र जल परिवहन बोर्ड' इन दोनों नदियों और उनकी शाखाओं द्वारा जल परिवहन का विकास करेगा। 'बोर्ड' ने इलाहाबाद-पटना के बीच जल परिवहन के लिये १२ लाख रुपये मूल्य के आठ बेड़ों तथा दो खींचने वाली नावों का आर्डर दे दिया है। ये बेड़े लगभग १६०० टन माल एक बार में ढो सकेंगे। दक्षिण भारत में भी जल परिवहन विकास के लिए तीन लाख रुपये व्यय किए गए हैं। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत उक्त बोर्ड कुछ जल मार्गों को गहरा बनाएगा, नावों पर बेतार के तार, टेलीफोन तथा स्वचालित विद्युत-लैम्प की सुविधाएँ उपलब्ध करेगा और कुछ जगहों पर अच्छे नाव-तट बनवाएगा।

भारत में नदियों और नहरों में ५१४४ मील नौका संचालन के लिए जल मार्ग है।

समुद्र का जहाज

नदियों की नावों से तो देश के अन्दर ही माल लाने-ले जाने का काम लिया जा सकता है, परन्तु यदि विदेशों को माल भेजा जाय अथवा वहाँ से सामान मँगाया जाय तो नावें किसी काम की नहीं सिद्ध होंगी। उसके लिये बड़े-बड़े जहाज बनाये जाते हैं, जिनका वजन हजारों टन होता है। पहले जमाने में भारतीय जहाज बड़े मजबूत होते थे तथा यहाँ के नाविक जहाजरानी के हुनर में पक्के समझे जाते थे, परन्तु जब से विदेशी शासन का आगमन हुआ वहाँ के बड़े-बड़े जहाजों के सामने यहाँ के जहाज मारे गये। हमारे देश का समुद्री तट ३५०० मील लंबा है परन्तु वह कटा नहीं है। अतः बंदरगाहों की संख्या कम है। दक्षिण भारत के तटों पर बंदरगाहों की कमी है। पश्चिमी घाट पर मानसूनी हवाओं के कारण मई से अगस्त तक बंदरगाह बेकार रहते हैं। पूर्वी तट पर मिट्टी जम जाती है अतः उसको बराबर गहरा बनाने की आवश्यकता पड़ती है। इन्हीं कारणों से हम सामुद्रिक उन्नति अधिक नहीं कर सके हैं। सन् १९५० से तटीय व्यापार भारतीय जहाजों के लिए सुरक्षित

है परन्तु तटीय जहाज कम पड़ते हैं। अब भी सामुद्रिक व्यापार विदेशी जहाजों द्वारा ही होता है। इसके अलावा विदेशी जहाजों के मालिक विदेशी व्यापारियों से तैयार सामान ढोने का भाव सस्ता करके हमारे देशी व्यापार को धक्का पहुँचाते हैं। इससे हमें करोड़ों रुपये उन जहाजों को देना पड़ता है। इस बात की बड़ी जरूरत है कि सामुद्रिक व्यापार भी भारतीय जहाजों के द्वारा किया जाय।

भारत सरकार इस ओर पूर्ण प्रयत्नशील है। सन् १९५६ ई० तक वर्तमान तटीय जहाजों में ४०%की वृद्धि की गई और कुछ सामुद्रिक जहाज भी बनाये गए। विशाखापट्टम में तीन जहाज बनाए जा चुके हैं और तीन और बन रहे हैं। जहाज बनाने के लिये एक अन्य बंदरगाह भी बनाया जाएगा। पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत कलकत्ता, बम्बई, मद्रास तथा कोचीन के बंदरगाहों का विकास तथा सुधार करके सामुद्रिक यात्रा की सुविधा बढ़ाई जाएगी। इसके अतिरिक्त कांधला बन्दरगाह को एक प्रथम श्रेणी का बन्दरगाह बनाया गया है। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अंत में भारतीय जहाज १५% अधिक सामुद्रिक माल ढो सकेंगे तथा कई छोटे बंदरगाहों का विकास किया जाएगा।

हवाई जहाज

पिछली शताब्दी तक कोई हवाई जहाज का नाम तक नहीं जानता था, परन्तु गत पैंतीस वर्षों में हवाई यात्रा में इतनी सुविधा और उन्नति हो गई है कि अब वायु-मार्ग से ही अधिक से अधिक काम लिया जाने लगा है। हवाई जहाज की यात्रा के लिये यहाँ हवा अनुकूल है तथा रास्ता ऐसा नहीं है कि उसमें आये दिन आँधी-तूफान उठते हों।

वायुयान के उतरने के लिये मैदान की भी कमी नहीं है। वायुयान-यातायात के लिये भारत एक आदर्श देश है। बरसात के दिनों में तो अवश्य कुछ गड़बड़ी रहती है नहीं तो बारहों महीने वायुमण्डल स्थिर रहता है। जल-मार्ग की भाँति वायु-मार्ग भी प्रकृति द्वारा सम्पन्न है। हवाई जहाजों के लिये कोई सड़क नहीं बनानी पड़ती है। हवाई जहाज के उतरने

का स्टेशन बनाने में भी कम खर्च पड़ता है। अभी तक हवाई जहाज द्वारा कुछ यात्री और डाक ही जाती है। और भविष्य में अधिक यात्री और डाक हवाई जहाज द्वारा लाये जायँगे। वायु-मार्ग से सोना-चाँदी आदि मूल्यवान धातुओं को ले जाने में चोरी का डर तो नहीं के बराबर रहता है। हवाई जहाज से समय की भी बहुत बचत होती है। भारत में हवाई जहाज के मुख्य अड्डे हैं:—दिल्ली, कलकत्ता, इलाहाबाद, मद्रास, बम्बई, ग्वालियर, कानपुर, जोधपुर, हैदराबाद, त्रिवेंद्रम् इत्यादि।

भारत अन्तर्राष्ट्रीय वायुमार्ग के रास्ते में है; इस कारण इसका महत्व अधिक है। जिन वायुयानों को योरप से आस्ट्रेलिया या सुदूर-पूर्व जाना पड़ता है उनको भारत से ही होकर गुजरना पड़ता है। सुदूर-पूर्व तथा आस्ट्रेलिया को आने-जाने वाले जहाज मुख्यतः तीन राष्ट्रों के हैं। ब्रिटेन का वायु-यातायात 'इम्पीरियल एयरवेज' के नाम से प्रसिद्ध हैं, फ्रांस की 'एयर फ्रांस' और हालैंड की 'के० एल० एम०' के नाम से प्रसिद्ध हैं। अब तो भारत सरकार ही भारत में वायुयान यातायात का कार्य सँभालती है। 'इंडियन एअरलाइंस कारपोरेशन' तथा 'एअर इंडिया इंटरनेशनल' नामक दो संस्थाओं के माध्यम से यह कार्य किया जाता है। इन सब लाइनों के जहाज करांची और कलकत्ते के मार्ग से जाते हैं। अस्तु, ये प्रधान हवाई अड्डे बन गये हैं।

स्वतन्त्र हो जाने के उपरान्त भारत में वायुयान परिवहन की शीघ्रता से उन्नति हुई है। भारत में बम्बई, कलकत्ता और दिल्ली ऐसे हवाई स्टेशन हैं जो अन्तर्राष्ट्रीय ढंग पर नियंत्रित किये जाते हैं। इनके अतिरिक्त भारत में निम्नलिखित प्रधान हवाई स्टेशन हैं:—अहमदाबाद, इलाहाबाद, लखनऊ, मद्रास, नागपुर, पटना, विशाखापट्टम आदि।

भारत में २७ मध्यम श्रेणी और ४२ निम्नश्रेणी के हवाई स्टेशन हैं। भारत सरकार ने कई स्थानों पर नये हवाई स्टेशन बनाये हैं जैसे अजमेर, अलीगढ़, बरहामपुर, कालीकट, कुन्डानोर, हुबली, मंगलौर, तेलोर, उटकमंड, सेलम, रत्नागिरी, सागर और सूरत। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत आठ नए हवाई स्टेशन बनाए जाँयगे।

भारत सरकार ने देश में स्थापित हवाई कम्पनियों का राष्ट्रीयकरण कर लिया है। सरकार ने दो संस्थायें स्थापित की हैं। एक देश के अन्तर्गत हवाई यात्रा की व्यवस्था करती है और दूसरी विदेशी हवाई यात्रा की
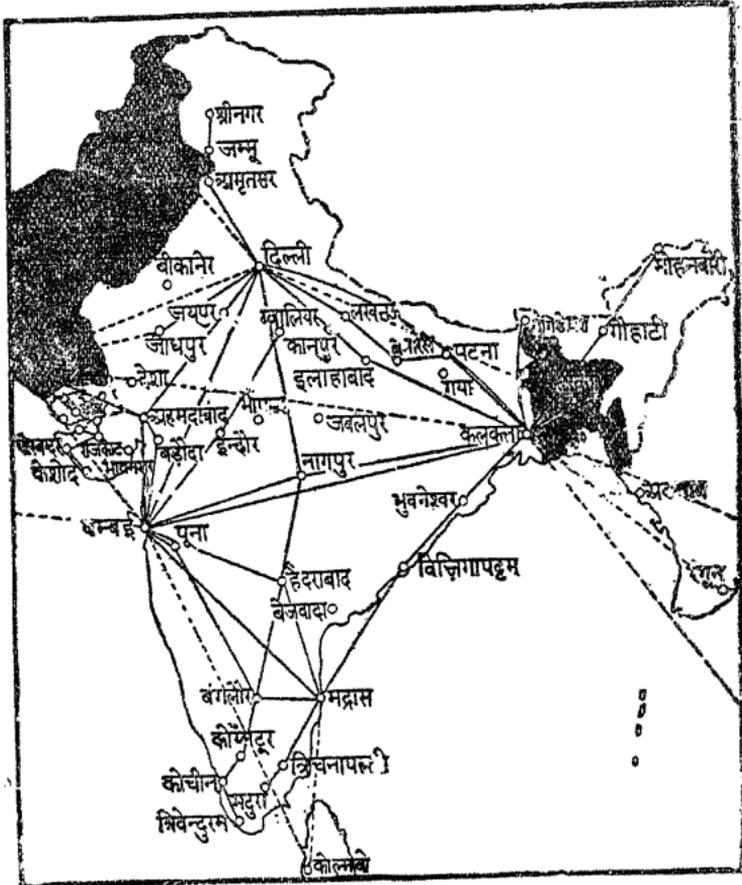
हवाई यात्रा की बढ़ती हुई माँग के कारण हवाई मार्गों
का विस्तार होता जा रहा ।

व्यवस्था करती है। हवाई यात्रा के राष्ट्रीयकरण के फल-स्वरूप व्यय और किराये में तो कमी इसके अतिरिक्त सुरक्षा भी बढ़ जावेगी

कारवाँ के मार्ग

यद्यपि भारत की स्थल सीमा बहुत विस्तृत है, किन्तु व्यापार बहुत कम होता है। सीमा पर सघन वन और ऊँचे पहाड़ों के कारण मार्गों की सुविधा नहीं हो सकी। इस कारण व्यापार बहुत कम होता है। जो कुछ व्यापार होता है वह याकों, खच्चरों, ऊँटों और घोड़ों के द्वारा ही होता है। विभाजन के पूर्व यह कारवाँ का मार्ग भारत को ईरान, अफगानिस्तान तथा मध्य एशिया से मिलाते थे। पूर्व की ओर भारत के कारवाँ मार्ग नैपाल और तिब्बत से भारत को जोड़ते हैं।
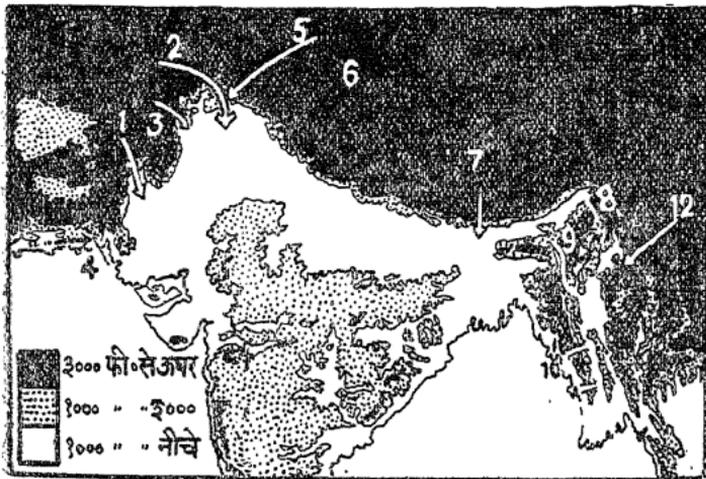
हिमालय के दर्रे

१—बोलन का दर्रा २—खैबर का दर्रा ३—गोमल का दर्रा ४—मकरान का दर्रा ५—कराकोरम व लेह का दर्रा ६—शिपकी का दर्रा ७—चुंबी घाटी का दर्रा ८—तैजूगैप का दर्रा ९—मनीपुर का दर्रा १०—ऐन का दर्रा ११—तैग का दर्रा १२—भामो का दर्रा।

एक दूसरा रास्ता भी है जो 'लेह' से काश्मीर व 'कराकोरम' होकर तिब्बत और तुर्किस्तान तक जाता है। यह अत्यन्त कठिन मार्ग है। इस मार्ग में काराकोरम का दर्रा भी पड़ता है।

तिब्बत के लिए उत्तरी भारत में दार्जिलिंग, नैनीताल और बोतिया से मार्ग जाते हैं।

उत्तर-पूर्वी आसाम में 'लाडो' से बर्मा होकर जो मार्ग चीन को जाता है वह पिछले युद्ध में बहुत महत्वपूर्ण बन गया था। पहले उस मार्ग का नाम लाडो-बर्मा रोड था, किन्तु अब शिटवैल रोड के नाम से पुकारा जाता है। लाडो से यह मार्ग भी भामो तक जाता है। भामो से यह मार्ग पूर्व की ओर जाता है और ऊँचे पहाड़ों को पार करता हुआ 'कुनमिंग' पहुँचता है। लाडो से 'कुनमिंग' तक १०४४ मील की दूरी है। यह मार्ग एक हजार मील चल कर चुङ्किंग पहुँचता है। युद्ध के समय इस मार्ग को बहुत अधिक सुधार दिया गया था जिससे चीन को युद्ध सामग्री भेजी जाती थी। भविष्य में इस मार्ग के द्वारा भारत और चीन का व्यापार बढ़ेगा।

तार, टेलीफोन और बेतार का तार

हम ऊपर बता चुके हैं कि हवाई जहाज भी डाक ले जाता है अर्थात् चिट्ठी-पत्र भी वायु-मार्ग से भेजे जाते हैं। लेकिन व्यापारी भाव व माल के सम्बन्ध में रोज तार दिया करते हैं। अब तो तार हिंदी में भेजे जा सकते हैं और तारघर तहसीलों में भी खोले जा रहे हैं। सरकारी आज्ञाएँ तार और टेलीफोन दोनों के जरिये आती हैं। तारघर तो हर एक रेलवे स्टेशन और बड़े शहरों में होता है, परन्तु टेलीफोन कुछ बड़े-बड़े शहरों में ही होते हैं। बड़े-बड़े व्यापारी क्षण-क्षण में दूर-दूर के व्यापारियों से भाव-ताव पूछते रहते हैं। टेलीफोन पर ही खरीद-फरोख्त भी हो जाती है। जो सरकारी आर्डर बहुत जरूरी होते हैं वे टेलीफोन द्वारा ही भेजे जाते हैं। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत ५००० से अधिक जनसंख्या वाले नगरों और कस्बों में भी टेलीफोन की सुविधा देने की व्यवस्था क जायेगी। अब तो

तार और टेलीफोन से बढ़कर बेतार का तार है। इसमें सब बातें तो तार की ही तरह हैं। फर्क यही है कि इलाहाबाद से कलकत्ता तार भेजने में इलाहाबाद तथा कलकत्ते तक तार के खम्भे गाड़े जाते हैं। परन्तु बेतार के तार में इन खम्भों की जरूरत नहीं रहती। इसलिए इसका नाम बेतार का तार (Wireless Telegraph) रक्खा गया है। समुद्र-पार के स्थानों में अथवा समुद्र में एक जहाज से दूसरे जहाज पर समाचार भेजने के लिये यही तरीका काम में लाया जाता है, क्योंकि इनके बीच तार या टेलीफोन के खम्भे गाड़े नहीं जा सकते। रेडियो भी बेतार का तार है। फर्क केवल इतना है कि इसमें खबर देने वाले की आवाज भी सुनाई पड़ती है। अब तो रोज रेडियो पर तरह-तरह के माल के भाव आते हैं। यदि तार, टेलीफोन और बेतार के तार का इन्तजाम न होता तो व्यापार को बहुत धक्का पहुँचता। एक जगह का भाव दूसरी जगह अथवा एक स्थान की खबर दूसरे स्थान पर जल्दी नहीं भेजी जा सकती थी और लोगों को माल बेचने और खरीदने में बड़ी दिक्कत उठानी पड़ती। सोलह पश्चिमी देशों से तार या बेतार का संवाद भेजने का प्रबंध है। अगले पाँच वर्षों में २५ अन्य देशों से ऐसा संबंध किया जायेगा।

प्रथम पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत डाक, तार, टेलीफोन की वृद्धि करने के लिये ५० करोड़ रुपये खर्च हुए। बड़े शहरों में टेलीफोन तथा अधिक तार-सर्किट लगाने का प्रबन्ध किया जा रहा है। अगले पाँच वर्षों में डाक-खानों की संख्या ७३००० तथा टेलीफोनों की संख्या साढ़े चार लाख हो जायेगी।

अस्तु, मोटर, रेल, नाव, जहाज, वायुयान, तार, टेलीफोन और बेतार के तार, सब व्यापार करने में बड़ी सुविधा पहुँचाते हैं। आजकल की हालत देखते हुये इनके बिना व्यापार की उन्नति हो ही नहीं सकती।

अभ्यास के प्रश्न

१—व्यापार के मुख्य साधन क्या हैं ? प्रत्येक का संक्षेप में वर्णन कीजिये।

२—"भारत की सड़कों की दशा बिगड़ी हुई है।" उक्त कथन की विवेचना कीजिये।

३—रेलवे अधिकारियों को मुसाफिर तथा माल लाने-ले जाने की सुविधा की ओर क्यों अधिक ध्यान देना चाहिये ?

४—भारत में नदी द्वारा व्यापार करने की सुविधाओं पर विचार कीजिये। क्या अब भी नदियों द्वारा उतना व्यापार किया जाता है जितना पुराने जमाने में होता था ?

५—"यह बड़ी शर्म की बात है कि भारत का सामुद्रिक व्यापार करोड़ों रुपयों का है तब भी सरकार भारतीय जहाजों की उन्नति के लिए बहुत कम प्रयत्न करती है।" विस्तार-पूर्वक विवेचना कीजिये।

६—भारत में हवाई जहाज से व्यापार को कितनी सहायता मिलती है ? क्या भारत में हवाई जहाजों का भविष्य आशाजनक है ?

७—"तार और टेलीफोन भारतीय व्यापार के मुख्य अंग बन गये हैं।" उक्त कथन की विवेचना कीजिये।

८—भारतीय तट के उन भौतिक गुणों की विवेचना कीजिये जिनके कारण भारत एक सामुद्रिक का जातियों देश नहीं बन पाया है। (उ० प्र० १९४३)

९—रेल तथा अन्य यातायात के साधनों के विकास द्वारा देश की आर्थिक उन्नति पर क्या प्रभाव पड़ा है ? उदाहरण दीजिये। (उ० प्र० १९४४)

१०—भूमि की उत्पादकता किन साधनों पर निर्भर है ? रेल या सड़क-यातायात की सुविधाएँ किस प्रकार उत्पादकता बढ़ाती हैं ? (उ० प्र० १९४४)

११—भारतीय रेलों का आर्थिक प्रभाव बताइये और भावी विकास की आवश्यकता समझाइए। (उ० प्र० १९४६)

१२—भारत में यातायात और संदेश वाहन के साधनों के विकास का गाँवों के उद्योग और कृषि पर क्या प्रभाव पड़ा है ? (उ० प्र० १९४७)

१३—भारत की रेल-सड़क प्रतियगिता पर निबन्ध लिखिए। (उ० प्र० १९४९)

१४—सावधानीपूर्वक यह विवेचना कीजिए की भारतीय प्राकृतिक दशाओं ने रेल और सड़क निर्माण पर क्या प्रभाव डाला है ? (उ० प्र० १९५०)

१५—भारत में नदियों की भरमार है फिर भी नदी द्वारा व्यापार बहुत कम होता है। इसके क्या कारण हैं ? (उ० प्र० १९५१)

१६—रेलों से क्या आर्थिक लाभ होते हैं ? देश के किस भाग में नई रेलों को बनाने की आवश्यकता है ? (उ० प्र० १९५५)

तेरहवाँ अध्याय

प्रदेशीय और अन्तर्प्रदेशीय व्यापार

अर्थ

"प्रदेशीय तथा अंतर्प्रदेशीय व्यापार" का दूसरा नाम देशी व्यापार है। किसी प्रदेश (यथा उत्तर प्रदेश) के अंदर स्थित क्षेत्रों के बीच आपस में जो व्यापार होता है वह प्रदेशीय व्यापार है। उत्तर प्रदेश और अन्य भारतीय प्रदेशों के बीच जो व्यापार होता है उसकी गिनती अंतर्प्रदेशीय व्यापार में होती है।

अंतर्प्रदेशीय व्यापार का महत्व

क्षेत्र-क्षेत्र में आत्म-निर्भरता की भावना बढ़ाने के लिए अंतर्प्रदेशीय व्यापार की अपेक्षा प्रदेशीय व्यापार अधिक होना चाहिए। सन् १९४८-४९ में उत्तर प्रदेश में अनुमानतः लगभग ११ अरब रुपये का प्रदेशीय व्यापार हुआ था और उत्तर प्रदेश का अन्य प्रदेशों से लगभग २·१ अरब रुपए का आयात-निर्यात व्यापार हुआ था अर्थात् उत्तर प्रदेश के अंतर्प्रदेशीय व्यापार की अपेक्षा यहाँ का प्रदेशीय व्यापार पाँच गुना था।

देशी व्यापार का महत्व

इसी प्रकार सन् १९४० में यह अनुमान लगाया गया था कि भारतीय विदेशी व्यापार की अपेक्षा देशी व्यापार पंद्रह गुना है और अब यह करीब बीस गुना समझा जाता है।

अतः स्पष्ट है कि विदेशी व्यापार की अपेक्षा देशी व्यापार बीस गुना महत्व पूर्ण है और देशी व्यापार के अंतर्गत अंतर्प्रदेशीय व्यापार की अपेक्षा प्रदेशीय व्यापार पाँच गुना अधिक महत्वपूर्ण है। इससे प्रदेशीय व्यापार तथा

अंतर्प्रदेशीय व्यापार का महत्व स्पष्ट हो जाता है। हम कह सकते हैं कि अंतर्प्रदेशीय तथा प्रदेशीय व्यापार की समस्याओं की ओर अधिक तथा विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। खेद है कि उपयुक्त आँकड़ों के अभाव में यह अध्ययन भली प्रकार नहीं किया जा सकता।

व्यापार के क्षेत्र आदि का ज्ञान कराने से पहले हम अपने देशी व्यापार के महत्व को खुल कर वर्णनात्मक ढंग से समझ लें।

भारत के प्रदेशों के अन्दर या विदेशों के बीच जो व्यापार होता है वह एक खास विशेषता रखता है। १२ लाख वर्ग मील से ऊपर तो इसका क्षेत्रफल है। रूस को छोड़कर इसमें सारा यूरोप समा सकता है। क्या गरम क्या ठंडा और क्या समशीतोष्ण, यहाँ पर सब तरह की जलवायु पाई जाती है। जलवायु में इतनी भिन्नता रहने के कारण भारत में हर तरह के फल और फसलें पाई जाती हैं। साथ ही भारत में मनुष्य भी हर तरह के रहते हैं। बम्बई की ओर पारसी, गुजराती और मरहठे होते हैं। मद्रास प्रेसीडेन्सी में चेट्टी, कोमाटी आदि, पञ्जाब और उत्तर-प्रदेश में मुसलमान, खत्री व बनिये और बिहार-बङ्गाल में बिहारी, बंगाली वगैरह होते हैं। भाँति-भाँति के आदमियों के रहने से यह बात जरूर है कि हर तरह की वस्तुओं की माँग होती है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, हमारे देश में सब तरह की चीजें पैदा की जाती हैं। अतएव यहाँ जीवन-निर्वाह की जिन चीजों की आवश्यकता पड़ती हैं वे सब अधिकतर यहीं मिल जाती हैं। यूरोप, अमेरिका, इङ्गलैंड आदि देशों से या तो मशीनें और मशीन से बना कुछ माल आता है या दवाइयाँ, शराब, मोटर, साइकिल, मिट्टी के तेल इत्यादि। कहने का मतलब यह है कि भारत की आवश्यकतायें अधिकतर भारत में तैयार या पैदा होने वाली वस्तुओं से ही पूरी हो जाती हैं।

अंतर्प्रदेशीय व्यापार का क्षेत्र

कोई चीज किसी प्रदेश में अधिक होती है तो कोई किसी अन्य प्रदेश में। लेकिन यह आवश्यक नहीं कि हर एक प्रदेश में पैदा होने वाली वस्तु

उसी प्रदेश में खप जाय। जैसे सहारनपुर में फल बहुत होते हैं, लेकिन वे सब फल वहाँ वाले नहीं खा सकते। वे अन्य जिलों तथा पञ्जाब व बम्बई में माँग ज्यादा होने से वहाँ भेज दिये जाते हैं। देश के अन्दर इस तरह सामान एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में अथवा प्रदेश के एक कोने से दूसरे कोने में खूब भेजा जाता है। पूर्वी पञ्जाब और उत्तर प्रदेश में पैदा होने वाले गेहूँ को लीजिये। बम्बई, पश्चिमी बंगाल, आदि तक के व्यापारी इसे खरीदते हैं। चाय की खेती आसाम और दार्जिलिंग में की जाती है। परन्तु आपको इसके पीने वाले बिहार, महाराष्ट्र, पूर्वी पञ्जाब और मद्रास तक मिलेंगे। उत्तर प्रदेश और बिहार में बनने वाली चीनी पूर्वी पञ्जाब, मध्य प्रदेश व पश्चिमी बंगाल में भी बिकती है। कलकत्ते का चिनिया केला और बम्बई का हरा केला पश्चिमी बंगाल से पूर्वी पञ्जाब तक के शहरों में खरीदा जा सकता है। इलाहाबाद का अमरूद उत्तर प्रदेश के शहरों में ही नहीं बल्कि उसके बाहर भी भेजा जाता है। मुजफ्फरपुर की लीची, भागलपुर के रेशमी कपड़े नागपुर के सन्तरे उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश वगैरह प्रदेशों के नगरों में किसने बिकते नहीं देखे हैं ? चाहे लखनऊ का दशहरी आम आपको लखनऊ से बाहर न मिले, लेकिन बनारस का लँगड़ा आम आप कानपुर और आगरे में भी खरीद सकते हैं। यद्यपि कानपुर में कपड़े के कारखाने हैं तिस पर भी अहमदाबाद का बना हुआ धोती का जोड़ा और कपड़ा उत्तर प्रदेश में खूब बिकता है। नारियल के पेड़ बम्बई और मद्रास प्रदेशों में पाये जाते हैं। लेकिन बिकने के लिये नारियल उत्तर प्रदेश और बिहार आदि प्रदेशों में भेजे जाते हैं। काश्मीर के सेव और अखरोट बम्बई में पहुँचते हैं और लखनऊ, आगरा, इलाहाबाद आदि शहरों में बिकते हैं।

उत्तर प्रदेशीय आयात-निर्यात व्यापार की हालत

अस्तु, यद्यपि कहने को भारत का बहुत सा माल विदेशों को जाता है और यहाँ आता भी है परन्तु विदेशी व्यापार से भारत के अन्दर होने वाले व्यापार का अन्दाजा नहीं लगाया जा सकता। दर असल बात यह है कि

यहाँ जितना सामान पैदा अथवा तैयार किया जाता है उसका केवल थोड़ा सा हिस्सा विदेशों को भेजा जाता है। सन् १९३३ से सन् १९४४ तक रेल द्वारा लगभग सैंतीस लाख मन गेहूँ तथा आटा बाहर जाता था और लगभग पच्चीस लाख मन आटा और गेहूँ का आयात होता है। सन् १९५३-५४ में औसतन लगभग बारह लाख मन गेहूँ और आटा प्रदेश से बाहर भेजा गया था। चावल और धान का निर्यात की अपेक्षा आयात बहुत कम है। प्रति वर्ष लगभग ग्यारह लाख मन धान और चावल का निर्यात होता है। लगभग साढ़े नौ लाख मन चना और तेरह लाख मन ज्वार प्रदेश से बाहर भेजे गये। सन् १९५३-५४ में प्रदेश का लगभग ११० लाख मन खाद्यान्न रेल द्वारा भेजा गया था। और ९१ लाख मन खाद्यान्न बाहर से प्रदेश में आया था।

सन् १९५३-५४ में उत्तर प्रदेश से लगभग एक लाख मन सूत बाहर भेजा गया था। उस वर्ष तीन लाख मन कपड़ा बाहर गया था और लगभग नौ लाख मन कपड़ा बाहर से मँगाया गया था। चीनी और गुड़ तैयार करने का मुख्य केन्द्र होते हुए भी यहाँ प्रति वर्ष लगभग सवा लाख मन चीनी और दो लाख मन गुड़ तथा राब बाहर से आती है। यों लगभग सवा करोड़ मन चीनी और चौरासी लाख मन गुड़ बाहर भेजा जाता है।

यद्यपि कमाया हुआ काफी चमड़ा सरे प्रदेशों से हमारे यहाँ आता है तथापि निर्यात अधिक रहता है। आयात की अपेक्षा निर्यात लगभग ५० लाख मन अधिक रहता था। महायुद्ध के समय में हमारा निर्यात तो नहीं गिरा, परन्तु आयात बढ़ गया। उत्तर प्रदेश में वनस्पति तेल व घी तैयार किया जाता है। लगभग २८ लाख मन तेल का निर्यात यहाँ से होता है। युद्ध-काल में निर्यात की अपेक्षा आयात में अधिक आनुपातिक वृद्धि हुई थी।

लोहे की छड़ें यहाँ से बाहर भेजी जाती हैं परन्तु आयात निर्यात से अधिक रहता है। युद्ध से पूर्व लगभग तीस लाख मन छड़ का असल आयात होता था। युद्ध काल में यह कम हो गया था।

चमड़ा और लाख का पहले निर्यात अधिक होता था। सन् १९३३-३४

में चार लाख मन से अधिक लाख का वास्तविक निर्यात हुआ परन्तु सन् १९४२-४३ से लाख का वास्तविक आयात होता है।

प्रदेश में कुछ जूट की मिलें हैं। अतः जूट का आयात और टाट, बोरे आदि का निर्यात होता है। आयात अधिक और निर्यात कम है। काँच का माल और हड्डियों का तो निर्यात होता ही है। औसतन लगभग तीन लाख मन काँच के पदार्थ और पाँच लाख मन हड्डियाँ यहाँ से बाहर जाती हैं। लगभग सात करोड़ मन कोयला और चालीस लाख मन सीमेंट बाहर से आती है। अब प्रादेशिक सरकार ने यहाँ ही सीमेंट की मिल खोल दी है। यह मिर्जापुर जिले में चुर्क के पास है।

कच्चे माल में सरसों आदि का निर्यात होता है और बिनौले का आयात युद्ध से पहले तीस-चालीस लाख मन था और चार लाख मन बिलौना आता था। अब निर्यात घट गया है और बिनौले का आयात दुगुना हो गया है।

मूँगफली, अलसी और तिल का निर्यात क्रमशः १/१०, १/१० तथा १/३ रह गया है। तिल का वास्तविक निर्यात चौदह लाख मन से घटकर पाँच लाख मन रह गया है।

जहाँ पहले लगभग दो लाख मन घी का वास्तविक निर्यात होता था वहाँ अब घी का आयात होता है। पहले कच्चे चमड़े का वास्तविक निर्यात पौने तीन लाख मन रहता था। अब डेढ़ लाख मन चमड़े का आयात होता है। लकड़ी की निर्यात लगभग तीन लाख मन बना हुआ है।

नमक का आयात साठ लाख मन से बढ़कर अस्सी लाख मन से अधिक हो गया है और मिट्टी के तेल का आयात अब बीस लाख मन का आधा भी नहीं रहा है।

तम्बाकू का आयात लगभग साढ़े चार लाख मन है, परन्तु ऊन का आयात दुगुना होकर डेढ़ लाख मन से अधिक हो गया है। और देशों में जनसंख्या बहुत कम है। तिस पर भी वहाँ का व्यापार मुकाबले में भारत के

व्यापार से टक्कर लेता है। पर क्या आप बता सकते हैं कि जनसंख्या के इतना अधिक होते हुये भी यहाँ का व्यापार क्यों इतना कम है? इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि भारत के रहने वाले बड़ी सादी चाल से जिन्दगी गुजारते हैं। शहरों में रहने वाले पाँच करोड़ आदमियों की बात छोड़िये। हमारा मतलब तो गाँव में रहने वाली जनता से है जो एक मिर्जई (देहाती वास्कट) और धोती पर एक साल का समय काटने का दावा रखती है। यह ठीक है कि जहाँ तक होता है वे आस-पास में ही मिल जाने वाली चीजों से अपना काम चलाते हैं, परन्तु उन्हें ऐसा बनाने में उनकी गरीब दशा का भी कुछ-कुछ हाथ है। उनके पास इतना भी पैसा नहीं रहता कि वे भरपेट भोजन कर सकें, फिर उपभोग के बहुत से पदार्थों को खरीदने की कौन कहे?

प्रदेशीय तथा अंतर्प्रदेशीय व्यापार का ढंग

किसानों की गिरी हुई दशा और उनके फसल बेचने के तरीकों में बहुत गहरा सम्बन्ध है। बाजार भाव से बिल्कुल अनजान होने के कारण किसान को सस्ते दर से ही अपना माल बेचना पड़ता है। और चूँकि उनमें से बहुतों को बाहर जाकर बेचने का सुविधा भी नहीं रहती, अतएव उन्हें जो रुपये मिल जाते हैं उसी पर संतोष करना पड़ता है। थोड़े से किसान मंडी में जाकर अनाज बेचते हैं। वहाँ पर उनसे चुंगी, गाड़ी ठहराई, तौलाई, गौशाला, मन्दिर, ब्याज इत्यादि के लिये न जाने क्या क्या ले लिया जाता है। वहाँ भी किसान को यह नहीं मालूम होता है कि दर असल मंडी का भाव क्या है। अस्तु, किसानों से निकल कर अनाज आढ़तियों के पल्ले पड़ता है। आढ़तिया चाहे तो इसे किसी बन्दरगाह की एजेन्सी को बेच देता है या किसी प्रदेश के किसी दूसरे शहर के व्यापारी के हाथ बेच देता है। बन्दरगाह से माल ज्यादातर विदेश ही पहुँच जाता है। प्रादेशिक व्यापारी तो जहाँ तक होता है फुटकर दुकानदारों के हाथ ही अनाज बेचता है। वैसे तो भारतीय व्यापार कुछ खास-खास जाति के आदमियों के हाथ में है। व्यापार में मारवाड़ियों ने बड़ा भाग लिया है। बम्बई में पारसियों ने, पञ्जाब में

खत्रियों और मुसलमानों ने, उत्तर प्रदेश में बनियों ने, बंगाल में मारवाड़ियों और मद्रास में चेट्टी और कोमाटियों ने बड़ी उन्नति दिखाई है।

परन्तु भारतीय व्यापारी जो आढ़तिये के नाम से पुकारे जाते हैं आपस में बेकार लाग-डाँट रखते हैं। उनके बीच मेल न होने के कारण वे सरकार या रेलवे कम्पनियों पर पूरा प्रभाव नहीं डाल सकते। उधार देना, किसी वस्तु का दाम गिराकर ग्राहक को बहकाना, अपना माल अच्छा हो चाहे खराब, उसे किसी प्रकार बेचना, और ग्राहकों पर मुकदमा चलाने में तनिक भी संकोच न करना आदि बुराइयों को फौरन दूर करने की आवश्यकता है। भारत में यूरोपियन एजेन्सी और कम्पनियाँ काफी मशहूर हैं। इनके यूरोपियन व्यापारियों ने तो एकता का गुण अच्छी तरह समझ लिया है और इसी कारण इन्होंने चेम्बर आफ कामर्स और ट्रेड एसोसिएशन खोल रखे हैं। अब तो भारतीय व्यापारी भी एकता और सहयोग का महत्व समझ रहे हैं और उन्होंने भी व्यापारिक संघ खोलना आरम्भ कर दिया है।

तौल माप और सिक्कों की भिन्नता

व्यापारियों की बुरी आदतों के अलावा भारत के अंतर्प्रदेशीय व्यापार के मार्ग में एक और रोड़ा खड़ा है। यहाँ पर भिन्न-भिन्न प्रदेशों में तौलने-नापने का ढंग भिन्न-भिन्न है। यही नहीं, तुम्हें यहाँ कई तरह के सिक्के भी मिलेंगे। इस बात को और स्पष्ट करने के लिये तौलने का सेर ले लो। आमतौर पर यह अस्सी तोले का होता है। लेकिन फैक्टरियों में बहत्तर तोले का सेर माना जाता है। यदि तुम बम्बई से सेर भर दूध खरीदो तो तुम्हें छब्बीस तोला दूध मिलेगा। मद्रास में तो चौबीस तोले का ही सेर चलता है। मध्य प्रदेश में दाल, चावल आदि तौल कर नहीं, बल्कि नाप कर दिये जाते हैं। इलाहाबाद में आम और अमरूद गिन कर बिकते हैं लेकिन आगरा की ओर ये चीजें तौल कर बिकती हैं। इसी तरह कपड़े आदि के नाप में सोलह गिरह या छत्तीस इंच का गज का आम चलन है। लेकिन कितनी ही जगह भाँति-भाँति के कच्चे गज का व्यवहार होता है। इसी प्रकार सिक्कों

का हाल है। यों तो भारत सरकार का रुपया कानूनन सब जगह चल सकता है; परन्तु हैदराबाद राज्य में भिन्न मूल्य का रुपया चलता था। संतोष की बात है कि सरकार की ओर से यह कोशिश की जा रही है कि सब जगह एक ही प्रकार का सेर, गज और सिक्का चलने लगे। मद्रास, प० बंगाल, उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश में तो एक सी तौल के लिये सरकारी कानून बनाने के संबंध में विचार हो रहा है। सरकार दशमलव पद्धति पर सभी मापों को करने के लिये प्रयत्नशील है और सिक्कों के सम्बन्ध में तो आवश्यक कानून बन गया है।

प्रदेशीय व्यापार और दलाल

आजकल जिस प्रकार व्यापार होता है उसमें एक बुराई और है। हमारे व्यापार करने के तरीके में दलाल (या बिचवइये) बहुत अधिक होते हैं। उदाहरण के लिये गेहूँ के व्यापार को लीजिये। गाँव के किसान महाजन के कर्जदार रहते हैं। साथ ही अनाज को मंडी में ले जाने में असमर्थ होने के कारण अथवा यों कहिये इन झंझटों से बचने के लिये किसान अनाज को गाँव के महाजन के हाथ ही बेच देता है, यद्यपि ऐसा करने से उसे अनाज काफी सस्ता देना पड़ता है। गाँव के महाजन के पास इस प्रकार बहुत सा अनाज इकट्ठा हो जाता है। वह उसे रेल के किनारे बसे हुये बाजारों के दुकानदारों के पास पहुँचा देता है, यह दुकानदार या आढ़तिये उस गेहूँ को किसी ऐसी केन्द्रीय मंडी के व्यापारियों के हाथ बेच देते हैं जो गेहूँ के व्यापार के लिये खासतौर पर मशहूर हैं। उदाहरण के लिये कानपुर, हापड़, मेरठ आदि शहरों में अनाज की बड़ी-बड़ी मंडियाँ लगती हैं। मंडियों से जगह-जगह के दुकानदार गेहूँ मँगाकर अपने-अपने स्थानों के ग्राहकों को फुटकर बेचते हैं। इस प्रकार किसान से लेकर गेहूँ का उपयोग करने वालों के बीच कई व्यक्ति रहते हैं और इसमें से हर एक लाभ उठाते हैं।

दलालों (या बिचवाइयों) से उन आदमियों का बोध होता है जो किसान को और फुटकर बेचने वालों को मिलने वाले दामों के अंतर में हिस्सा बटाते

हैं। इनका सब से अच्छा उदाहरण किताबों की बिक्री में मिलता है। मान लीजिये हाई स्कूल में चलने वाली अंग्रेजी पुस्तक की एक कुंजी (Help notes) है। प्रकाशक महोदय ऐसी पुस्तक पर पचास फी सदी तक कमीशन दे देते हैं। जो आदमी इतना कमीशन लेकर किताबें मोल लेता है वह एक-तिहाई कमीशन काट कर किसी अन्य दुकान वाले के हाथ इन किताबों को बेच देता है। दुकानदार किसी फेरी वाले पुस्तक-विक्रेता को पचीस फी सदी कमीशन के साथ बेचने को देता है। यह फेरी वाले महाशय एक आना रुपया कमीशन के साथ किताब विद्यार्थी के सिर मढ़ देते हैं। आमतौर से विद्यार्थियों को हर एक पुस्तक पर एक आना रुपया कमीशन मिल जाता है। ऊपर जैसी किताब की बात आई है उस पर तो अब विद्यार्थी छै पैसे दो आना रुपया कमीशन माँगने लगते हैं। अस्तु, इस प्रकार प्रकाशक महोदय को तो आठ आना मिलता है परन्तु विद्यार्थी चौदह-पन्द्रह आने से हाथ धोते हैं। विदेशों में जैसे इंगलैंड, फ्रांस, इटली आदि में बेचने वालों के संघ होते हैं और अपने मेम्बरों का माल सीधे थोक के व्यापारियों के हाथ बेचते हैं। अंतर्प्रदेशीय व्यापार विदेशी व्यापार से लगभग बीस गुना है और यदि हमारे किसानों की दशा सुधर जाय तो यह और भी बढ़ सकता है। इसके लिये नीचे लिखी बातों की आवश्यकता है; रेल और सड़कों का अधिक विस्तार, मंडियों का अच्छा संगठन जिससे दलाल तथा आढ़तिया किसान को न लूट सकें, और तौल तथा माप देश भर में एक से हों।

प्रश्न

१—भारत में विदेशी व्यापार की अपेक्षाकृत प्रदेशीय व्यापार का क्या महत्व है? इसकी उन्नति के लिए आप कौन से उपाय करेंगे?

२—उदाहरणपूर्वक सिद्ध कीजिये कि भारत के प्रदेशीय व्यापार का क्षेत्र बहुत विस्तृत है।

३—क्या कारण है कि व्यापार का क्षेत्र विस्तृत होते हुए भी हमारा प्रदेशीय व्यापार गिरी हुई हालत में है?

४—रहन-सहन के दर्जे और व्यापार में क्या सम्बन्ध है? क्या भारतीय रहन-सहन का दर्जा ऊँचा करने से भारतीय प्रदेशीय व्यापार की हालत सुधर जायगी?

५—भारत का प्रदेशीय व्यापार किन लोगों के हाथों में है ? उन्होंने व्यापार की दशा किस प्रकार बिगाड़ रक्खी है ?

६—तौल, माप व सिक्कों की भिन्नता का अन्तर्प्रदेशीय व्यापार पर क्या असर पड़ता है ? भारत का उदाहरण देकर विस्तारपूर्वक समझाइये ।

७—"दलाल व्यापार के अभिन्न अंग हैं, परन्तु अनुचित रूप से वे अनर्थ भी कर सकते हैं" इस कथन के आधार पर भारतीय दलालों के गुण-दोषों पर विचार कीजिये ।

८—व्यापार और रहन-सहन के दर्जे में क्या सम्बन्ध है ? क्या रहन-सहन का दर्जा बढ़ाने से भारत में प्रदेशीय व्यापार बढ़ेगा ? (१६४६)

चौदहवाँ अध्याय

भारत का विदेशी व्यापार

पिछले अध्याय में तुमको भारत के अन्दर होने वाले व्यापार का हाल बताया गया था, परन्तु किसी देश के व्यापार में उसके अन्दर का ही व्यापार नहीं शामिल होता। उस देश और विदेशों के बीच जो व्यापार होता है वह भी देश के व्यापार में गिना जाता है।

विदेशी व्यापार का अर्थ

विदेशी व्यापार का दर असल अर्थ क्या है? इसे हम एक उदाहरण लेकर भली प्रकार समझ सकते हैं। भारत का अमेरिका से जो व्यापार होता है उसके अन्दर दो बातें शामिल हैं। प्रथम, हम अपना कुछ माल अमेरिका भेजते हैं। द्वितीय, हम कुछ माल अमेरिका से मँगाते हैं। भारत के जिस माल की माँग अमेरिका में होती है वह माल अमेरिका भेजा जाता है। हमारे यहाँ अमेरिका के जिस माल की माँग होती है वह वहाँ से मँगाया जाता है। इस प्रकार विदेशी व्यापार के दो भाग होते हैं :—(१) निर्यात व्यापार तथा (२) आयात व्यापार। निर्यात व्यापार से हमारा मतलब उस बिक्री से होता है जिससे हम अपना माल बाहर भेजा करते हैं। आयात व्यापार से हमारा मतलब उस खरीद से होता है जो हम विदेशों का माल मँगा कर व्यापार करते हैं।

पाकिस्तान बन जाने के कारण हमारे देशी व्यापार का एक अंश अब विदेशी व्यापार के अन्तर्गत आ गया है। सीमा प्रदेश, सिन्ध, पश्चिमी पंजाब तथा पूर्वी बंगाल से होने वाला अंतर्प्रादेशिक व्यापार अब विदेशी व्यापार का अंग बन गया है।

विदेशी व्यापार अच्छा होता है या बुरा

विदेशों से व्यापार करने से लाभ ही है। दो मुख्य लाभ बताये जा सकते

है। प्रथम, विदेशी व्यापार के कारण देश-विदेश के मनुष्यों में आदान-प्रदान, मिलन-व्यवहार आदि होता रहता है। इससे संस्कृति की वृद्धि होती है और एक देश के लोग दूसरे देश के लोगों को समझने का अवसर पाते हैं। द्वितीय, जो माल जिस देश में सस्ता और अच्छा बनता है वहीं वह बनाया जाता है। अगर फाउन्टेनपेन अमेरिका में सस्ती बन सकती है और भारत में महँगी, तो उन्हें अमेरिका से मँगाना उपयुक्त है। भारत में फाउन्टेनपेन बनाने की जगह हम उन साधनों को किसी अन्य अच्छी वस्तु के बनाने में लगा सकते हैं।

परन्तु विदेशी व्यापार हानि का कारण भी बन सकता है। मान लो, भारत कम माल बाहर भेजता है और अधिक माल बाहर से मँगाता है। इसका नतीजा क्या होगा? जो माल हम मँगाते हैं उसका दाम चुकाना पड़ता है। हमको अपने निर्यात से जो दाम मिलना है वह आयात का दाम चुकाने के काम आ सकता है। लेकिन अगर आयात अधिक है तो कुछ दाम देना बाकी रह जायगा। उसको हम कैसे चुकायेंगे? इसके दो मोटे ढंग होते हैं। एक, हम अपने देश का सोना, चाँदी बाहर भेज दें। दूसरे, हम विदेशों से कम माल खरीदें। और अगर यह सम्भव न हो तो हम विदेशों का मुँह देखा करें और उनके गुलाम बन जायँ।

भारत को हानि है या लाभ

आजकल भारत में पैदावार की कमी है और मिल का बना सामान भी अधिक नहीं है। इसीलिये हम विदेशों से मिल के बने सामान, मशीनें और कुछ अनाज मँगाते हैं, परन्तु उनका दाम चुकाना हमारे लिये कठिन होता है। इसलिये यह जरूरी है कि हम अधिक अन्न पैदा करें और अधिक से अधिक वस्तुयें विदेशों को भेजें। जहाँ तक सम्भव हो तैयार माल अर्थात् हाथ और मिल का बना माल विदेशों को भेजें। अगर हम ऐसा नहीं करेंगे तो हमको अमेरिका, इङ्गलैण्ड आदि देशों का मुहताज बनना पड़ेगा। अतः हमारा कर्तव्य है कि हम ऐसा न होने दें।

भारत का निर्यात व्यापार

भारत कच्चे माल का खजाना है। तीन वर्ष पहले हमारे निर्यात में कच्चा माल का अंश ५०% होता था और तैयार माल का केवल २५%। सन् ५३-५४ में तैयार माल ५०% था और कच्चा माल २२%। इससे भारतीय औद्योगिक विकास का संकेत मिलता है। भारत से जो माल विदेशों को जाता है उसमें भी विशेष कमी नहीं हो सकती क्योंकि दूसरे देश हमसे सस्ता तैयार माल, कच्चा माल और जूट का बना सामान खरीदते हैं। कुछ दिनों से हमारा निर्यात व्यापार गिर रहा था। सन् १९५१ के निर्यात में पाँचवें भाग की कमी हो गई। यह कमी अधिकतर वस्तुओं के भाव गिरने के कारण हुई है। इस हेतु कि निर्यात गिरने न पाए, सरकार ने विभिन्न-निर्यात वस्तुओं के लिए विशेष समितियाँ स्थापित की हैं। अब दो वर्षों से वह पुनः बढ़ा रहा है। सन् १९५५ में ५९५ करोड़ रुपए का माल विदेशों को भेजा गया। हम पहले बाहर जाने वाले माल का ही ज्ञान करावेंगे। इस ज्ञान में हम पाकिस्तान को जाने वाले माल का ध्यान नहीं रखेंगे।

जूट—मूल्य के हिसाब से बाहर जाने वाली चीजों में जूट का सबसे अधिक महत्व है। यद्यपि अधिक मूल्य के कारण सन् १९५४-५५ में सबसे अधिक पैसा चाय के निर्यात से मिला। कच्चा जूट बाहर नहीं जाता; अधिकांश जूट के बने टाट और बोरों का ही निर्यात किया जाता है। यह अधिकार पश्चिमी बंगाल, बिहार और उत्तर प्रदेश से कलकत्ता के रास्ते भेजा जाता है। जूट का सबसे बड़ा खरीदार अमेरिका है। उसके बाद आस्ट्रेलिया और इंगलैंड का नम्बर आता है। देश का विभाजन हो जाने के कारण वह भाग जहाँ जूट अधिक पैदा होता था पाकिस्तान में चला गया है और प्रायः सब जूट की मिलें हमारे यहाँ हैं। परन्तु देश में जूट की पैदावार तेजी से बढ़ी है और अब कच्चे जूट की विशेष कमी न रहेगी। इधर कुछ वर्षों से एक नई बाधा खड़ी हो रही है। विदेशों में कपड़े के थैलों का प्रचार हो चला है। अभी हाल में अमेरिका ने मालव ब्लांक नामक पदार्थ ढूँढ़ निकाला है जिसके बने थैले जूट

के थैले से कम पानी सोखते हैं। इसलिए जूट से बनी वस्तुओं की विदेशी माँग घट रही है। सन् १९५४-५५ में केवल १२४ करोड़ रुपये का जूट का माल बाहर गया। बाहर जाने वाले जूट पर भारत सरकार टैक्स लगाती थी जिससे हमारा जूट महँगा पड़ता था। अब सरकार ने टैक्स हटा दिया है। इसलिए सन् १९५३-५४ की अपेक्षा सन् १९५४-५५ में लगभग १०% अधिक जूट बाहर भेजा गया।

चाय—भारत से बाहर जाने वाले पदार्थों में चाय का दूसरा स्थान है। हमारे यहाँ चाय खूब पैदा होती है। परन्तु भारत गरम देश है और यहाँ लोगों को चाय पीने की आदत भी कम है। इसलिए यहाँ पैदा होने वाली बहुत सी चाय बची रहती है। अगर बची हुई चाय बाहर न जाय तो चाय के व्यापार को बहुत धक्का पहुँचे। इस व्यापार को बनाये रखने की गरज से सरकार ने चाय पर टैक्स घटाया है जिससे इन्डोनेशिया, लंका, पाकिस्तान की अपेक्षा हमारी चाय महँगी न पड़े। भारत की चाय का तीन-चौथाई से अधिक हिस्सा विदेशों को भेजा जाता है। बाहर जाने वाली चाय में से करीब ६०% चाय ग्रेट ब्रिटेन को ही जाती है। चाय के अन्य ग्राहकों में से आस्ट्रेलिया, कनाडा, अमरीका, ईरान, रूस और अरब का नाम लिया जा सकता है। सन् १९५४-५५ में मूल्य-वृद्धि के कारण यह व्यापार लगभग १४७ करोड़ रुपये तक पहुँच गया, अन्यथा मात्रा में तो चाय का निर्यात कम हो गया है। चाय कलकत्ता और मद्रास बन्दरगाह से ही बाहर अधिक जाती है। चाय के बाजार में हिंदेशिया हमारा प्रतिद्वन्द्वी है।

रुई—देश के विभाजन के पहले जूट के बाद रुई तथा सूती माल का नम्बर आता था। अब इसका तीसरा स्थान है। विदेशी व्यापार में रुई तथा सूती माल का महत्व कम नहीं हुआ है, परन्तु विभाजन के कारण कुछ तो रुई का क्षेत्र पाकिस्तान में चला गया और कुछ द्वितीय महायुद्ध के कारण रुई की मिलों की मशीनें पुरानी पड़ गईं और घिस गईं। अतः सूती माल की कमी है। कुछ ही वर्षों में फिर पुरानी स्थिति आ जायेगी।

पहले हमारे यहाँ के महीन तथा छपे हुए कपड़ों की तारीफ करते ही बनती थी, परन्तु अंग्रेज व्यापारियों के कारण हमारा सारा सूती धंधा चौपट हो गया। धीरे-धीरे रुई के कपड़ों की जगह कच्ची रुई बाहर जाने लगी। अब भी बीस करोड़ रुपये की कच्ची रुई बेलजियम, जापान तथा इंगलैंड जाती है, परन्तु अब हमको कच्ची रुई का निर्यात प्रिय नहीं है क्योंकि हमको साठ करोड़ रुपये की कच्ची रुई तो आयात करनी ही पड़ती है। हम अब रुई के माल का निर्यात पसन्द करेंगे। उससे सूती उद्योग की वृद्धि होती है। सन् १९५४-५५ में लगभग ६६ करोड़ रुपये के रुई के धागा और कपड़े विदेशों को भेजे गये थे। रुई के धागे निकटपूर्व देश (अफगानिस्तान फारस, ईराक, अफ्रीका,) आदि मुल्कों को अधिक जाते हैं। रुई का कपड़ा भी आस-पास के देशों में जाने लगा है। इनमें मलाया, लंका, अदन, केनिया आस्ट्रेलिया, अफ्रीका, अरब और इन्डोनेशिया के नाम गिनाये जा सकते हैं। कपड़ा खरीदने वाले देशों की माँग का एक बड़ा अंश वहाँ रहने वाले भारतीयों के कारण ही होता है। वे स्वदेश का बना कपड़ा पसन्द करते हैं। सूती कपड़े के निर्यात-बाजार में जापान की प्रतिद्वन्द्विता बढ़ रही है। रुई और सूती माल का निर्यात कोचीन, बंबई, भावनगर आदि बंदरगाहों से अधिक होता है। यह बंबई, मध्य प्रदेश और मध्य भारत से आती है।

तेल—जहाँ हम पहले तिलहन बाहर भेजते थे, वहाँ अब हम लगभग २२ करोड़ रुपये का तेल (मुख्यतः मूँगफली का तेल) विदेशों को भेजते हैं और करीब ४ करोड़ रुपये की मूँगफली। तेल बेचने से हमको खली बच जाती है और हमारे यहाँ तेल पेरने के व्यवसाय में लोगों को काम भी मिलता है। मूँगफली के तेल के बाद अंडी तथा अलसी के तेल का स्थान है।

मैंगनीज तथा अन्य खनिज धातु—एक समय था जब हमारे निर्यात व्यापार में पाँचवा स्थान मसालों या तेलहन का होता था। अब यह स्थान धातुओं, विशेषतः मैंगनीज का है। लगभग १९ करोड़ रुपये का मैंगनीज विदेशों को भेजा जाता है। सन् १९५५ में मैंगनीज का निर्यात काफी कम रहा है।

चमड़ा—रुई और चाय की भाँति तम्बाकू और चमड़े की भी स्थिति है। निस्संदेह तम्बाकू के खाने-पीने तथा धूम्रपान की आदत की वृद्धि के कारण भारतीय तम्बाकू निर्यात का भविष्य उज्ज्वल है, परन्तु सन् १९५४-५५ में केवल ११ करोड़ रुपये की तम्बाकू बाहर भेजी गई। लगभग दो तीन करोड़ रुपये का गाय भैंस का कच्चा चमड़ा, तथा अधिकांश बकरी का चमड़ा विदेशी हमसे खरीदते हैं। लगभग सात करोड़ रुपये का कच्चा चमड़ा बाहर जाता है। पिछली लड़ाई के कारण हमारे यहाँ चमड़ा कमाने के उद्योग की उन्नति हुई और कमाये चमड़े का विदेशों में अधिक दाम मिलता है। उसकी माँग भी अधिक है, परन्तु देश के विभाजन के कारण काफी चमड़ा पाकिस्तान में चला गया। अतः भारत सरकार ने चमड़े के निर्यात पर रोक लगा दी है। तब भी हमारे चमड़े का भविष्य पूर्ववत् चमकीला है। सन् १९५३-५४ में १९ करोड़ रुपये का कमाया चमड़ा निर्यात हुआ। हमारे चमड़े के प्रमुख ग्राहक क्रमशः इंगलैण्ड, अमरीका, जर्मनी और फ्रांस हैं। अब हम जितने का कच्चा चमड़ा बाहर भेजते हैं उससे तिगुने का कमाया चमड़ा बाहर जाता है। चमड़े का अधिकांश निर्यात मद्रास से होता है। कलकत्ता, कोचीन और बम्बई से भी चमड़ा बाहर जाता है।

मसाला—एक ज़माना था जब ईस्ट इंडिया कम्पनी के जहाज मसालों से भर कर विदेशों को जाते थे। पिछले युद्ध के बाद से मसालों को हमारे निर्यात में एक बार फिर से महत्वपूर्ण स्थान मिलता दिखाई पड़ता है। सन् १९५३-५४ में सत्रह करोड़ रुपये का मसाला विदेश गया जिसमें काली मिर्च मुख्य है। अमरीका और इंगलैण्ड मसालों के प्रमुख खरीदार हैं।

तम्बाकू—सन् १९५३-५४ में लगभग ग्यारह करोड़ रुपये की तम्बाकू विदेश गई। सरकारी तथा भारतीय केन्द्रीय तम्बाकू समिति की खोज और सहायता के कारण तम्बाकू की पैदावार और निर्यात में तरक्की है। हमारे तम्बाकू का मुख्य ग्राहक इंगलैण्ड है।

अन्य वस्तुएँ—जूट, चाय, रुई का निर्यात न हो तो हमारा ६०%

निर्यात ही गायब हो जाय । और यदि खनिज पदार्थ, चमड़ा मसाला तथा तम्बाकू निर्यात का भी न हो तो हमारा निर्यात पंचमांश रह जाय ।

निर्यात वस्तुओं में फल, तरकारी (विशेषतः काजू) तथा मछली भी उल्लेखनीय हैं । चमड़ा तथा हस्तशिल्प के बने पदार्थ भी महत्व रखते हैं । विदेशों को जाने वाली अन्य वस्तुओं में अबरख, ऊन, कहवा और एक करोड़ रुपये की मशीनें भी हैं ।

पहले भारत से करीब ढाई अरब रुपये का सामान विदेशों को जाता था । सन् १९३९-४० में लड़ाई छिड़ जाने के कारण विदेशी व्यापार दो अरब का ही रह गया । उसके बाद जापान आदि अन्य देशों से व्यापार बन्द हो जाने पर भी १९४१-४२ में विदेशी व्यापार करीब ढाई अरब का था । चीजों के मूल्य बढ़ जाने के कारण ही यह और अधिक बढ़ गया है । सन् १९५४-५५ में तो ५८३ करोड़ रुपये का निर्यात हुआ था । भविष्य में रुई, कमाए चमड़े व खाल, ऊन, कहवा, वनस्पति तेल, काली मिर्च तथा काजू का निर्यात बढ़ाने का काफी क्षेत्र है और हमारे व्यापारियों को प्रयत्नशील होना चाहिए । यह अति आवश्यक है कि मूल्य भले ही अधिक माँगा जाय परन्तु माल बढ़िया हो और खरीदार को किस्म तथा तौल के संबंध में कोई धोखा न हो ।

भारत का आयात व्यापार

तीस वर्ष पहले हमारे आयात में कच्चा माल ७४% तथा तैयार माल ७६·७% था । अब इनका भाग क्रमशः लगभग ३०% तथा ५०% है अर्थात् हम कच्चा माल अधिक आयात करते हैं । कुछ वर्ष से अनाज का आयात बढ़ गया था परन्तु अब यह काफी घट गया है । अनाज का भारत का आयात-व्यापार निर्यात-व्यापार से अधिक ही रहता है । यह कमी अधिकतर विदेशी सहायता और उधार द्वारा पूरी होती है । सन् १९५३-५४ में आयात छः अरब तेरह करोड़ रुपये का था । आयात के मुख्य पदार्थों का विवरण

व्यापारिक मार्ग
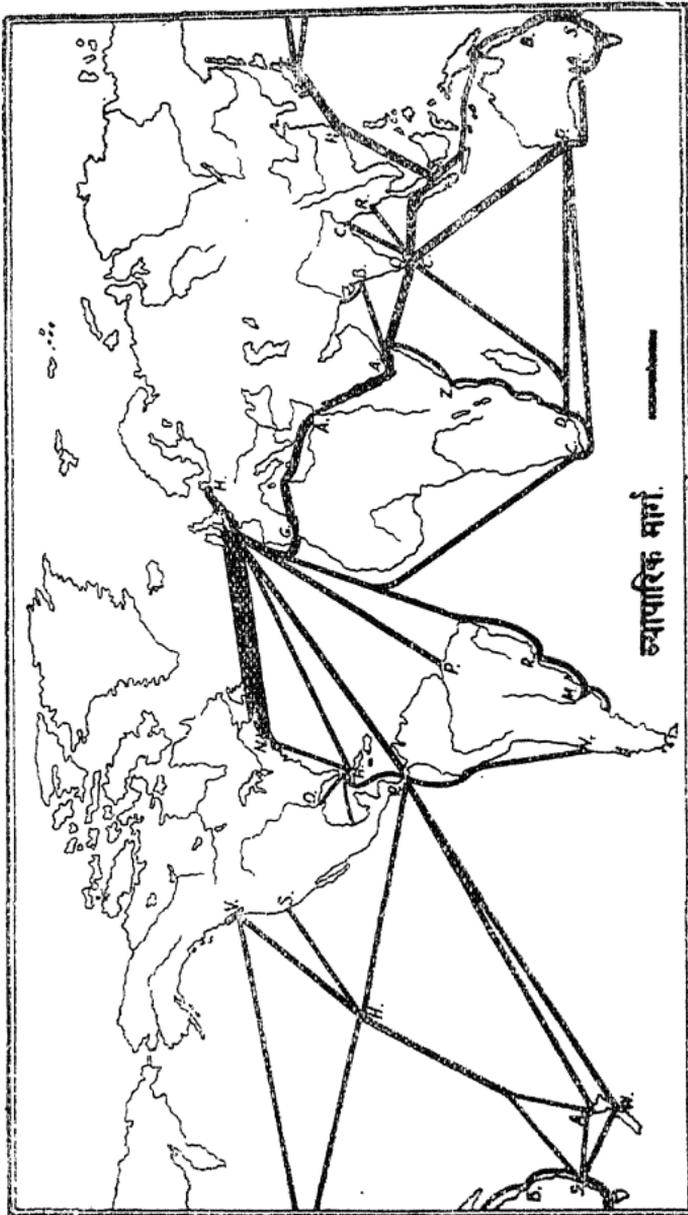
नीचे बताया जाता है। इसमें पाकिस्तान से आने वाले माल का ध्यान नहीं रक्खा गया है।

धातु का सामान—पिछले युद्ध से पूर्व लोहे, फौलाद तथा अन्य धातु की वस्तुओं का दूसरा स्थान था। अब इनका प्रमुख स्थान है। कुल आयात का चौथाई अंश इन पर खर्च होता है।

अब तो इन्हें प्रथम स्थान प्राप्त है। भारत में चार बड़े कारखाने हैं जहाँ लोहे और फौलाद के सामान बनते हैं। द्वितीय महायुद्ध के कारण इन कारखानों ने कई गुनी उन्नति की है। परन्तु तब भी बहुत-सा लोहा, फौलाद, जस्ता चढ़ी हुई चद्दरें, रेल की पटरी, छड़ें, गार्डर, पेच, कील तथा रुई, जूट, चीनी आदि के कारखानों में काम आने वाली बड़ी-बड़ी मशीनें, साइकिल, मोटर, इंजन आदि वस्तुएँ हम बाहर से मँगाते हैं। छोटे यंत्रों का आयात घटा है परंतु बड़ी-बड़ी मशीनों का आयात पूर्ववत् चल रहा है। अपने देश में छोटी मात्रा के उद्योग-धंधों की शीघ्र उन्नति के लिए छोटे यंत्रों के आयात पर भी विशेष ध्यान तथा जोर देना चाहिए। पहले तो अमरीका, इंगलैण्ड, फ्रांस, बेलजियम, जर्मनी आदि देशों से यह माल आता था परन्तु अब तो प्रथम दो देशों से ही सामान अधिक मिलता है। भारतीय औद्योगिक मेले (दिल्ली, १६५५) के बाद अन्य देशों से यंत्रादि मिलने की संभावना बढ़ गई है।

अब भी करीब ११३ करोड़ रुपये का लोहे तथा इस्पात का बना माल प्रतिवर्ष भारत खरीदता है। इसके अतिरिक्त अन्य धातुओं व उनकी मशीनों और बिजली के सामान में करीब ३७ करोड़ रुपया विदेशों से आता है।

अनाज—धातु की वस्तुओं के बाद कुछ वर्षों से दूसरा स्थान अनाज का था। परन्तु सन् १६५४-५५ में करीब ७० करोड़ रुपये का अनाज विदेश से मँगाया गया। अधिकांश चावल बर्मा ही से आया। जिस देश में घी-दूध की नदियाँ बहती थीं उस देश को विदेशों से अनाज मँगाना पड़े यह बड़े शर्म की बात है। हमको केवल राजनैतिक स्वतंत्रता पाकर ही नहीं चुप होना चाहिये। हमको आर्थिक स्वतंत्रता की पूरी आवश्यकता है।

तेल—मिट्टी का तेल और उससे बने पदार्थ तथा वनस्पति का तेल भी काफ़ी मात्रा में हमारे देश में आता है। मिट्टी का तेल और पेट्रोल अधिकतर बर्मा से आता था। जैसा कि तुम जान चुके हो हमारे देश में यह वस्तु कम मिलती है। अस्तु, कुल तेल का मूल्य लगभग ६० करोड़ रुपये हो जाता है जो अधिकतर बहरीन, सऊदी अरब तथा बर्मा से आता है। कृषि यन्त्रों के प्रयोग और पेट्रोल राशन की ढिलाई पेट्रोल के उपयोग को बढ़ा रही हैं।

रुई—रुई, ऊन तथा रेशम व इनसे बने कपड़ों का हमारे आयात में प्रमुख स्थान रहा करता था। यह तब की बात है जब हमारे उद्योग-धन्धों की वृद्धि नहीं हो रही थी और जब हम विदेशी शासन के कारण दबे हुए थे। अब तो इनका गौण स्थान रह गया है। तब भी हम इन्हें दूसरा महत्वपूर्ण स्थान देते हैं क्योंकि हम अनाज के आयात को तो मिटाने के लिए तुले हुए हैं।

हमारे यहाँ देश के विभाजन के कारण अब रुई कम होती है और लम्बे रेशे की रुई की तो काफी कमी है। हम लम्बे रेशे की रुई पाकिस्तान, केनिया, मिस्र तथा अमरीका से मँगाते हैं। परन्तु सन् १९५४-५५ में विदेश से हमने केवल ५८ करोड़ रुपये की रुई मँगाई। रुई के अलावा सूत भी बाहर से आता था जिससे हमारे जुलाहे कपड़ा बुनते थे। अब सूत व रुई के कपड़े का आयात २ करोड़ रुपये का भी नहीं रह गया है। सूत की कमी के कारण जुलाहों का कारोबार मारा गया है।

सूती माल के अलावा ऊन और ऊनी माल भी हमारे देश में आता है। यह अधिकतर इंगलैंड से आता है। सन् १९५३-५४ में लगभग ९·५ करोड़ रुपये का ऐसा माल आया।

असली और नकली रेशम, रेशमी धागे और कपड़े भी हमारे यहाँ आते हैं। पहले तो नकली रेशम की जापान ने धूम मचा दी थी। बहुत कुछ सम्भव है कि शीघ्र ही फिर नकली रेशम के माल की पूर्ति बढ़ जायगी। जापान के अतिरिक्त रेशम का सामान अधिकतर इटली, चीन और फ्रांस से

आता है। परन्तु अब तो हमारे देश में भी कुछ नकली रेशम के कारखाने खुल रहे हैं। सन् १९५४-५५ में १४·४ करोड़ रुपए का नकली रेशम का सूत बाहर से मँगाना पड़ा।

जूट—चूँकि अभी हमारे यहाँ जूट कम होता है, अतः सन् १९५४-५५ में भी पाकिस्तान से लगभग १३ करोड़ रुपये का जूट भारत आया।

दवाइयाँ तथा रङ्ग—भारत की जलवायु तथा वनस्पति को देखते हुये यहाँ प्रत्येक प्रकार की दवाई व रासायनिक पदार्थ तैयार करने के लिये पौधे और जड़ी-बूटियाँ मिल सकती हैं। अब तो दवाइयाँ और रासायनिक पदार्थ कुछ भारतीय कम्पनियों में बनने लगे हैं। यदि सरकार इस ओर ध्यान दे तो बत्तीस करोड़ रुपये भारतीयों के हाथ में ही रहें। यदि लड़ाई के पहले सरकार दवाइयों और रासायनिक पदार्थों के उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन देती तो इन वस्तुओं के सम्बन्ध में जो दिक्कतें झेलनी पड़ती हैं और जनता को जो कई गुने दाम चुकाने पड़ते हैं वे सब बच जाते।

भारत में रंग भी बनाया जा सकता है और अब सरकार ने रंग बनाने की ओर भी ध्यान दिया है। फिर भी हमको विदेशों से बीस करोड़ रुपये का रंग खरीदना पड़ता है। अब एक रंग की मिल बम्बई प्रदेश में स्थापित हुई है।

अन्य आयात पदार्थ—परिवहन साधन (मोटर), कागज व लुब्दी, छुरी, काँटा आदि भी उल्लेखनीय आयात हैं। सन् १९५४-५५ में इनका आयात क्रमशः ३४ करोड़, १४ करोड़, तथा १८ करोड़ रुपये का था।

उपर्युक्त मुख्य तथा अन्य उल्लेखनीय आयात पदार्थों के कारण हमारा तीन-चौथाई आयात होता है। इसके अतिरिक्त फल-तरकारी, गरम मसाले, तम्बाकू, चीनी, लकड़ी का सामान तथा अनेक अन्य सामान भी थोड़े-बहुत बाहर से मँगाये जाते हैं।

विदेशी व्यापार की दशा

भारतीय विदेशी व्यापार विभिन्न देशों से होता है। कुल आयात का

लगभग तिहाई भाग अमरीका तथा इंगलैंड से आता है। उसके बाद जर्मनी, मिश्र और आस्ट्रेलिया का स्थान है। सुदूर पूर्व के देशों से भी जिसमें बर्मा और जापान मुख्य हैं हमारा आयात व्यापार बढ़ रहा है। पहले हम ब्रिटिश बादी देशों (Commonwealth Countries) से माल अधिक मँगाते थे। लेकिन अब अन्य देशों से माल अधिक आता है। इसका यह अर्थ है कि इंगलैण्ड से हमारे आर्थिक संबंध कम होते जा रहे हैं। पाकिस्तान से हमने लगभग १६ करोड़ का आयात किया जिसमें अधिकांश जूट था। भारत का इंडोनेशिया से भी व्यापार बढ़ रहा है।

जहाँ तक निर्यात का प्रश्न है इंगलैण्ड तथा अमरीका का यहाँ भी प्रमुख स्थान है। लगभग आधा निर्यात इन दो देशों को जाता है, तथापि जर्मनी तथा भारत के समीपवर्ती देशों को, जिनमें सुदूर पूर्व तथा मध्य पूर्व के देश शामिल हैं, हमारा निर्यात बढ़ रहा है। भारत पास के देशों की तैयार माल की माँग पूरी करने का प्रमुख देश बन रहा है। परन्तु विशेषतः सूती कपड़े तथा

व्यापार की दिशा
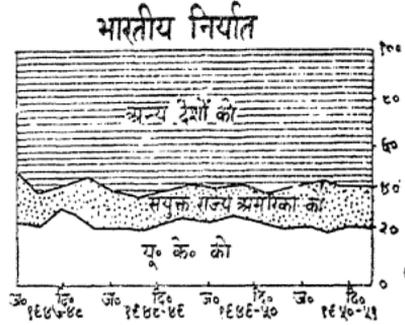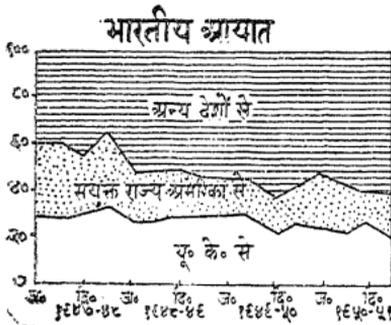
अन्य तैयार माल का बाजार पकड़ने तथा वहाँ के खरीदारों को अच्छे माल का विश्वास दिलाने की बहुत आवश्यकता है। हमारे व्यापारियों को अधिक ईमानदार बनना चाहिए। इसी में देश का गौरव तथा हित है।

स्पष्ट है ग्रेट ब्रिटैन को सबसे अधिक माल जाता भी है और वहाँ से

आता भी है। कच्चे माल में रुई, जूट, तेलहन और लाख जाते हैं और सूती और ऊनी कपड़े, मशीनें, दवाइयाँ और रंग आते हैं।

सन् १९४७ से हमारा निर्यात आयात से कम है। इसका मुख्य कारण विदेशों से भोजनादि की खरीद तथा देश में अधिक भाव के कारण गिरा हुआ निर्यात है। भारत सरकार विलासिता की वस्तुओं का आयात रोक कर तथा कृषि उत्पादन बढ़ा कर इस विषम अवस्था का सुधार कर रही है। सरकारी प्रबन्ध के कारण सन् १९५०-५१ में निर्यात आयात से पुनः अधिक हो गया। लेकिन सन् १९५२ से पुनः आयात अधिक हो गया। इसका कारण अन्न-आयात तथा माँग का कम होना ही है।

अस्तु, भारत के विदेशी व्यापार की उन्नति के लिए उन बाधाओं को दूर करना तो जरूरी है ही जिनका हाल पहले बताया जा चुका है। भारत सरकार ने इस हेतु आयात सलाहकार समिति तथा निर्यात सलाहकार समितियाँ भी बनाई हैं और अंतर्राष्ट्रीय विदेशी व्यापार-समझौते भी करती है। परन्तु व्यापार वृद्धि के हेतु यह भी आवश्यक है कि भारतीय बन्दरगाहों की हालत सुधारी जाय और अधिक अच्छे बन्दरगाह बनाये जायँ। जैसे प्रदेशीय व्यापार में शहरों का प्रमुख भाग रहता है वैसे विदेशी व्यापार में बन्दरगाहों का। अतः शहरों और बन्दरगाहों पर हम अगले अध्याय में विचार करेंगे।

अभ्यास के प्रश्न

१—भारत के विदेशी व्यापार की मुख्य-मुख्य बातें संक्षेप में बताइये।

२—भारत से बाहर जाने वाली वस्तुओं में कौन-कौन मुख्य हैं? वे कहाँ पैदा होती हैं और कहाँ भेजी जाती हैं?

३—पिछले युद्ध के बाद भारत के विदेशी व्यापार में कैसा परिवर्तन हुआ? संक्षेप में बताइये।

४—निम्नलिखित वस्तुओं के विदेशी व्यापार के सम्बन्ध में संक्षेप में टिप्पणियाँ लिखिये। रुई, तेलहन, चाय, अभ्रक, लाख।

५—मशीन, रेशम और कागज के आयात में कितना व्यय होता है? इनके भविष्य के सम्बन्ध में तुम्हारे क्या विचार हैं?

६—कच्चे माल और तैयार माल के सम्बन्ध में भारत और इंगलैंड कहाँ तक एक-दूसरे पर निर्भर हैं ?

७—भारतीय विदेशी व्यापार की वस्तुओं की सूची बनाइये। वे मुख्यतः किन देशों को जाती हैं ? (१६४६, १६५३)

८—भारत की पाँच मुख्य निर्यात वस्तुएँ क्या हैं ? वे मुख्यतः किस क्षेत्र से, किन बन्दरगाहों द्वारा तथा किन देशों को भेजी जाती हैं ? बदले में उन देशों से क्या आता है ? (१६४७)

६—भारत से निर्यात होने वाली पाँच मुख्य वस्तुओं के नाम लिखिए। वे किन क्षेत्रों और किन बन्दरगाहों से भेजी जाती है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हमारे निर्यात व्यापार में क्या परिवर्तन हुआ है ? (१६५१)

पन्द्रहवाँ अध्याय

भारतीय शहर और बन्दरगाह

शहरों की उत्पत्ति

पिछले दो अध्यायों में तुम्हें भारत के प्रादेशिक तथा विदेशी व्यापार का हाल बताया गया था। इस व्यापार की वजह से जगह-जगह शहर स्थापित हो गये हैं। व्यापार के अलावा शहरों की उन्नति के और भी बहुत से कारण हैं। पुराने जमाने में आजकल की तरह नगर नहीं होते थे। ज्यादातर जहाँ राजधानी होती थी वहाँ तो किले की चहार-दीवारी के अन्दर एक प्रकार का शहर बसा रहता था। बाहर अधिकतर गाँव होते थे। व्यापार आदि के केन्द्र राजधानियाँ होती थीं। इन केन्द्रों के अलावा तीर्थ-स्थान होते थे। इन तीर्थ-स्थानों में हर समय यात्री आते-जाते रहते थे। यात्रियों के कारण तीर्थ-स्थान भी घने बसे हुए थे और उनकी गणना शहरों में की जा सकती थी। पुराने जमाने के इन शहरों में पाटलिपुत्र (पटना) चन्द्रगुप्त की राजधानी थी, दिल्ली में पृथ्वीराज चौहान राज्य करता था और कन्नौज में राजा जयचन्द। काशी (बनारस), प्रयाग (इलाहाबाद) अयोध्या आदि तीर्थ-स्थानों की गिनती उस समय भी शहरों में की जा सकती थी।

धीरे-धीरे मुसलमानों की चढ़ाइयाँ शुरू हुई। और वे लोग यहाँ बस गये। भारत में मुसलमानी राज्य का आरम्भ हुआ, तो जगह-जगह बहुत से किले बनाये गये। जहाँ-तहाँ इन किलों के बनने से उसके आसपास आदमी बस जाते और कुछ समय में एक शहर तैयार हो जाता था। मुगल राज्य के समय में नवाबों को जागीरें मिली थीं। वे जहाँ रहते थे वे जगहें बस गईं और धीरे-धीरे नगरों में बदल गईं। मुसलमान व मुगल बादशाहों और

नवाबों के जमाने में तैयार होने वाले नगरों में जौनपुर, आगरा, अलीगढ़, शाहजहाँपुर, रामपुर, नसीराबाद, मुजफ्फरपुर, दौलताबाद या औरङ्गाबाद का नाम लिया जा सकता है।

जिस समय भारत में मुगल साम्राज्य की नींव पड़ी, यूरोप वालों ने समुद्र द्वारा भारत से व्यापार करना आरम्भ किया। पहले पुर्तगाल, हालैंड, फ्रांस आदि देशों के निवासी यहाँ आकर व्यापार करने लगे। व्यापार करते-करते इन्होंने राजाओं को खुश करके बन्दरगाहों पर कोठियाँ बनाने के लिये जगहें ले लीं। इन कोठियों ने बढ़ते-बढ़ते किलों का वेष धारण कर लिया। बाद में ये व्यापारी यहाँ के राजनैतिक मामलों में दखल देने लगे। जब दो नवाबों या राजाओं में लड़ाई होती तो ये उन्हें सिपाहियों की मदद दे देते थे। यदि इस प्रकार मदद पाने वाला राजा जीत जाता तो वह ईनाम में बहुत सी जमीन दे देता या कहीं किला बनाने की आज्ञा और धन देता था। इस प्रकार पांडुचेरी, चन्द्रनगर, गोआ, डामन, ड्यू आदि जगहों में किले बनाये गये और ये स्थान बस गये। अंग्रेजों के व्यापार-क्षेत्र में उतरने के साथ यह हालत और बढ़ गयी। अंग्रेजों ने कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में अपने किले खड़े किये। बन्दरगाह होने की वजह से इन विदेशियों का माल इन्हीं बन्दरगाहों पर उतरता था। इसके बाद प्राकृतिक स्थिति के अनुसार इन नये बसे बन्दरगाहों और नगरों की वृद्धि हुई। अंग्रेजों का अधिकार यहाँ पर जम गया और जब वे यहाँ पर राज्य करने लगे तो अपने बचाव के लिए उन्होंने नई-नई जगहों में फौज रखना शुरू किया। इस प्रकार मेरठ आदि शहरों की उत्पत्ति हुई। परन्तु कहाँ ठंडे मुल्क के वाशिन्दे अंग्रेज और कहाँ भारत सा गरम देश! यहाँ की गर्मी के कारण शिमला, नैनीताल, मंसूरी, अलमोड़ा आदि पहाड़ी नगर बसाये गये।

शहरों की उन्नति व वृद्धि

अब तक हमने तुमको शहरों की उन्नति के बारे में बताया। परन्तु यदि तुमसे कोई पूछे कि शहरों की वृद्धि किन कारणों से होती है अथवा अमुक

शहर किस प्रकार इतना बढ़ गता तो शायद तुम ठीक-ठीक जवाब न दे सकोगे। इसलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि तुम्हें इसके बारे में भी कुछ हाल बताया जाय।

नगरों की वृद्धि के अनेक कारण हो सकते हैं। सरकारी इन्तजाम के केन्द्र होने के कारण बहुत से नगर बस जाते हैं। यह तुम जानते हो कि पहले कलकत्ता, मद्रास और बम्बई में अंग्रेज सरकार का इन्तजाम होता था। बहुत दिनों तक यह हाल चलता रहा। कलकत्ता तो सन् १९१२ तक अंग्रेजी राज्य की राजधानी थी। १९१२ में यह राजधानी हटाकर दिल्ली पहुँचा दी गई। राज्य की रक्षा करने के लिये यह नितान्त आवश्यक होता है कि कुछ खतरनाक स्थानों पर फौज रक्खी जाय। अर्थात् कुछ रक्षा-केन्द्र बनाए जायँ, जैसे सरहद पर भारत में पाकिस्तान की ओर से हमले का डर रहता है। इसलिए सरकार को अधिक तादाद में फौज रखनी पड़ती है। फिर फौज को खाना कपड़ा देने के लिये इन स्थानों में व्यापारी आकर बस गए। इस प्रकार ये शहर बढ़ गए।

किसी जगह पर तीर्थस्थान का होना भी बड़ा महत्व रखता है। धार्मिक पुरुष तीर्थस्थानों में ही अपनी शेष जिन्दगी बिताना चाहते हैं, जिससे वे रोज वहाँ पर स्थापित देवता के दर्शन करते रहें और मरने पर बैकुंठ जायँ। लोगों में यह बात प्रचलित है कि काशी में मरने वाले को नरक नहीं मिलता। प्रयागराज में जिसकी मृत्यु होती है उसे गंगा जी मिलती हैं, इस लिए वह तर जाता है। हिन्दुओं का विश्वास है कि जो अपने पितृ के लिए गया जाकर श्राद्ध कर आते हैं उनके पितृ स्वर्ग चले जाते हैं। तीर्थस्थान न होते हुए भी नदी के किनारे बसे रहने के कारण छपरा, मुंगेर आदि व्यापार के केन्द्र बने हुए हैं। जहाँ पर दो नदियों का संगम होता है वहाँ पर भी शहरों के बसने की सम्भावना अधिक रहती है। इलाहाबाद गंगा-जमुना के संगम पर बसा है। इसी प्रकार पटना गंगा, घाघरा, गंडक और सोन नदियों के संगम पर बसा हुआ है। नदियों के संगम पर होने के कारण ये स्थान व्यापार के लिये बड़े उपयुक्त होते हैं क्योंकि नदी द्वारा आसानी से माल आ जा सकता है।

आस-पास के स्थानों से कच्चा माल आने की सुविधा अथवा पुराने सिद्धहस्त कारीगरों की बस्ती के कारण भी बहुत से औद्योगिक केन्द्र शहर बन जाते हैं। बाद में वहाँ रेलों का जंकशन या अन्य वस्तुओं की उत्पत्ति आरम्भ हो जाती है और शहर तरक्की कर जाते हैं। कानपुर ने ऐसे ही उन्नति की। बिहार में जमशेदपुर ऐसा ही शहर है। भागलपुर रेशमी कपड़ों के जुलाहों का केन्द्र है। पटना, बनारस और आगरा शहर एक तरह से व्यापार के केन्द्र हैं।

कहीं-कहीं व्यापार के मार्ग पर होने के कारण शहर बस जाता है। उदाहरण के लिए गरतोक, तिब्बत और भारत से होने वाले व्यापार के मार्ग पर है। इसी प्रकार दार्जिलिंग से होकर ऊन के व्यापारी आते हैं। और काश्मीर के लेह (Leh) नामक स्थान से कराकोरम पहाड़ के दर्रा से होकर व्यापार-मार्ग है। लेह व दार्जिलिंग आदि शहरों की उन्नति केवल इसीलिए हुई। सबसे बड़ी बात तो यह है कि यहाँ से भारत से बाहर जाने के दर्रों को रास्ता जाता है।

कई एक पहाड़ी स्थानों में शहर बस गये हैं। इसका कारण यह है कि गर्मी के दिनों में लोग यहाँ ठंडक में दिन बिताने के लिये मैदानों से चले आते हैं। बहुत से पहाड़ी स्टेशनों पर गर्मियों में सरकारी दफ़्तर पहुँच जाते हैं। ऊपर जिस दार्जिलिंग का जिक्र आया है वह गर्मी में पश्चिमी बंगाल-सरकार की राजधानी बनती है। इस प्रकार जब इलाहाबाद व लखनऊ में रहने वाले गर्मी में सड़ा करते हैं, उत्तर प्रदेश का सरकारी दफ्तर नैनीताल पहुँच जाता है। मध्यप्रदेश की सरकार अपना काम पञ्चमढ़ी से करती है। मद्रास सरकार उटकमंड पहुँच जाती है। प्रादेशिक सरकारों के ऊपर दिल्ली में एक केन्द्रीय सरकार है। गर्मी पड़ने पर इसका काम शिमला में होता है। मंसूरी, अलमोड़ा, महाबलेश्वर आदि अन्य पहाड़ी स्थानों पर लोग गर्मी में हवा खाने जाया करते हैं। लोग काश्मीर की सुन्दर घाटी में स्थित श्रीनगर भी इसीलिए जाते हैं।

यातायात की सुविधा के कारण बहुत से शहर बस गये हैं। उनमें कई

जगहें समुद्र से बहुत पास हैं। अतएव वहाँ पर फैक्टरियाँ बन गई हैं। गोआ, डामन, मछलीपट्टम, पांडुचेरी ऐसी ही जगहें हैं। रेलों के चल जाने से शहरों की बहुत कुछ उन्नति हुई है, जैसे कानपुर, जबलपुर, अहमदाबाद आदि स्थानों को पहले कौन जानता था? परन्तु कानपुर मध्य रेलवे और उत्तरी रेलवे का बड़ा जंकशन है। जबलपुर में पूर्वी रेलवे और बम्बई से आने वाली मध्य रेलवे का मिलन होता है।

कहीं-कहीं बड़े मेले लगते हैं और उन मेलों की वजह से कई नगर बस गये हैं। बलिया नगर के निकट इस प्रकार ददरी नामक मेला प्रति वर्ष लगता है। इसी तरह सोनपुर में सोनभद्र का मेला होता है। इन मेलों में गाँव के मेलों के अतिरिक्त अन्य चीजें बिकती है। रानीगंज में कोयले की खान की खुदाई होती है। जमशेदपुर का नाम हम पहले ले चुके हैं। लोहे की खान के पास यदि जमशेद ताता जमशेदपुर में अपना लोहे का कारखाना न खोलते तो आज जमशेदपुर में चार छः झोपड़ियों के अलावा और कुछ नहीं दिखाई पड़ता।

भारत में सत्ताईस विश्वविद्यालय हैं। दो को छोड़कर बाकी विश्वविद्यालयों के केन्द्र केवल वहाँ पर विश्वविद्यालय होने के कारण नहीं बढ़े बल्कि उनके बनाने में अन्य बातों का भी हाथ है। परन्तु अलीगढ़ और आन्ध्र विश्वविद्यालय की वजह से तो उनके केन्द्रों ने कुछ उन्नति कर भी ली वरना इन्हें कोई न पूछता।

देश के बाहर से आकर बसने वाले लोगों के कारण भी कुछ शहरों की उत्पत्ति होती है। यथा, पाकिस्तान बन जाने के बाद वहाँ से आने वालों को बसाने के कारण ही नीलोखेरी की उत्पत्ति हुई है।

सारांश में शहरों की उत्पत्ति के मुख्य कारण ये हैं:—राजधानी, सामरिक सुरक्षा, तीर्थ, स्वास्थ्य-केन्द्र, शिक्षा-केन्द्र, खनिज-केन्द्र, औद्योगिक-केन्द्र, व्यापार-केन्द्र, बंदरगाह, अन्य व्यापार-मार्ग-केन्द्र आदि।

मुख्य मुख्य शहरों की विशेषता

अब हम आपको कुछ मुख्य-मुख्य शहरों की विशेषता के बारे में बतायेंगे। हमारी उत्तरी सीमा काश्मीर का मुख्य शहर **श्री नगर** है। वूलर झील के पास बसा हुआ श्रीनगर का दृश्य बड़ा मन लुभाने वाला होता है। श्रीनगर से पर्वतों और सिन्धु नदी के मैदानों को माल आता-जाता है। **अमृतसर** सिक्खों का पवित्र स्थान है। यहाँ का स्वर्ण-मन्दिर मशहूर है। यहाँ के दुशाले और दरियाँ बहुत अच्छी होती हैं। भारत सरकार गर्मी के दिनों में अपना दफ़्तर **शिमला** उठा ले जाती है।

भारत की राजधानी **दिल्ली** ऐतिहासिक जगह है। नई दिल्ली में सरकारी दफ़्तर स्थित हैं। पुरानी दिल्ली में मलमल, लकड़ी, हाथीदाँत व सोने चाँदी का काम होता है। दुशाले भी बुने जाते हैं। रुई, चीनी और लोहे के कारखाने हैं। यह उत्तरी भारत के रेलों का केन्द्र है, इसलिये यह व्यापार का केन्द्र भी है। **मेरठ** नगर फौज के कारण बढ़ा, लेकिन वहाँ की कैंचियाँ मशहूर हैं। वहाँ खादी उत्पादन तथा अब तो खेल का सामान बनाने का महत्वपूर्ण केन्द्र है। **मथुरा** यमुना नदी पर बसा हुआ है। यह हिन्दुओं का तीर्थस्थान है। मथुरा के उत्तरी-पूर्वी कोने पर **अलीगढ़** है, जहाँ पर अलीगढ़ यूनिवर्सिटी है। मरहठों के समय में बना हुआ प्रसिद्ध किला भी अलीगढ़ में ही है। संसार प्रसिद्ध ताजमहल **आगरे** में बना हुआ है। आगरे में अनाज की बड़ी मंडी लगती है यहाँ पर रुई, चमड़े और दरी बनाने के कारखाने भी हैं। दयालबाग के कारण आगरे का महत्व और भी बढ़ गया है। **मुरादाबाद** में ताँबे, पीतल आदि के बड़े कलात्मक बर्तन बनते हैं। यहाँ का कलई का काम तो और भी अच्छा होता है। मुरादाबाद के पास ही **बरेली** है जहाँ पर काठ का काम होता है। यहाँ फौज भी रहती है। यहाँ दियासलाई तथा सिगरेट का कारखाना है। **लखनऊ** गोमती पर बसा है। यहाँ पर यू० पी० सरकार का दफ़्तर है। लखनऊ में अजायबघर है। नवाबी शहर होने के कारण यहाँ बहुत सी इमारतें हैं। गोटा और सलमा-

सितारा अच्छा बनता है। लखनऊ में पच्चीकारी का कार्य भी होता है। यहाँ पर कागज की फैक्टरी है। लखनऊ से दूर रुड़की में इंजीनियरिंग विश्वविद्यालय है जहाँ इंजीनियरिंग की शिक्षा दी जाती है। लखनऊ से थोड़ी दूर पर ही गंगा के दाहिने किनारे पर **कानपुर** शहर बसा हुआ है। आजकल की मशीनों का उपयोग करने वाले कारखानों के खुल जाने से कानपुर काफी महत्व का शहर हो गया है। यहाँ पर ऊनी व सूती कपड़ों की कई मिलें हैं। चमड़े का कारखाना भी है। एक बात और है, उत्तर प्रदेश की चीजें यहाँ पर आकर जमा होती हैं और फिर यहाँ से बाहर भेजी जाती हैं। **गाजीपुर** में सरकार की ओर से अफीम की फैक्टरी है। वहाँ पर गुलाब जल आदि भी बड़ा बढ़िया बनता है। **फैजाबाद** किसी समय में अवध के नवाबों की राजधानी थी। पास में ही सरयू के किनारे **अयोध्या** बसी हुई है। यहाँ पर हनुमान जी का प्रसिद्ध मंदिर है। गंगा और यमुना के संगम पर बसा हुआ **इलाहाबाद** हिन्दुओं का प्रसिद्ध तीर्थ स्थान है। यहाँ संगम पर अकबर का बनवाया हुआ किला है। किले के अन्दर अशोक की लाट है। इलाहाबाद विश्वविद्यालय दुनिया भर में मशहूर है। यहाँ पर हाईकोर्ट भी है। हर साल माघ के महीने में संगम के किनारे माघ-मेला लगता है। इलाहाबाद के पास **बमरौली** नामक स्थान पर हवाई जहाज के उतरने के लिए प्रसिद्ध संसार-हवाई-स्टेशन है। गङ्गा के साथ साथ चला जाय तो **वाराणसी** मिलेगा। यहाँ पर पीतल के बर्तन, रेशमी कपड़ा, सोने चाँदी के गहने और लकड़ी के खिलौने अच्छे बनते हैं। दुर्गा-कुण्ड का स्वर्ण मन्दिर और बाबा विश्वनाथ का मन्दिर देखने योग्य हैं। यह उत्तरी व उत्तर पूर्वी रेलवे का जंकशन-स्टेशन है। इससे कुछ मील दूर बौद्धों की प्रसिद्ध जगह **सारनाथ** है, जहाँ पर महात्मा गौतम बुद्ध के स्तूप आदि जमीन से निकाले गये हैं।

बिहार की राजधानी **पटना** कई नदियों के संगम पर बसा हुआ है। पटना और बंगाल के बीच होने वाला व्यापार स्टीमर द्वारा होता है। लेकिन अब तो माल अधिकतर रेल द्वारा आने-जाने लगा है। पटना में विश्व-

विद्यालय भी है। पटना से दक्खिन की ओर हिन्दुओं का तीर्थस्थान गया है। उसके पास ही बुद्ध गया नामक स्थान पर बौद्धों का पवित्र पीपल का पेड़ और अशोक का पुराना महल है। भागलपुर रेशमी कपड़ा और बेलनियों के लिए प्रसिद्ध है। रानीगंज में कोयले की खानें हैं और जमशेदपुर में लोहे का कारखाना है। उड़ीसा की राजधानी कटक महानदी के मुहाने पर बसा हुआ है। कलकत्ता से मद्रास जाने वाली रेल कटक में नदी पार करती है। उपजाऊ प्रदेश के बीच स्थित कटक व्यापार का केन्द्र भी है। कटक से लगभग पचास मील दूर समुद्र के किनारे जगन्नाथपुरी है। यहाँ जगन्नाथ जी का मन्दिर है। यह हिन्दुओं का तीर्थ स्थान है।

बिहार और उड़ीसा से आने-जाने पर पश्चिमी बंगाल की उपजाऊ जमीन मिलती है। हालाँकि पश्चिमी बंगाल की जनसंख्या अधिक है पर वहाँ बड़े शहर बहुत कम हैं। बंगाल की राजधानी कलकत्ता में जूट, रुई और कागज की मिलें हैं। इनके अलावा चीनी की फैक्टरी, इन्जीनियरिंग के कारखाने और लोहे की फैक्टरियाँ भी हैं। यहाँ पर माल खूब तैयार किया जाता है और यह व्यापारिक केन्द्र है। दार्जिलिंग में चाय के बाग हैं तथा यहाँ से तिब्बत को चाय और ऊन का माल भेजा जाता है। आसाम में पहाड़ी प्रदेश होने की वजह से शहर तो एक तरह से हैं ही नहीं। सिलहट ही वहाँ का बड़ा शहर है। यहाँ की नारंगियाँ अच्छी होती हैं। आसाम की राजधानी शिलांग उत्तर की ओर स्वास्थ्यदायक नगर है। गोहाटी विश्वविद्यालय होने के कारण धीरे-धीरे उन्नति कर रहा है।

मद्रास प्रदेश तो एक तरह से छोटे बन्दरगाहों का घर ही है। इन बन्दरगाहों को छोड़कर हम खेती की उपज का केन्द्र कोयम्बटूर को ले सकते हैं। त्रिचनापल्ली कावेरी के मुहाने पर स्थित है। उसके पास श्रीरंग जी का मन्दिर है। मदुरा तीर्थस्थान है। वहाँ पर पीतल के बर्तन बनते हैं। मद्रास रेलों का केन्द्र है। यहाँ पर विश्वविद्यालय व हाईकोर्ट हैं। मद्रास में सूती कपड़े की मिलें और चमड़े के कारखाने हैं। भारत के पश्चिमी किनारे पर बम्बई प्रदेश है। बम्बई में बहुत से रुई के कारखाने हैं। भारत का

सबसे अच्छा बन्दरगाह होने से यह व्यापार का केन्द्र है। यहाँ हाईकोर्ट और विश्वविद्यालय हैं। **अहमदाबाद** के तीन मुख्य व्यापार हैं—रेशम, रुई और सोना। यहाँ पर चमड़े और कागज के कारखाने हैं। **सूरत** में रुई के कई कारखाने हैं। पहले सूरत बन्दरगाह भी था। फौजी स्टेशन होने के अलावा **पूना** में संगीत का स्कूल खोला गया है।

हैदराबाद, हैदराबाद प्रदेश की राजधानी है। वहाँ एक विश्वविद्यालय भी है। यह शहर रेल और व्यापार का केन्द्र है। इसी प्रकार **मैसूर** में बड़ा सुन्दर महल और मजबूत किला बना हुआ है। **बंगलौर** में फौज रहती है। इसके अलावा रुई, ऊन और दरी का काम होता है। वहाँ रेशम की बुनाई और चन्दन के तेल के कारखाने भी हैं। मध्य प्रदेश के **नागपुर** में रुई का माल बनता है। यहाँ पर विश्वविद्यालय भी है। यहाँ के सन्तरे मशहूर हैं। **जबलपुर** रेलवे जंकशन है। उसके पास ही नर्मदा नदी के किनारे संगमरमर की चट्टानें हैं और दर्शनीय "धुआँधार" नामी जलप्रपात है। यहाँ पर दियासलाई और बीड़ी के कारखाने हैं। **भोपाल** नवाबी शहर है। यहाँ पर बहुत सी देखने लायक मसजिदें हैं। **ग्वालियर** मध्यभारत का सबसे बड़ा शहर है। जैन मन्दिर, पहाड़ी किला और पत्थर पर नक्काशी का काम देखने लायक है। **इन्दौर** भी एक व्यापारिक केन्द्र है। **बड़ौदा** में रुई की मिलें हैं। **जयपुर** महाजनी व्यापार का केन्द्र है। शहर देखने लायक है। **उदयपुर** में संगमरमर का महल है।

बन्दरगाहों की उत्पत्ति और वृद्धि

भारत के समुद्री भाग का बड़ा महत्त्व है। जैसा हम बता चुके हैं, अफगानिस्तान, तिब्बत तथा मध्य एशिया के देश गरीब तथा पिछड़े हुए होने के कारण जमीन के रास्ते विदेश से जो व्यापार होता है। उसकी मात्रा बहुत कम है। जितना माल साल भर में एक दर्रे से आता है उतना तो बम्बई, कलकत्ता आदि बन्दरगाहों में आने वाला एक जहाज ले आता है।

अगर हम चाहते हैं कि भारत का विदेशी व्यापार बढ़े और हिन्द महा-

सागर में हमारी सैनिक धाक भी जमी रहे तो यह आवश्यक है कि यहाँ अच्छे और पर्याप्त बन्दरगाह हों। बन्दरगाहों की उत्पत्ति और वृद्धि के लिये कई बातें जरूरी हैं। सबसे पहले जिस स्थान पर बन्दरगाह बनाया जाय वहाँ की जमीन कड़ी होनी चाहिये। बलुही जगह में बन्दरगाह बनाने

प्रमुख बन्दरगाहों के व्यापारिक क्षेत्र की पृष्ठ भूमि
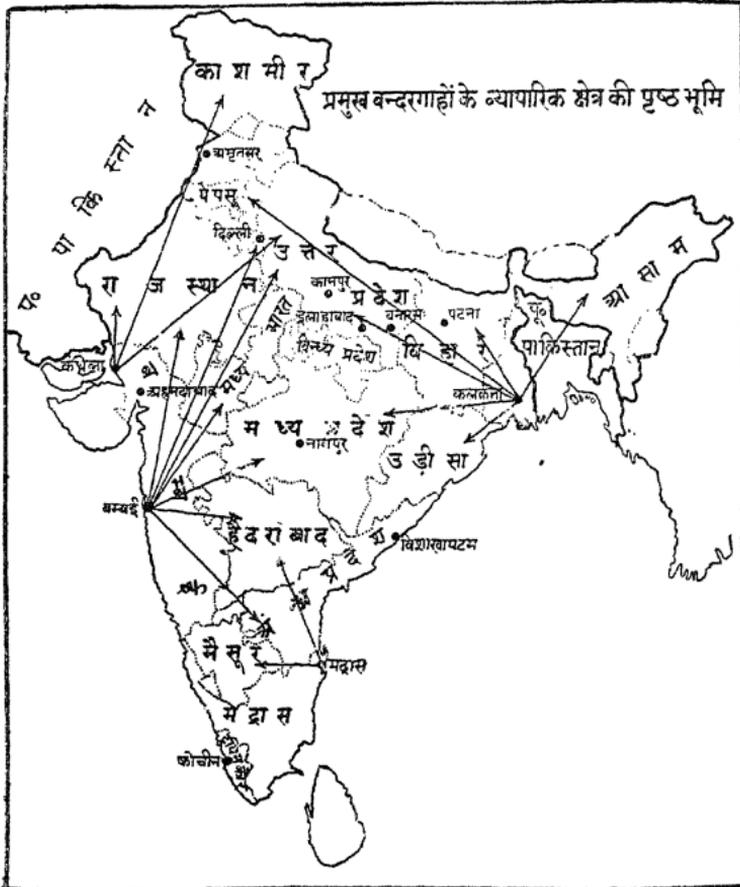
से उसको बनाने और बाद में मरम्मत करने में बहुत खर्च पड़ता है। दूसरे, उस जगह पर समुद्र का पानी काफी गहरा होना चाहिये जिससे ज्वार-भाटा के कारण बड़े-बड़े जहाजों के किनारे तक आने में कोई कठिनाई न हो।

तीसरे, बन्दरगाह पर जहाजों और स्टीमरों को आँधी तूफान आदि से रक्षा व शरण मिलनी चाहिये। बन्दरगाह का स्थान ऐसा हो कि वहाँ आँधी-तूफान न आता हो या अगर कभी आवे तो उससे बन्दरगाह में खड़े जहाजों को नुकसान न पहुँचे। चौथे, बन्दरगाह के आस-पास के समुद्र में नदियों द्वारा बहाकर लाई हुई रेत और मिट्टी न जमा हो। अगर ऐसा होगा तो समुद्र का तल आये दिन ऊँचा होता जायगा। तब या तो जहाज किनारे तक न आ सकेंगे या उस रेत को बराबर निकाल कर फेंकने का इन्तजाम करना पड़ेगा जिसके कारण नाहक रुपया खर्च होगा। पाँचवें, आजकल के २००-२२५ गज लंबे जहाजों के ठहरने के लिए लंबे बंदरगाह-प्लेटफार्म हों और वहाँ तेल, कोयला, पानी व मरम्मत का पूरा-पूरा प्रबंध हो। माल को शीघ्र उतारने-चढ़ाने के लिए चुस्त व क्षमतावान कर्मचारियों की जरूरत है। छठें, बन्दरगाह का देश के भीतरी भागों से पूरा सम्बन्ध होना चाहिये। अर्थात् रेल, मोटर, हवाई जहाजों द्वारा बन्दरगाहों से देश के अन्दर बसे शहरों और कस्बों तक माल और डाक लाने-ले जाने का रास्ता और अच्छा इन्तजाम होना चाहिये। तभी तो विदेशों का माल देशवासियों के घर तक आसानी से पहुँचाया जा सकेगा और जो वस्तुएँ देश में तैयार या उत्पन्न की जाती हैं उन्हें बाहर भेजा जा सकेगा। परन्तु यह तो तभी सम्भव होगा जब किसी बन्दरगाह का पृष्ठ प्रदेश, जहाँ का विदेशी व्यापार उस बन्दरगाह के द्वारा होता है, उपजाऊ हो और वहाँ विभिन्न प्रकार का माल बनाया जाता हो। विदेशी व्यापार की सहूलियत के लिये अच्छा होगा अगर बन्दरगाह उद्योग-धन्धों का केन्द्र भी हो। यों कभी-कभी कोई बन्दरगाह इसलिये उन्नति कर लेता है कि वह जहाजों के आने-जाने के रास्ते में पड़ता है और वहाँ जहाज कोयला पानी के लिये रुकते हैं।

भारत के बन्दरगाह

भारत के समुद्री किनारे बहुत कम कटे हुये हैं। इसके अलावा किनारे पर समुद्र छिछला है। किनारे अधिकतर चपटे और बालूदार हैं। नदी

के मुहाने पर ज्यादातर बालू इकट्ठी होती है, जिससे जहाज बन्दरगाह तक नहीं जा सकते। पश्चिमी किनारे पर, खास कर खम्भात के उत्तर में पश्चिम से आने वाली लहरों के कारण सिन्धु नदी द्वारा लाई बालू और मिट्टी से वहाँ की खाड़ियाँ पटती रहती हैं। इन्हीं लहरों के कारण ताप्ती और नर्मदा नदी की बालू खम्भात की खाड़ी से बाहर नहीं जाने पाती। कलकत्ते के बन्दरगाह पर भी यही दिक्कत रहती है और जहाजों को हुगली नदी की बालू में फँस जाने का डर रहता है। अतः जहाजों को घंटों ज्वार-भाटे की बाट जोहनी पड़ती है। कभी-कभी तो जहाजों के पेंदे और बालू की सतह के बीच कुछ इंचों का ही अंतर रहता है। अस्तु, भारत के अच्छे बन्दरगाहों में निम्नलिखित का उल्लेख किया जा सकता है :—

कलकत्ता, विशाखापट्टम, कोकोनाडा, कांधला, मद्रास, नेगापट्टम, धनुष-कोटि, तूतीकोरन, कोचीन, कालीकट, मंगलौर, मोरमुगाव, बम्बई, सूरत, भावनगर, विरावल, पोरबन्दर, बेदीबन्दा और ओखा।

कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, विजगापट्टम (या विशाखापट्टम) तथा कोचीन ही भारत के पाँच मुख्य बन्दरगाह हैं जिनसे २०२ करोड़ टन माल प्रतिवर्ष आता-जाता है। अब भारत-सरकार चौदह करोड़ रुपये लगाकर कांधला में छठवाँ मुख्य बन्दरगाह स्वयं बनवा रही है। प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत ३७ करोड़ रुपया बन्दरगाहों की उन्नति पर व्यय हुआ और द्वितीय योजना के अन्तर्गत ६० करोड़ रुपया व्यय करने का विचार है।

मुख्य-मुख्य बन्दरगाहों की विशेषता

कलकत्ता भारत का ही नहीं, बल्कि एशिया भर का मशहूर बन्दरगाह है। केवल बंगाल की ही उपज नहीं; आसाम, बिहार, उत्तरी उड़ीसा, पूर्वी मध्य प्रदेश, पूर्वी मध्य भारत और उत्तर प्रदेश तक का माल यहाँ से आता जाता है। ये ही सब कलकत्ते के पृष्ठ प्रदेश में शामिल किये जाते हैं, और यहाँ रेलवे सड़कों और नदियों का जाल बिछा है। गंगा की घाटी के कारण ये प्रदेश खूब उपजाऊ हैं। कोयला, लोहा, अभ्रक, व मैंगनीज भी

कलकत्ते के पृष्ठ प्रदेश में पाये जाते हैं। वहाँ से विदेशों को जाने वाली चीजों में जूट और जूट का तैयार माल, चाय, तेलहन, चमड़ा और अफीम मुख्य हैं। बाहर से जहाज जिन चीजों को लेकर कलकत्ते आते हैं उनमें अधिकतर रुई का तैयार माल, लोहे की चीजें, मशीनें, जावा की चीनी,
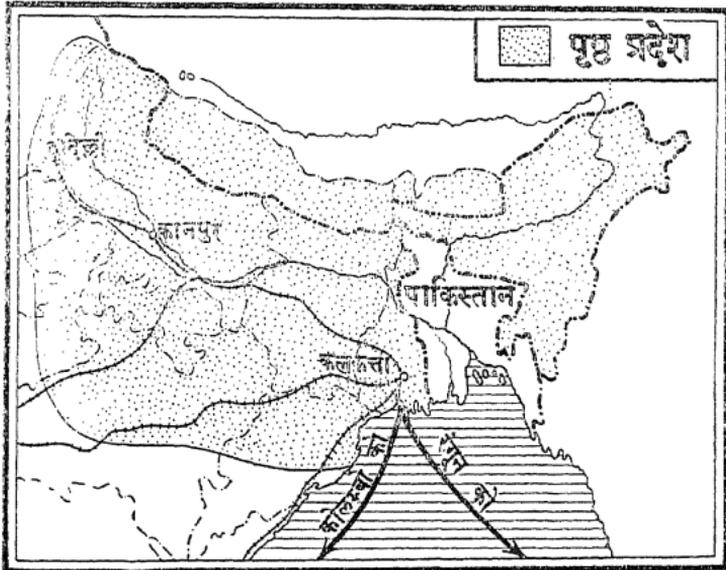
कलकत्ता के बन्दरगाह का पृष्ठ प्रदेश

तेजाब, मोटरें, काँच के बर्तन और शराब ही होती है। कलकत्ते में जूट, रुई, कागज और चीनी की मिलें, इंजीनियरिंग वर्क्स, लोहे के कारखाने और रस्सी बनाने के कारखाने भी हैं क्योंकि यहाँ से रानीगंज और झरिया, जहाँ कोयले की खानें हैं, पास हैं। कलकत्ते में यात्रियों की सुविधायें कम हैं। यहाँ यात्रियों को लेकर बड़े जहाज कम आते हैं। हुगली की गहराई बनाए रखने के लिये बालू निकालते रहना पड़ता है। सरकार ९ करोड़ रुपये व्यय करके कलकत्ता बंदरगाह की उन्नति करेगी। कोयला और खनिज पदार्थों के यातायात की सुविधा के लिये कई नए प्लेटफार्म बनाए गए हैं। हुगली

को गहरी कर रहे हैं तथा नए बड़े जहाजों को बन्दरगाह तक लाने के लिए खींचने वाले आधुनिक जहाज (Tug) खरीदे गये हैं।

भारत के पूर्वी किनारे पर **मद्रास** का बन्दरगाह मुख्य है। इसके पृष्ठ प्रदेश में ट्रावनकोर, मैसूर और हैदराबाद के प्रदेश मुख्य हैं। यह उतना अच्छा नहीं है जितना कलकत्ता या बम्बई का पृष्ठ प्रदेश। यहाँ से चमड़ा और
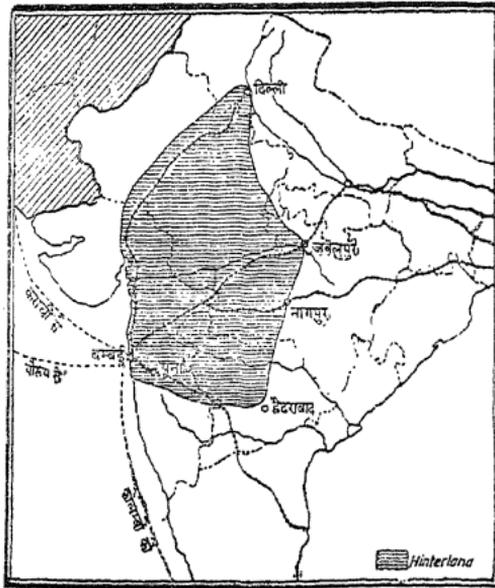
बम्बई बन्दरगाह का पृष्ठ प्रदेश

खाल सबसे अधिक बाहर जाती है। रुई, चाय, कहवा गरम मसाला, चमड़ा, और तेलहन भी निर्यात होते हैं। आने वाले जहाज रुई के माल, चीनी, मशीन और तेजाब लाते हैं। मद्रास से कलकत्ता, पूना, बम्बई और मंगलौर चारों ओर रेलें जाती हैं। मद्रास का बन्दरगाह प्राकृतिक नहीं बल्कि बनावटी है। यद्यपि बन्दरगाह काफी गहरा है परन्तु यह बम्बई की बराबरी नहीं कर सकता। यहाँ बालू अधिक है। अभी हाल में कोयला, पेट्रोल आदि के

व्यापार के लिए चार प्लैटफार्म (सदा गहरे डाक) बनाए गए हैं। मद्रास और बम्बई के बीच में जहाज केवल **कोचीन** में ही भली-भाँति शरण ले
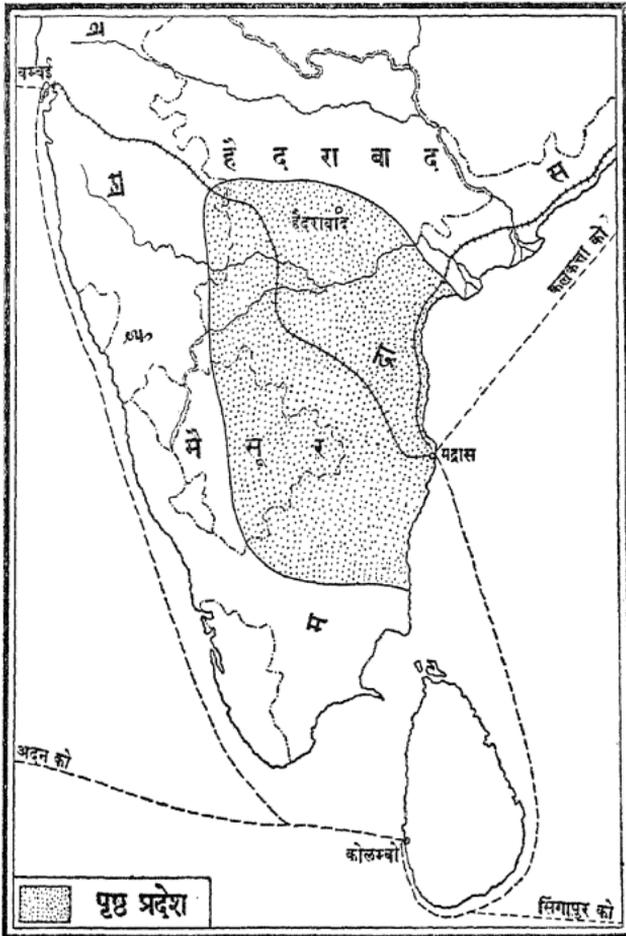
मद्रास बन्दरगाह का पृष्ठ प्रदेश

सकते हैं। कोचीन के पास के प्रदेश में नारियल और नारियल से मिलने वाली चीजें ही नहीं, बल्कि चाय, रबर, और कहवा भी पाया जाता है। यहाँ

से नारियल व नारियल का तेल, चटाइयाँ, मसाला, अदरक, रुई, रबर, चाय, ईंट, खपरैल बाहर भेजे जाते हैं। आने वाली वस्तुओं में चावल रुई के कपड़े, मिट्टी का तेल, पेट्रोल, मशीन और चीनी प्रमुख हैं। नए जहाजों की सुविधा के लिए कोचीन बन्दरगाह का भी विकास हो रहा है।

कलकत्ता और मद्रास के बीच **विजगापट्टम** या **विशाखापटनम्** बन्दरगाह का भविष्य अति उज्ज्वल है। इसके पृष्ठ प्रदेश से आने वाली मैंगनीज विदेशों को भेजी जाती है। कुछ वर्ष हुए सरकार ने अपने खर्च से यहाँ का बन्दरगाह अच्छी तरह बनवा दिया है। नए जहाजों के लिये एक नया विशाल डॉक बनवाया गया है। अब तो यहाँ जहाजों की मरम्मत का कारखाना भी खुल गया है। यहाँ सिंधिया कम्पनी के कारखाने में अब तक पाँच जहाज बन चुके हैं। यहाँ तेल साफ करने का एक कारखाना खुलने के कारण तेल उतारने चढ़ाने के लिए उपयुक्त डॉक बनाने की भी योजना है। अभी तो बन्दरगाह घाटे पर चल रहा है।

बम्बई का बन्दरगाह बहुत महत्व रखता है। यूरोप जाने के लिये बम्बई भारत के अन्य सभी बन्दरगाहों से नजदीक है। पश्चिमी किनारे को पश्चिमी घाट अन्दर के भागों से अलग करता है, परन्तु थाल घाट और भोर घाट के दर्रों के कारण मद्रास, उत्तर प्रदेश, मध्य भारत आदि प्रदेशों से रेलें बम्बई पहुँच जाती हैं। अतः इस उपजाऊ पृष्ठ प्रदेश की सामग्री आसानी से बम्बई भेजी जा सकती है। दूसरे, बम्बई के बन्दरगाह तक आने में जहाजों को हमेशा कम से कम बत्तीस फुट पानी मिलता है। यही ऐसा बन्दरगाह है जहाँ बड़े से बड़े जहाज किनारे तक आ सकते हैं। इसलिये बाहर भेजने के लिए जितना माल बम्बई आता है उतना कलकत्ता में भी नहीं आता। बम्बई से रुई, बिनौला (रुई का बीज), मूँगफली, अलसी और चमड़ा दूसरे देशों में भेजते हैं। रुई पैदा करने वाले प्रदेशों से घिरा होने के कारण बम्बई में रुई की बहुत सी मिलें हैं। इनमें तैयार होने वाला माल अफ्रीका, भारतीय सागर के अन्य बन्दरगाह तथा चीन तक जाता है। बाहर

से आने वाला जहाज रुई के सामान, मशीन, चीनी, रेशम और दवाइयाँ लाता है। बम्बई में तेल साफ करने के दो कारखाने खुल जाने के कारण ८ करोड़ से अधिक रुपये लगाकर तेल चढ़ाने-उतारने का डॉक (Dock)
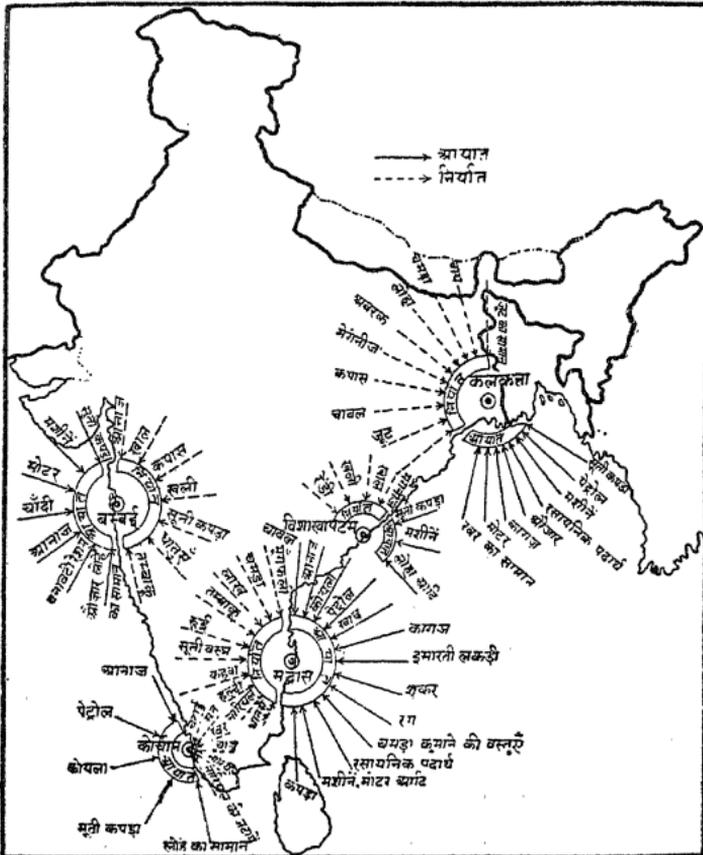
बनाया जा रहा है। रात-दिन कोई भी जहाज आ-जा सके, इस हेतु दो डॉक पर नवीन यंत्रादि की सुविधा दी गई है।

उपर्युक्त पाँच बड़े बन्दरगाहों से जितना माल गुजरता है उससे एक-चौथाई माल छोटे बन्दरगाहों से गुजरता है। बड़े-छोटे मिलाकर सभी बन्दर-

गाहों से करीब ३·१ करोड़ टन माल आता-जाता है। अस्तु, बम्बई से उत्तर चलने पर **काठियावाड़** के बन्दरगाह हैं, जो बम्बई से लोहा ले रहे हैं। **भावनगर** का बन्दरगाह देश के अन्दरूनी हिस्सों से रेल द्वारा सम्बन्धित है। वहाँ सामान रखने के लिये गोदाम का भी पूरा-पूरा प्रबन्ध है। पिछले पन्द्रह साल में वहाँ का व्यापार दस गुने से अधिक बढ़ गया है। इसी प्रकार **पोरबन्दर** खुला हुआ छोटा सा बन्दरगाह है। यह बरसात के दिनों में बन्द रहता है। यहाँ से काफी माल आता-जाता है। अफ्रीका से आने-जाने वाले यात्री इस बन्दरगाह से ही आते जाते हैं। बम्बई का काफी व्यापार इन बन्दरगाहों के हाथ में आ गया है।

कराँची के बन्दरगाह के पाकिस्तान में चले जाने के कारण उत्तर पश्चिमीय प्रदेश के लिये एक बड़े और आधुनिक बन्दरगाह की आवश्यकता अनुभव होने लगी। अतएव भारत सरकार ने काठियावाड़ के **कांधला** बन्दरगाह को एक आधुनिक बड़े बन्दरगाह में परिणत करने का काम आरंभ कर दिया है। भविष्य में बड़े से बड़े जहाज इस बन्दरगाह में आश्रय पा सकेंगे तथा रेलवे लाइनों द्वारा इस बन्दरगाह को भारत के भिन्न-भिन्न प्रदेशों से जोड़ने के लिये रेलवे का बन्दरगाह तक विस्तार किया जा रहा है। इस पर लगभग १४ करोड़ रुपए व्यय होंगे। इसके कुछ माल प्लेटफार्म व तेल-प्लेटफार्म काम में भी आने लगे हैं। कार्यकर्त्ताओं को गृह तथा जीवन-सुविधाएँ प्रदान करने का कार्य पूरा हो चला है। आशा है कि शीघ्र ही यह चालू हो जाएगा।

भारतीय बन्दरगाहों की उन्नति और सुव्यवस्था करने के लिए भारत सरकार ने एक 'राष्ट्रीय बन्दरगाह बोर्ड' स्थापित किया है तथा बन्दरगाहों का नियंत्रण स्थानीय ढंग से करने के लिए कानून बनाकर विशेष सुविधाएँ दी गई हैं।

शहरों की स्थापना और वृद्धि के कारणों का हम ऊपर विवेचन कर चुके हैं। हम संक्षेप में यह दुहराते हैं कि नगर किन कारणों से स्थापित हो जाते थे। नगरों की स्थापना के नीचे लिखे मुख्य कारण हैं :—

व्यापारिक केन्द्र

व्यापार की मंडियाँ स्वाभाविक रूप से बड़े नगर बन जाती हैं और वहाँ आबादी बढ़ती जाती है, क्योंकि वहाँ बहुत से व्यक्ति व्यापार में लगे रहते हैं। उन पर निर्भर होने वालों की संख्या भी बहुत होती है। इस कारण वे स्वाभाविक रूप से नगर बन जाते हैं, जैसे, खुर्जा तथा चंदौसी।

व्यापारिक मार्गों पर स्थित स्थान

जो स्थान किसी व्यापारिक मार्ग पर स्थित होते हैं वे भी बड़े नगर बन जाते हैं। यदि कोई स्थान व्यापारिक मार्गों के संगम पर होता है तो और भी जल्दी बढ़ता है क्योंकि वहाँ सब ओर से माल तथा मुसाफिर आते हैं, और वह शीघ्र ही बड़े नगर का रूप धारण कर लेता है।

औद्योगिक केन्द्र

जिन स्थानों पर कोई धन्धा तथा बड़े-बड़े कारखाने स्थापित होते हैं वे शीघ्र ही बड़े नगर बन जाते हैं, क्योंकि वहाँ लाखों की संख्या में मजदूर रहते हैं। वे स्थान व्यापारिक केन्द्र भी बन जाते हैं। उस धन्धे में जो कच्चा माल काम आता है उसकी मंडी भी वहाँ स्थापित हो जाती है और तैयार माल की भी। वे शहर स्वभावतः बड़ी मंडी बन जाते हैं। बम्बई, अहमदाबाद तथा जमशेदपुर औद्योगिक केन्द्र के उदाहरण हैं।

बन्दरगाह

समुद्र के किनारे स्थित होने के कारण बंदरगाहों में आयात और निर्यात (Export and Import) का काम बहुत होता है। जो माल विदेशों को जाता है अथवा विदेशों से आता है वह सब इन्हीं बंदरगाहों से होकर आता-जाता है। इस कारण वे व्यापारिक केन्द्र बन जाते हैं और वहाँ धन्धे भी स्थापित हो जाते हैं। इस कारण बन्दरगाह शीघ्र बड़े नगर बन जाते हैं।

तीर्थ तथा धार्मिक स्थान

तीर्थस्थान होने के कारण भी आबादी बढ़ जाती है और तीर्थ स्थान

भी नगर बन जाते हैं। वहाँ लाखों की संख्या में तीर्थयात्री आते हैं और उनकी सेवा-सुश्रुषा करने तथा उन्हें आवश्यक सामग्री जुटाने के लिये स्थायी रूप से जनसंख्या निवास करने लगती है। भारत में हरिद्वार, वृन्दावन, प्रयाग, काशी तीर्थस्थान होने के कारण बड़े नगर बन गये हैं।

खनिज-केन्द्र

जहाँ खानें अधिक होती हैं और खनिज पदार्थ निकाले जाते हैं वहाँ भी नगर बस जाते हैं क्योंकि वहाँ लाखों की संख्या में मजदूर रहते हैं। भारत में रानीगंज, झरिया, आसनसोल आदि खनिज केन्द्र हैं।

स्वास्थ्यवर्द्धक स्थान

पहाड़ों पर तथा समुद्र के किनारे प्राकृतिक सुन्दर स्थान इसलिये नगर बन जाते हैं क्योंकि लोग वहाँ स्वास्थ्य की दृष्टि से आकर रहते हैं। मंसूरी नैनीताल, उटकमण्ड, दार्जिलिंग इसी कारण नगर बन गये हैं।

शिक्षा-केन्द्र

जहाँ बहुत बड़ा शिक्षा-केन्द्र, विद्यापीठ अथवा विश्वविद्यालय हो वहाँ भी नगर बन जाता है, जैसे, रुड़की तथा पिलानी।

राजधानी

जो स्थान राजधानी बन जाते हैं वे बड़े नगर भी बन जाते हैं क्योंकि वहाँ बहुत से राजकीय विभाग के दफ़्तर इत्यादि रहते हैं जिनमें बहुत बड़ी संख्या में लोग काम करते हैं। देहली, लखनऊ इत्यादि नगरों के बड़ा होने का यही मुख्य कारण है।

पुरानी राजधानियाँ

प्राचीन समय में जो राजधानियाँ थीं वे आज भी बड़े शहर हैं। जब एक बार वे राजधानी होने के कारण बड़े नगर बन गये तो फिर वहाँ स्थायी रूप से आबादी जम गई। आगरा, पटना, पूना इत्यादि स्थानों पर पुराने समय

में राजधानियाँ थीं जहाँ राजा, उसके उमराव तथा सेना रहती थी। इस कारण वे बड़े नगर बन गये।

किले, सामरिक दृष्टि से सुरक्षितस्थान तथा फौजी स्थान

जो स्थान सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण होते हैं, जहाँ फौजी छावनियाँ होती हैं अथवा किले होते हैं वे स्थान सुरक्षित और सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण होते हैं। वहाँ नगर बन जाते हैं क्योंकि वहाँ सेना रहती है। अदन, चित्तौड़ इत्यादि इसी कारण महत्वपूर्ण हैं।

अधिकांश नगरों के बड़े होने के एक से अधिक कारण होते हैं। आधुनिक समय में औद्योगिक केन्द्र, व्यापारिक केन्द्र तथा बंदरगाह बहुत शीघ्रता से बढ़ते हैं।

अभ्यास के प्रश्न

१—भारत में शहरों की उत्पत्ति या उन्नति के क्या-क्या कारण हैं? सोदाहरण उत्तर दीजिये। (१९५४)

२—राजनीतिक कारणों से बसाये नगरों का विस्तार-पूर्वक वर्णन कीजिये।

३—मुसलमानी राज्य में दक्षिण भारत में कौन कौन से नगर स्थापित किए गए?

४—निम्नलिखित स्थानों में से किन्हीं दो की उन्नति के कारण लिखिये—प्रयाग, कानपुर बम्बई, नागपुर। (१९५१)

५—शिक्षा, मेले तथा तीर्थ के कारण किस प्रकार शहर तथा नगर बस जाते हैं? भारतीय शहरों का उदाहरण देकर समझाइए।

६—निम्नलिखित स्थानों की विशेषताएँ लिखिये—दिल्ली, लखनऊ, बरेली, पटना, दार्जिलिंग।

७—भारत के पाँच मुख्य बन्दरगाहों की उत्पत्ति तथा उन्नति का हाल संक्षेप में लिखिए।

८—बंदरगाहों की उन्नति के लिये किन-किन बातों का होना आवश्यक है? उदाहरण सहित समझाइये।

९—किसी बंदरगाह के पृष्ठप्रदेश का क्या महत्व होता है? पृष्ठप्रदेशों ने भारतीय बंदरगाहों की उन्नति पर क्या प्रभाव डाला है?

१०—निम्नलिखित शहर क्यों प्रसिद्ध हैं:—

(अ) कलकत्ता, आगरा, इलाहाबाद, दिल्ली, अहमदाबाद, बम्बई। (उ० प्र० १९४३)

(ब) मुरादाबाद, बम्बई, बनारस, कानपुर, जमशेदपुर। (१९४४)

(स) कालपी, जमशेदपुर, मुरादाबाद, अहमदाबाद, बङ्गलौर। (१९४६)

११—व्यापारिक महत्व और यातायात के साधनों की दृष्टि से निम्नलिखित शहरों का वर्णन कीजिये—

कलकत्ता और विजगापट्टम (उ० प्र० १९४५)

१२—निम्नलिखित शहर क्यों प्रसिद्ध हैं—

बनारस, नागपुर और अमृतसर (१९४७)

१३—भारत में शहरों की उन्नति के कारणों की विवेचना कीजिये। सोदाहरण उत्तर दीजिये। (उ० प्र० १९४८)

१४—किन आर्थिक कारणों से निम्नलिखित शहरों की उन्नति हुई है :—नागपुर, कानपुर, अमृतसर, जमशेदपुर। (१९५१)

१५—निम्नलिखित में से किन्हीं दो बंदरगाहों की उन्नति के कारण लिखो—

बिशाखापट्टम्, कोचीन, मद्रास, कलकत्ता। (१९५५)